संस्कृत-छन्दोविधान का सैद्धान्तिक
एवं
प्रायोगिक विश्लेषण

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की
डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

पर्यवेक्षकः-

डॉ० हरिदत्त शर्मा

उपाचार्य
संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

प्रस्तोताः-

विनोद कुमार गुप्त

प्रवक्ता
संस्कृत-विभाग
राजकीय महाविद्यालय, चम्बा,
टिहरी-गढ़वाल

संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद
२००२

समर्पणम्

त्वदीयं वस्तु शोधं मे
गुरो तुभ्यं समर्पये ।
स्वीकुरु हर्षितो भूत्वा
प्रबन्धं नवकल्पितम् ।।

आत्म-निवेदन

सर्वप्रथम इस शोध–प्रबन्ध की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये वाग्देवी एव पूज्याभिपूज्या माँ स्वर्गीया श्रीमती प्रभू देवी के चरणो मे सादर नमन करता हूँ। प्रस्तुत शोध–विषय का चयन मेरे विद्यार्थी जीवन मे छन्द के सिद्धान्तो एव प्रयोगो के विषय मे उपजी जिज्ञासा का प्रतिफल है। परास्नातकीय कक्षा मे जब श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ० हरिदत्त जी शर्मा (सौभाग्य से मेरे निर्देशक भी हैं) 'वृत्तरत्नाकर' पढाते समय छन्द के सिद्धान्तो एवं प्रयोगो के विषय मे प्रकाश डाला करते थे, उस समय मेरे मस्तिष्क में इस सन्दर्भ मे अनेकविध प्रश्न उपस्थित हुआ करते थे। अत एव स्नातकोत्तर उत्तरार्द्ध की कक्षा मे ही मैंने शोधकार्य करने का निश्चय कर लिया था। इस निश्चय के प्रेरक रहें है– विशेषणातीत गुरुवर्य डॉ० हरिदत्त शर्मा, जिन्होंने स्नातकोत्तरोत्तरार्द्ध की अन्तिम परीक्षा के दिन ही मेरे निवेदन पर यह कहते हुये कि "आपने मुझे बॉध लिया" मार्ग–निर्देशन का गुरुतर भार स्वीकार कर मुझे शोध–कार्य करने हेतु अभिप्रेरणा प्रदान की। आपमे कठिन परिश्रम करने तथा कराने की अद्भुत सहज क्षमता के अतिरिक्त मैंने उस प्रज्ञा–ज्योति के दर्शन किये, जिससे मेरे पथ का अन्धकार दूर होता गया। शोधकार्य मे प्रवेश लेते समय एतद्विषयक पारस्परिक विचार–विमर्श के पश्चात् छन्द के सिद्धान्तो एव प्रयोगो के प्रति मेरी जिज्ञासा एव रुचि को परखकर गुरु जी ने मुझे 'संस्कृत–छन्दोविधान का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक विश्लेषण' इस विषय पर नूतन दृष्टि के साथ शोध–कार्य करने के लिये प्रेरित किया।

प्रकृत शोध–प्रबन्ध में परास्नातकीय कक्षा मे अध्ययन के दौरान उठे हुये प्रश्नों का विस्तार एवं यथासम्भव उनका समाधान किया गया है। जिन प्रश्नों का समाधान नहीं हो पाया है, वे प्रश्न रूप में ही छोड दिये गये हैं।

शोध प्रबन्ध का कलेवर सात अध्यायो वाला है–

जिसके प्रथम अध्याय मे छन्द के उद्‌भव एव अद्यावधि विकास–परम्परा का निरूपण किया गया है। विकास–परम्परा में पिङ्‌गल का छन्द काल, पिङ्‌गल से पूर्वकालिक छन्द काल तथा उत्तरकालिक आज तक के छन्द काल का समावेश किया गया है। द्वितीय अध्याय छन्द-शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों के विवरण का है, जिसमे वर्ण, मात्रा, पाद, गण, यति तथा गति के विषय मे प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय मे लौकिक छन्दो की आधार भूमि होने के कारण वैदिक छन्दो का सङ्‌क्षिप्त परिचय तत्पश्चात् लौकिक छन्दो के भेदो तथा उसके प्रस्तारगत भेद–प्रभेदों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय छन्दो के नामकरण की सार्थकता को समर्पित है, जिसमें छन्दों के नामो का वैशिष्ट्य तथा उसकी अर्थवत्ता पर विचार किया गया है। पञ्चम अध्याय मे छन्द एव भावो के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि अमुक–अमुक छन्द अमुक–अमुक भाव के लिये विशेष रूप से उपयुक्त हैं तथा बाद मे अपवाद की भी चर्चा की गयी है। षष्ठ अध्याय मे सस्कृत–छन्द अन्त्यानुप्रास के प्रयोग होने पर कितना श्रुति–मधुर होता है तथा उसकी सङ्‌गीतमयी प्रस्तुति सफल होती है, इसका विवेचन है। सप्तम अध्याय में मात्रिक छन्दो का सङ्‌गीत से सम्बन्ध तथा इसके माध्यम से गीत–रचना के विषय में चर्चा है। स्तोत्रकाव्यों एवं गीतगोविन्द में मात्रिक छन्दो के चमत्कारी प्रयोग की ओर दृष्टि डाली गयी है। इसी अध्याय मे आधुनिक सस्कृत–कविता में छन्दों के वैविध्य पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें आज की सस्कृत–कविता में प्रयुक्त विविध छन्द के विषय में विवेचन किया गया है।

प्रकृत शोध–प्रबन्ध मे त्वरित बोधगम्यता के लिये ग्रन्थो के नाम साकेतिक रूप मे न देकर पूर्ण रूप मे दिये गये हैं, साथ ही स्पष्टता के लिये प्रयास किया गया है कि सर्ग, अध्याय, काण्ड, वर्ग आदि का शब्दत उल्लेख हो। कहीं–कहीं प्रसगवश पुनरुक्ति का अपराध भी अनिवार्यत हो गया है। अपने विचारो की अभिव्यक्ति मे स्पष्टता, सरलता तथा सूत्रात्मकता पर ध्यान दिया गया है। वर्ण्य विषय की प्रकृतिवशात् छन्दोगत पारिभाषिकता व्यापक रूप से समाविष्ट है।

जहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है, प्रकृत शोध–प्रबन्ध मे प्रथम अध्याय से लेकर अन्तिम अध्याय तक जो भी प्रश्न व उसके समाधान प्रस्तुत किये गये हैं, वे सभी मौलिक ही हैं, यदि किसी प्रश्न के विषय में पहले किसी ने विचार किया हो तो वह प्रमाण स्वरूप ही स्वीकार किया जाना चाहिये, जिस विषय मे मैं ध्वन्यालोक की पङ्क्ति को उद्धृत करना चाहूँगा–

"लक्षणेऽन्यै कृते चास्य पक्षससिद्धिरेव न।"

शोध–प्रबन्ध में मल्लिनाथ की प्रतिज्ञा 'नामूल लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते' का यथासाध्य पूर्ण निर्वाह करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध–प्रबन्ध–महामाला के लिये मोतियो को सञ्चित करने की क्रिया मे उनके पारस्परिक महत्त्व को समझ कर उनका सूत्रगत स्थान निर्देश करने मे प्रात स्मरणीय परमश्रद्धेय गुरुवर्य डॉ० हरिदत्त जी शर्मा 'पुस्कोकिल' ने अपने ज्ञान और व्यक्तित्व–प्रकाश से जिस प्रकार मेरा अन्धतम मार्ग आलोकित किया, उसके लिये मेरे जीवन की श्रद्धा

उनके चरणो मे समर्पित है। मेरे अभिलषित विषय के आदि से लेकर अन्त तक का सम्पूर्ण मार्ग उनकी कृपाप्रभा से भासित है। वैसे शोध मे प्रवेश लेते ही अभ्यागताचार्य होकर आपके बैंकाक चले जाने के कारण मुझे उचित मार्गदर्शन के अभाव मे शोध–कार्य मे अत्यन्त कठिनाइयो का सामना करना पडा। आपका स्थान विश्व सस्कृत–जगत् मे सुप्रतिष्ठित होता हुआ सुनकर मैंने अपने आपको गौरवान्वित अनुभव किया, जिस कारण कठिनाईयॉ कठिनाईयो के रूप मे अनुभूत नहीं हुई। बैंकाक से वापस आने पर आपने जिस तन्मयता से मेरा मार्गदर्शन किया वह शब्दातीत है, फिर भी शिष्टाचार वश इसके लिये किञ्चित् शब्दो से आभार प्रकट करूँ, तो मेरी अल्पज्ञता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा, क्योकि आप जैसे शेमुषी सम्पन्न, अलौकिक प्रतिभा से युक्त व्यक्तित्व के धनी विशेषणातीत हुआ करते हैं।

गुरु जी के अतिरिक्त शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने मे जिन गुरुजनों का आशीर्वादात्मक सहयोग रहा है, उनमे सबसे पहला नाम है – श्रद्धेय गुरुवर्य प्रो० सुरेश चन्द्र जी पाण्डे (राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, सस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) का, जिन्होने समय–समय पर शोध–प्रबन्ध के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण सुझावो के साथ प्रबन्ध–लेखन के लिये सतत प्रोत्साहित किया। इनके अतिरिक्त प्रो० मृदुला त्रिपाठी (अध्यक्ष, सस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) तथा विभागस्थ अन्य गुरुचरणो का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से शोध–प्रबन्ध को पूरा करने में सहयोग रहा है। एतदर्थ सभी गुरुजनों के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ।

शोध–प्रबन्ध–लेखन मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा राजकीय महाविद्यालय, चम्बा (वर्तमान मे अध्यापनरत) के पुस्तकालयो तथा गङ्गानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद से शोध विषयक पुस्तके प्राप्त करने मे उल्लेखनीय सहायता मिली है।

पुन अपने कुटुम्बीजनो एव मित्रो का भी आभारी हूँ, जिन्होने शोध–प्रबन्ध को पूरा करने मे मेरी सहायता की है। प्राचीन ऋषियो की मान्यता है कि पिता के प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं– "पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवता।" मुझे शैशवकाल से ही पूज्य पिताश्री का वरदहस्त प्राप्त है। उनके निर्व्याज स्नेह व आशीर्वाद से ही यह कार्य सम्पन्न हुआ है। परमात्मा उन्हे दीर्घायुष्य प्रदान करे। पिताश्री श्री रामलखन जी गुप्त के अतिरिक्त मॉ तुल्य श्रीमती ऊषा किरण जी मिश्रा एव श्रीमती रामजानकी जी गुप्ता, मधुरवाग्विभूषित मामा श्री महेश प्रसाद जी गुप्त, मेरे अग्रज एव अनुज भ्राताओ का भी अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग रहा है।

मेरे परममित्र श्री विनय कुमार शुक्ल एव डॉ० राम सुमेर यादव प्रवक्ताद्वय (सस्कृत) ने अध्यापन कार्य मे व्यस्त रहते हुये भी अपने अमूल्य सुझावो के द्वारा शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने मे सहयोग प्रदान किया। पूर्णता की ओर अग्रसर प्रकृत शोध–प्रबन्ध की निर्विघ्न समाप्ति मे कुछ तथाकथित व्यवधान भी उपस्थित हुआ और वह यह कि मेरी नियुक्ति शोध के प्रथम चरण मे ही प्राध्यापक के रूप मे पर्वतीय प्रान्तभाग राजकीय महाविद्यालय, चम्बा, टिहरी गढवाल मे हो गई, जिस कारण अध्यापन कार्य मे अत्यन्त व्यस्त हो जाने के फलस्वरूप शोध–कार्य प्रभावित हुआ।

पुनश्च शोध–प्रबन्ध की निर्विघ्न समाप्ति मे एक और महत्त्वपूर्ण नाम है, जिनके बिना यह कार्य सम्भव ही नहीं था, वह हैं– मेरी चिरसङ्गिनी श्रीमती कञ्चन गुप्ता, शोधच्छात्रा–दर्शनशास्त्र–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, जिन्होने प्रीतिवश शोध–प्रबन्ध लेखन के मार्ग मे आने वाली समस्त कठिनाइयो मे न केवल मुझे सम्बल प्रदान किया, बल्कि गृहस्थ जीवन के समस्त दायित्वो से मुक्त रखते हुये शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने मे अपना अपार स्नेह व सहयोग प्रदान किया। शोध–काल मे ही नवजात मेरे पुत्र चिरजीव चन्द्रमौलि का स्मरण भी यहॉ आवश्यक है, जिसकी शैशवकालिक सुलभ चञ्चलताओ ने मुझमे नवस्फूर्ति का सञ्चार किया। श्री सूर्य प्रकाश जी गुप्त, जिन्होने शोध–प्रबन्ध को मुद्रित करने मे अत्यन्त तत्परता दिखायी, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। अस्तु।

समस्त प्रयत्नो के बाद भी अपनी मन्दमति के कारण मैंने यहॉ सिद्धान्त एव प्रयोग के विरूद्ध यदि कुछ कह दिया हो, तो उसे अन्यथा न लेकर उदारचेता विद्वान् उसका शोधन करने की कृपा करे, एतदर्थ कुछ परिवर्तन के साथ हेमचन्द्र के शब्दो मे कहने का साहस कर रहा हूँ–

प्रयोग–सिद्धान्तविरुद्धमत्र यत्किञ्चिदुक्त मतिमान्द्यदोषात्।
मात्सर्यमुत्सार्य उदारचेत्ता प्रसादमाधाय समादधन्तु।।

विनयावनत

गुरुपूर्णिमा

२४ जुलाई, २००२

विनोद कुमार गुप्त

विषय-सूची

पृ०स०

प्रथम अंध्याय –

छन्द स्वरूप एव इतिहास ०१ – ५५

विषयावतरण

छन्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

छन्द का स्वरूप

छन्द 'वेदाङ्ग' के रूप मे

छन्द का उद्भव

लौकिक छन्दो की उत्पत्ति

विकास एव परम्परा

छन्द काल का विभाजन– पिङ्गल का पूर्वकालिक छन्द काल

पिङ्गल का छन्द काल

पिङ्गल का उत्तरकालिक छन्द काल

छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ एव आचार्य–

क्रौष्टुकि

यास्क

ताण्डी

सैतव

काश्यप

रातमाण्डव्य

छन्द शास्त्र – आचार्य पिङ्गल

भट्ट हलायुध

यादव प्रकाश

भास्करराय

शौनकीय प्रातिशाख्य

सर्वानुक्रम – कात्यायन

अग्निपुराण

गरुडपुराण

नारदीयपुराण

विष्णुधर्मोत्तर पुराण

नाट्यशास्त्र – आचार्य भरत

श्रुतबोध – कालिदास
बृहत्संहिता – वराहमिहिर
जनाश्रयी–छन्दोविचिति – जनाश्रय
जयदेवच्छन्द – जयदेव
छन्दोऽनुशासन – जयकीर्ति
रत्नमञ्जूषा
सुवृत्ततिलक – क्षेमेन्द्र
वृत्तरत्नाकर – केदारभट्ट
छन्दोऽनुशासन – हेमचन्द्र
वाणीभूषण – दामोदर मिश्र
छन्दोमञ्जरी – गङ्गादास
वृत्तरत्नावली – वेकटेश
वृत्तप्रत्ययकौमुदी – रामचरण शर्मसूरि
छन्दोऽङ्कुर – गङ्गासहाय
प्रस्तारादिरत्नाकर – अमरदास
वृत्तमौक्तिक – भट्ट चन्द्रशेखर
छन्द कौस्तुभ – राधा दामोदर
छन्द कोश – आचार्य रत्नशेखर
वृत्तमुक्तावली – श्रीकृष्ण भट्ट
वाग्वल्लभ – दु खभञ्जन कवि
छन्दस्कलावती – डॉ० रामकिशोर मिश्र
छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो का विभाजन
निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय .–

छन्द शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द ५६ – ८४
वर्ण एव मात्रा
पाद
गण
यति
गति
निष्कर्ष

तृतीय अध्याय –

छन्दो के भेद-प्रभेद — ८५ – १४४

वैदिक छन्द का स्वरूप–विवेचन
गायत्र्यादि छन्द सप्तक की अर्थवत्ता
वैदिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ
लौकिक छन्दो का विकास
लौकिक छन्दो के भेद
लौकिक छन्दो के प्रमुख दो भेद
मात्रिक छन्दो का विवेचन
आर्या के विविध रूप
मात्रिक छन्दो के तीन वर्ग
वार्णिक छन्द की उद्‌भावना
वार्णिक छन्द के भेद
षड्प्रत्ययो का निरूपण
मात्रिक प्रस्तार
उपजाति के प्रस्तारगत विविध रूप
वार्णिक छन्द के भेदो का विवेचन
मात्रिक एव वार्णिक छन्द मे भेद
निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय –

छन्दो का नामकरण — १४५– १५६

छन्दो के नामो का वैशिष्ट्य
नामो की अर्थवत्ता
निष्कर्ष

पञ्चम अध्याय –

छन्द एव भाव — १५७ – १८१

छन्द एव भाव में अन्त सम्बन्ध
रसभावानुसारी छन्दो का प्रयोग
छन्द एव अलङ्कार मे अन्त.सम्बन्ध
निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय –

सस्कृत-छन्द एव अन्त्यानुप्रास १८२ – १६४

काव्यशास्त्र एव काव्य मे अन्त्यानुप्रास

अन्त्यानुप्रास– प्रयोग की प्रवृत्ति

पादान्तात्मक प्रवृत्ति

पदान्तात्मक प्रवृत्ति

पादान्त– पदान्तात्मक प्रवृत्ति

निष्कर्ष

सप्तम अध्याय –

सस्कृत-गीतिकाव्य मे छन्दोविधान १६५ – २२८

छन्द का सङ्गीत से सम्बन्ध

मात्रिक छन्दो मे गीति–रचना

गीतगोविन्द मे छान्दसी योजना

आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्य मे छन्द

सस्कृतीकृत छन्द

सस्कृत–गीतिकाव्य मे छन्दो के अभिनव प्रयोग

नवोद्भावित छन्दो के नामकरण एव लक्षण

निष्कर्ष

उपसहार २२६ – २३२

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची २३३ – २३८

प्रथम अध्याय

छन्द :

स्वरूप एवं इतिहास

प्रथम अध्याय
छन्द – स्वरूप एवं इतिहास

विषयावतरण –

'छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छन्दश्शब्दवर्जितम्' नाट्यशास्त्र की यह उक्ति स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करती है कि न कोई शब्द छन्दो से रहित है और न कोई छन्द शब्दो से रहित है। आचार्य भरत के कथन से अपनी सहमति प्रकट करते हुए जयकीर्ति का कथन है कि सम्पूर्ण वाङ्मय छन्दोमय है, छन्द के बिना कुछ नहीं – 'छन्दोभाग्वाङ्मय सर्वं न किञ्चिच्छन्दसा बिना।'[1] निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ने तो यहाँ तक कह दिया कि छन्द के बिना वाणी उच्चरित ही नहीं होती– "नाच्छन्दसि वागुच्चरति।"[2] आचार्य भरत के इस कथन से छन्द की व्यापकता को समझा जा सकता है। छन्द पद्यकाव्य का एक आवश्यक अङ्ग है या यह कहें कि छन्द पद्य का समवायिकारण है। पञ्चविध कलाओं मे परिगणित काव्यकला अपने उन्नत शिखर पर तभी आरूढ होती है जब कविता रसभिव्यञ्जक होने के साथ–साथ छन्दोबद्ध हुआ करती है। जन सामान्य के लिये छन्दोमयी कविता ही पुरुषार्थ– चतुष्टय को प्राप्त कराती है। आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रयोजनो में 'सद्य परनिर्वृति'[3] की भी गणना की है। 'सद्य मुक्ति' परमानन्द (ब्रह्मानन्द) का ही दूसरा नाम है। यह आनन्द छन्दोबद्ध कविता मे छन्दोविहीन कविता की अपेक्षा अधिक प्राप्त होता है। वस्तुत छन्दोमयी वाणी जनसाधारण के लिये अधिक प्रभावी हुआ करती है अर्थात् छान्दसिक

---

[1] छन्दोऽनुशासन अधिकार–१, पद्य–२

[2] निरुक्त ६/२ की वृत्ति

[3] काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।
–काव्यप्रकाश उल्लास प्रथम, कारिका–२

रचनाये मानव मात्र को सहज ही चतुर्वर्गफल की प्राप्ति कराती हैं। छन्दोमुक्त कविता से भी आनन्द की प्राप्ति होती है, लेकिन इस स्थिति में कविता विदग्धजनों का विषय बन जाती है तथा जनसाधारण से दूर हो जाती है। इसके अतिरिक्त कविता के प्राण तत्त्व लयात्मकता, सुश्राव्यता तथा सम्प्रेषणीयता छन्द के द्वारा ही सम्भव हैं। छन्दों की लयात्मकता आदि उनकी निजी विशेषता है, जो छन्द से अनभिज्ञ व्यक्तियो के कानो पर ऐसा प्रभाव डालती है कि केवल उसका समुचित ढग से कविता पाठ ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त होता है। सुश्राव्यता छन्दों का आवश्यक गुण है। रचना की सफलता के लिये छन्दो के नियमो का पालन करना आवश्यक होता है। यदि छन्द के सिद्धान्तों या नियमो को ध्यान मे रखकर छन्द का पाठ न किया गया, तो छन्दोभङ्ग दोष प्रसक्त होता है तथा साथ ही सुश्राव्य के स्थान पर दु श्राव्य हो जाता है। छादसिक नियमो की परवाह किये बिना छन्द का पाठ करने पर ऐसा लगता है जैसे बैल चिल्ला रहा हो या कोई गाल पर चाँटा मार रहा हो। अतएव छन्द का पाठ करने के लिये उसके सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसीलिये तो छन्द की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए राधादामोदर का मन्तव्य है कि जो मनुष्य सभा में छन्दो के लक्षणो से रहित काव्य पाठ करते हैं, वे अपने हाथ से ही अपना सिर काटते हुए भी नहीं जान पाते हैं कि वे अपना सिर काट रहे हैं–

"छन्दो लक्षणहीन सभा सुकाव्य पठन्ति ये मनुजा।
कुर्वन्तोऽपि स्वेन स्वशिरच्छेद न ते विदु।।"[1]

छन्द के ज्ञान के बिना काव्य–पाठ करने वाले विद्वानो की सभा में उपहास का पात्र होते हैं, अत छन्द·बोध अत्यन्त आवश्यक है।

---

[1] छन्द·कौस्तुभ, प्रभा–१, पद्य–४

छन्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ एव स्वरूप –

छन्द सस्कृत–वाड्मय का मेरुदण्ड है। छन्द की आधार भूमि पर प्रतिष्ठित होकर सस्कृत–काव्य व्यवस्थित रूप से गतिमान् हुआ है। छन्द को वेद का पादद्वय माना गया है।

वैदिक वाङ्मय मे 'छन्द' के विविध अर्थ देखने को मिलते हैं। ब्राह्मण ग्रथो मे 'सूर्यरश्मि' अर्थ मे छन्द का प्रयोग है।[1] पुराणो में भी सर्वत्र सूर्य के प्रसिद्ध सात अश्वरश्मियॉ ही 'छन्द' से सङ्केतित हैं।[2] ब्राह्मण ग्रन्थों मे छन्दों को 'प्राण' की सञ्ज्ञा दी गयी है।[3] इसके अतिरिक्त उन्हे रस तथा गायत्र्यादि छन्द· सप्तक को अग्नि के प्रिय सात धाम भी बताया है।[4] इस युग मे हम देखते हैं कि छन्द का महत्त्व इतना व्यापक हो गया था कि उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे समावेश होने लगा, फिर उसे सूर्य की किरणें, अग्नि के धाम, प्राण, रस आदि के रूप में माना जाने लगा। परन्तु लौकिक वाङ्मय में 'छन्द' के पद्य, वेद, इच्छा, सहिता आदि अर्थ प्राप्त होते हैं।[5] कोश ग्रन्थों में भी छन्द के विविध अर्थ समुपलब्ध होते हैं। अमरकोश में छन्द के पद्य तथा अभिलाषा अर्थ बताये गये हैं।[6] मेदिनी कोशकार ने छन्द के चार अर्थ बताये हैं– पद्य, वेद, स्वैराचार तथा अभिलाषा।[7] कोशग्रन्थो मे छन्द का अर्थ प्राय पद्य ही उपलब्ध होता है, जो कि लोक मे भी मान्य है। अत छन्द का अर्थ नियम विशेष के तहत की गयी शब्द–योजना ही अभिप्रेत है। प्राचीन सस्कृत वाङ्मय में इसके विविध

---

[1] एष वै रश्मिरन्नम् शतपथ ब्राह्मण ८/५/३/३

[2] छन्दोभिरश्वरूपै· वायुपुराण ५२/४५, छन्दो रूपैश्च तैरश्वै·, हयाश्च सप्त छन्दासि, विष्णुपुराण २/८/७

[3] प्राणा वै छन्दासि, कौषीतकि ब्राह्मण ६/६

[4] शतपथ ब्राह्मण ६/२/३/४४ माध्यन्दिन सहिता १७/७६ की व्याख्या

[5] इच्छा सहितयोरर्षि छन्दोवेदे च छन्दासि काशिका १/२/३६

[6] छन्द· पद्येऽभिलाषे च, काण्ड–३, वर्ग–३ पद्य–२३२

[7] छन्द पद्ये च वेदे च स्वैराचाराभिलाषयो सत्रिक–१७१, पद्य–२२

नाम मिलते हैं– छन्दोविजिति छन्दोमान छन्दोभाषा, छन्दोविजिनी, छन्दोविचिति तथा छन्दोव्याख्यान आदि।[1]

'छन्द' सस्कृत के 'छन्दस् का अर्द्धतत्सम रूप है। यदि प्रकृति–प्रत्यय के आधार पर 'छन्द के अर्थ को जानने की चेष्टा करें, तो ज्ञात होता है कि आचार्य पाणिनि ने 'छन्दस्' शब्द की व्युत्पत्ति 'चदि आह्लादने' धातु से 'असुन्' प्रत्यय करके मानी है।[2] 'छदि सवरणे' धातु से भी 'असुन् प्रत्यय करके इसकी निष्पत्ति स्वीकार की है, जिसका व्यवहार में सामान्यत आच्छादन करना, प्रसन्न करना, बाँधना, आह्लादित करना, ढक लेना आदि अर्थ होता है। निरुक्तकार आचार्य यास्क ने 'छनदासि छादनात्' कहकर आच्छादन करने के कारण इसे 'छन्द' कहा है।[3] वैदिक सहिता में 'छन्द' की निरुक्ति करते हुए कहा गया है कि 'पापकर्म से जो इसको (मत्र को) निवारित करे, वे छन्द कहलाते हैं– "छादयन्ति ह वा एन पापात् कर्मण।" ब्रजमोहन झा ने सुवृत्त तिलक की भूमिका मे विस्तार के साथ 'छन्द' का निर्वचन करते हुये लिखा है कि "छन्द पद का व्यवहार सामान्यत कामना, अभिलाषा, स्वेच्छाचार आदि की सञ्ज्ञा के रूप में होता है। इनमे भी स्वेच्छाचार अर्थ अधिक प्रचलित है। 'छन्दसा कृत', 'छान्दस्य स्वच्छन्द' आदि प्रयोग उदाहरण–स्वरूप उद्धृत किये जा सकते हैं। आजकल यह पद्य तथा वेद के अर्थों में रूढ हो गया है। जहाँ तक वेद का इस नाम से सम्बन्ध है, यह उसका कोई सुनाम नहीं है। जब भी और जिसने भी उसका यह नामकरण किया होगा दुर्नाम समझकर ही, क्योकि उसका यह नाम तभी व्यवहृत होता है, जबकि उसका भाषागत स्वेच्छाचार समझना वक्ता का अभिप्रेत होता है। जैसे–

---

[1] पाणिनीय गणपाठ– ४/३/७३, जैनेन्द्रगणपाठ ३/३/४७, जैनेन्द्रशाकटायनगणपाठ– ३/१/१३६, चन्द्रगणपाठ– ३/१/४५, गणरत्नमहो दधि–५/३४४, सरस्वती कण्ठाभरण–४/३

[2] पाणिनि धातुपाठ भ्वादिगण, ७०

[3] निरुक्त, दैवतकाण्ड ७/३

'छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति', छन्दासिदृष्टानुविधि', 'छन्दसि बहुलम् इत्यादि।[1] 'आचार्य पाणिनि 'बहुल छन्दसि[2] आदि सूत्रों में अनेकश इस शब्द का प्रयोग वेद अर्थ में करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'छन्द विविध अर्थों मे प्रयुक्त होता रहा है। छन्द' के ये सभी अर्थ उपपन्न हैं। पद्य का अर्थ है– पद चरण अर्हतीति अर्थात् चरणो मे उपनिबद्ध होने के कारण 'पद्य' अर्थ युक्तिसङ्गत है। भावों का आच्छादन होने के कारण 'आच्छादन' अर्थ, प्रभूत भावों का एक साथ सङ्कलन होने के कारण 'सहिता' अर्थ उपपन्न है। छन्दोबद्ध रचना से रचनाकार एव श्रोता दोनों आह्लादित होते हैं, अतएव इसका 'आह्लादन' अर्थ भी उपयुक्त है। वेदमन्त्र छन्दोबद्ध हैं और बिना छन्दोमय पाठ के मन्त्र प्रभावपूर्ण नहीं होते, इसलिये 'छत्रिन्यायेन' 'वेद' अर्थ भी उचित प्रतीत होता है। व्यक्ति अपनी इच्छाओ और कामनाओं के लिये छन्दोबद्ध मत्र के माध्यम से ही देवताओं की स्तुति किया करते हैं, जिससे 'इच्छा' एव 'कामना' अर्थ भी सुसङ्गत बैठता है। अत स्पष्ट है कि विविध विशेषताओं के होने के कारण ही 'छन्द' विविध अर्थों मे व्यवहृत होता रहा है, किन्तु अधिकतर छन्द·शास्त्रीय आचार्यों ने पद्यबद्ध रचना को ही छन्द माना है। पद्य की रचना मे छन्द पूर्ण उपयोगी रहता है, क्योकि बिना छन्द के किसी पद्य का निर्माण नहीं होता। पद्य छन्दोबद्ध होता है। सस्कृत–कवि तो छन्दोहीन पद्य की कल्पना भी नहीं करते, छन्दोहीन पदावली को वे गद्य कहते हैं।[3] छन्दोहीन गद्य एक उत्कृष्ट काव्य हो सकता है, जब कि छन्दोबद्ध होकर भी कोई भी वाङ्मय का रूप काव्य की परिधि में नहीं आ सकता। अत· छन्दोबद्धता काव्य की अपरिहार्य कसौटी नहीं है।

---

[1] सुवृततिलक की भूमिका, पृ० ७ (सस्कृत ग्रन्थ माला २७६)

[2] अष्टाध्यायी, ७/१/८

[3] गद्य निगद्यते छन्दोहीन पदकदम्बकम्– सङ्गीत रत्नाकर, पृष्ठ ३०६

छन्द का स्वरूप –

छन्द और छन्दशास्त्र का सम्बन्ध भाषा और व्याकरण के समान है। जिस प्रकार व्याकरण भाषा में प्रचलित शब्दों की साधुता–असाधुता के विषय मे अध्ययन करता है। उसका काम भाषा के बाजार मे नये–नये शब्द गढकर बेचना नहीं। उसी तरह छन्दशास्त्र भी प्रचलित छन्दों का ही विश्लेषण करता है, नया छन्द गढना उसका काम नहीं। इसी भाव को कुँवर नारायण ने इस प्रकार कहा है– "छन्द, जिन्हे कविता का व्याकरण कहना शायद गलत न होगा, कविता के विकास में कुछ उसी तरह टूटते बनते चले हैं, जैसे भाषा के विकास मे व्याकरण।"[1]

प्रश्न उठता है कि 'छन्द' का स्वरूप क्या है? या अन्य शब्दो मे कहे कि शब्दो के किस प्रकार के सयोजन को 'छन्द' नाम दिया जाता है? इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप छन्द·शास्त्रीय आचार्यों एव मनीषियो ने अनेक बातें कही हैं या 'छन्द' के स्वरूप का निर्धारण किया है। सर्वप्रथम हिन्दी छन्द के विद्वानो के मत की चर्चा करना चाहेगे। रघुनन्दन शास्त्री ध्वनियो के सामञ्जस्य को छन्द कहते हैं। उनके अनुसार "किन्हीं छोटी–बड़ी ध्वनियो के सामञ्जस्य को छन्द कहते हैं।[2] यहाँ छोटी–बडी ध्वनियों से तात्पर्य लघु एव गुरु का विशिष्ट सयोजन प्रतीत होता है। पुत्तूलाल शुक्ल का कहना है कि "छन्द नियमित मुखध्वनि रचना है।"[3] यहाँ पर शुक्ल जी ने 'नियमित' शब्द से आशय 'नियन्त्रित' या 'नियमों से बँधी हुई' लिया होगा, ऐसा जान पड़ता है।

---

[1] कुँवर नारायण तीसरा सप्तक पृ० २३५

[2] हिन्दी छन्द·प्रकाश – पृ० १६–१७

[3] हिन्दी काव्य में छन्द योजना पृ० २३

जगन्नाथ प्रसाद भानु ने छन्द· तत्वों से युक्त पद्य रचना को 'छन्द' माना है–

मत्त वरण गति यति नियम अतहि समता बन्द।[1]

जो पद रचना मे मिले भानु भनत सोइ छन्द।।

श्री अवध उपाध्याय ने छन्द के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – "जिस रचना मे वर्ण, मात्रा, लय, गति, यति और चरणान्त सम्बन्धी नियमो का वर्णन हो, उसे छन्द कहते हैं।[2] डा० गौरी शकर मिश्र ने छन्द के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये लिखा है– "छन्द वह लयात्मक, नियमित तथा अर्थपूर्ण वाणी है, जिसमें आबद्ध होकर कोई वाक्य या वाक्याश पद्य का रूप धारण करता है।"[3]

छन्द शास्त्रीय आचार्यों ने इसके स्वरूप निर्धारण मे अक्षर सख्या को ही मूल माना। ऋग्वेद सहिता के प्रथम मण्डल का यह मत्र उद्घोष करता है–

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण सामत्रैष्टुभेन वाकम्।[4]

वाकेन वाक द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्तवाणी ।।

छन्द का लक्षण महर्षियों ने अत्यन्त अर्थानुसारी ही किया है। कात्यायन मुनि ने सर्वानुक्रमणी में छन्द का स्वरूप इस प्रकार बताया है–

"यदक्षरपरिमाण तच्छन्द"[5]

अर्थर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी में भी कहा गया है–

"छन्दोऽक्षरसख्यावच्छेदकमुच्यते।"

आचार्य पिंगल के 'छन्द·सूत्र' पर हलायुध की वृत्ति भी अक्षर सख्या के अवच्छेदक को ही छन्द के रूप में स्वीकार किया है–

---

[1] छन्द· प्रभाकर, पृ० –१

[2] नवीन पिङ्गल पृ०–५५

[3] सूर साहित्य का छन्द· शास्त्रीय अध्ययन पृ० १३–१४

[4] ऋग्वेद सहिता १/१६४/२४

[5] कात्यायन, ऋक्सर्वानुक्रमणी २/७

छन्द शब्देनाक्षरसख्यावच्छेदोऽत्राभिधीयते [1]

छन्द के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आचार्य भरत का कथन है कि जिसमे पदो एव अक्षरो का निश्चित क्रम के अनुसार गठन हो, यति समन्वित हो तथा जिसमे अक्षर सख्या का प्रमाण रहे, ईदृश शब्दों के गठन द्वारा जो पद रचना की जाती है, उसमें चार पाद होते हैं, उसमे अनेक अर्थों का अभिव्यञ्जन रहता है तथा वर्णों के द्वारा यह निर्मित की जाती है, ऐसी रचना छन्द या वृत्त नाम से अभिहित की जाती है।"[2] आचार्य भरत ने नियताक्षरबन्ध (निश्चितानि अक्षराणि यस्मिन् स बन्ध नियताक्षरबन्ध) को 'छन्द' माना है।

उपर्युक्त छन्द के स्वरूप–निर्धारण विषयक विविध मत–मतान्तरों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि आचार्य भरत आदि सभी छन्द स्वरूप के निर्धारण में लौकिक छन्द के जनक दयार्द्रचेता महर्षि वाल्मीकि के विचार को ही आधार मानते हुये दिखायी देते हैं।

क्रौञ्चवध के पश्चात् करुणार्द्रचित्त महर्षि वाल्मीकि के मुख से सहसा यह वाणी फूट पडी–

मा निषाद ! प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ।।

इसका एकाएक प्रस्फुटन देखकर मुनि वाल्मीकि के मन में विचार आया कि इस वाणी में चार चरण हैं एव चारों चरणो में अक्षर सख्या समान है तथा

---

[1] 'छन्द' (२/६) पर हलायुधवृत्ति

[2] निबद्धाक्षरसयुक्त यतिच्छेदसमन्वितम् ।
निबद्धन्तु पद ज्ञेय प्रमाणनियतात्मकम् ।।
एव नानार्थसयुक्तै पादैर्वर्णविभूषितै ।
चतुर्भिस्तु भवेद्युक्त छन्दोवृत्ताभिधानवत् ।।
— नाट्यशास्त्र १५/३८–३९

सङ्गीत के नाद एव लय से युक्त निश्चित रूप से श्लोक हैं और श्लोक के अतिरिक्त कुछ नहीं–

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वित ।

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।।[1]

इस उद्धरण से निश्चित रूप से यह व्यक्त होता है कि छन्द के द्वारा काव्य मे अक्षरो का नियमन और उससे पाद का स्वरूप–निर्माण होता है और वह चरणबद्ध अक्षर–क्रम एक विशेष प्रकार के राग एव कविता को छान्दस सङ्गीत मे बॉध देती है।

उपर्युक्त छन्द के स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात् यह बात सामने आती है कि वर्णों के विशिष्ट सयोजन (मर्यादा) का नाम छन्द है, जैसाकि डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि "जहॉ छन्द होता है, वहॉ मर्यादा आ जाती है।[2] छन्द के मुख्य लक्षण हैं– वर्णों का विशिष्ट सयोजन, भावो का सवरण, आह्लादन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निश्चित अक्षरो का एक विशिष्ट सयोजन, पादबद्धता एव लयात्मकता आदि छन्द के स्वरूपाधायक तत्त्व हैं। अत हम सरल एव स्पष्ट रूप से छन्द का लक्षण इस प्रकार कर सकते हैं कि छन्द एक ऐसी रचना है, जो (जिसमें भावो का भी समावेश हो) निश्चित अक्षरो के लघु–गुरु के विशिष्ट सयोजन से पादबद्ध होकर लयात्मकता को प्राप्त होती है।

छन्द 'वेदाङ्ग के रूप में :–

वेद के षडङ्गो में से एक अङ्ग के रूप में 'छन्द' प्रतिष्ठित है। इसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हुये आचार्य पाणिनि ने पाणिनीय शिक्षा में लिखा है–

---

[1] वाल्मीकि रामायण – बालकाण्ड सर्ग –२, श्लोक–१८

[2] वेदविद्या, पृष्ठ–१०२

'छन्द वेद का पैर है।'[1] अर्थात् वेदाङ्ग में परिगणित 'छन्द' वेद पुरुष के पादस्थानीय है। जिस प्रकार पुरुष बिना पैर के चल नहीं सकता, उसी प्रकार छन्द के ज्ञान के बिना वेदाध्ययन और वेद दोनो पङ्गु हैं। कात्यायन का यह स्पष्ट कथन है कि 'जो व्यक्ति छन्द, ऋषि तथा देवता के ज्ञान से हीन होकर मन्त्र का अध्ययन–अध्यापन यजन–याजन करता है, उसका प्रत्येक कार्य निष्फल होता है।[2] यही बात छान्दोग्य ब्राह्मण (३/७/५) मे कही गयी है। 'छन्दासि छादनात् की टीका में दुर्गाचार्य ने लिखा है कि 'मृत्यु से भयभीत हुए देवों ने अपने को छन्द से आच्छादित कर लिया, इसी से मन्त्र 'छन्द' कहलाने लगे।'"[3]

वस्तुत छन्दो को वेदों का अङ्ग इसलिये स्वीकार किया गया क्योंकि समस्त वैदिक वाङ्मय विशेष रूप से सहिता भाग छन्दों के नियम से विधिवत् आबद्ध हैं और समग्र मत्रो का स्वरूप छन्दो द्वारा ही नियन्त्रित है, जिससे वैदिक सूक्तों का गायन छन्द के बिना सम्भव नहीं होता। अत वैदिक भाषा के अध्ययन हेतु छन्दों का ज्ञान होना अपरिहार्य है। छन्द के बिना वैदिक वाणी की गति सम्भव नहीं है। इन्हीं सब कारणो से छन्द की वेदाङ्ग के रूप में प्रतिष्ठा हुई।

छन्द का उद्भव –

छन्दोविधान के सैद्धान्तिक विश्लेषण के सन्दर्भ में छन्द के उद्भव एव क्रमिक विकास की परम्परा का विवेचन अपेक्षित जान पडता है। अतएव सर्वप्रथम छन्द के उद्भव के विषय मे यह प्रश्न उठता है कि छन्द का उद्भव कब हुआ ? इस विषय में इदमित्थ रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । यदि हम यह कहे कि वेद अक्षय्य

---

[1] छन्दः पादौ तु वेदस्य पा०शि० ४१–४२

[2] यो ह वा अविदितार्षे यच्छन्दो दैवत–ब्राह्मणेन मन्त्रेण या जयति वा अध्यापयति वा स्थाणु वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति। सर्वानुक्रमणी १/१

[3] यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्योर्बिभ्यत तच्छन्दसा छन्दस्त्वम्।

ज्ञान के स्रोत हैं, वे सभी प्रश्नो का समाधान करने मे समर्थ हैं, इसलिये उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर उनमे निहित है, तो यह उपपन्न नहीं होता, क्योकि ऋग्वेदादि सहिता मे जो गायत्री प्रभृति छन्द देखे जाते हैं, वे उद्भव की स्थिति वाले छन्द नहीं है। एक नियम के तहत उनकी रचना हुई जान पडती है। छन्द का प्रथम रूप सहज एव सुबोध है, जिसका ज्ञान वेद के माध्यम से नहीं हो सकता और न ही इसका ज्ञान ठीक–ठीक विश्व मे किसी को होगा। छन्द का उद्भव ऋग्वेदादि सहिता के बहुत पहले हो चुका रहा होगा, जिसका लक्षणविहीन, सुश्राव्य तथा सुगम शब्दो का सयोजन एव गेयात्मक स्वरूप रहा होगा। चूँकि छन्द एक सैद्धान्तिक विवेचन है, अत स्पष्ट है कि यह समाज में प्रयुक्त एक विशेष प्रकार की शैली रही होगी। जहाँ तक हमारा विचार है कि लोग अपनी आवश्यकताओ और विचारो को सामान्य बोलचाल की भाषा(वैखरी) में प्रकट करते रहे होगें, कथञ्चित् उनके अन्दर कुछ ऐसी अनुभूति हुई होगी, जिससे उनकी अपनी आत्मिक अनुभूति सहसा गेयात्मक रूप मे निकली हुई होगी और तबसे भाषा का गेयात्मक रूप सामने आया होगा, जो बाद में छन्द‘शास्त्र का छन्द बन गया और वेदों मे गायत्री प्रभृति छन्द का नामकरण हुआ तथा छन्द की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। वेद–रचना–काल तक आते–आते मानव समाज काफी विकसित हो गया होगा और अन्वेषी मनीषा ने सामान्य बोलचाल की भाषा तथा भाषा के गेयात्मक रूप में वाणी–क्रम का अध्ययन किया होगा, जिससे इनमें परस्पर भेद का ज्ञान हुआ होगा और उसके सम्यक् सस्कार से पद्योपयुक्त छन्द प्रकाश में आये होंगे, जिनमे वेदों की रचना हुई होगी और बाद में गद्य का भी सस्कार हुआ होगा और यजुर्वेद की रचना हुई होगी। इस प्रकार ये दोनों शब्द शिल्प के प्रमुख अङ्ग हो गये होंगे। इसीलिये छन्द को 'शिल्प' भी कहा जाता है। धीरे–धीरे इन शैलियो में निरन्तर सस्कार होता रहा, परिणाम स्वरूप 'सामवेद' में वह

पूर्णत गेयात्मक रूप के साथ प्रस्तुत होती है। निरन्तर सस्कार होते रहने के कारण वैदिक युग समाप्त होते–होते छन्दो के रूप मे दो बार परिवर्तन देखने को मिलते हैं, जिससे वेदो में छन्द के तीन रूप सामने आते हैं– प्रथम रूप वह है जो वेद मे गाथा के नाम से जाना जाता है। ये रचनाये प्राग्वैदिक काल की मानी जा सकती है। दूसरा रूप ऋग्वेद मे प्रयुक्त छन्दो का है जो अक्षर एव मात्रा के नियन्त्रण से पूर्णत प्रभावित है। सामवेद मे छन्द का तीसरा रूप देखने को मिलता है, जो पूर्णत यति, गति, ताल, तुक आदि के साथ मात्राओ के बन्धन को स्वीकार करता है।

लौकिक छन्दो की उत्पत्ति – हॉ, लौकिक छन्दो का उपजीव्य ऋग्वेदादि सहिता ही है, क्योकि इनमें लौकिक छन्दो के बीज गोचर होते हैं। लौकिक छन्दो मे प्रमाणिका, वशस्थ, उपेन्द्रवज्रा आदि छन्दो का पुट लिये ऋग्वेदादि सहिता मे अनेकश मन्त्र देखे जाते हैं। यथा–

वशस्थ – रथ न दुर्गाद्वसव सुदानव (ऋ० १/७/२४)

प्रमाणिका – हृदि स्पृगस्तु शन्तम· (ऋ० १/३/३१)

इन्द्रवज्रा– पूषण्वते ते चकृमा करम्भ (ऋ० ३/३/१८)

उपेन्द्रवज्रा – स्तुहि श्रुत गर्त सद युवान (ऋ० २/७/१८)

उपजाति –'अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्त ददृक्षे कुह चिद्दिवेयु (ऋ०१/२/१४)

शालिनी – इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुग भूत (ऋ० ५/७/६)

वातोर्मी – आ देवानामभव केतुरग्ने (ऋ० २/८/१६)

इन्द्रावशा – यूना ह सन्ता प्रथम वि जज्ञतु (७/२/१६)

नराच– अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिचर (१/१/१६)

इहामृगी – अग्नेर्वय प्रथमस्यामृतानाम् (ऋ०– १/२४/२)

सेनिका – अबाधम वि मध्यम श्रयाय (ऋ०– १/२४/१५)

सौभगकला – भेषजमपामुत प्रशस्तये (ऋ०– १/२३/१६)

ललिता – यस्तातृषाण उभयाय जन्मने (ऋ०– १/३१/७)

यजुर्वेद सहिता मे उपजाति का कितना सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है–

एषो ह देव प्रदिशो नु सर्वा पूर्वो ह जात स उ गर्भे अन्त ।[1]

स एष जात स जनिष्यमाण प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुख ।।

उपर्युक्त मन्त्र चाहे वे पूरी ऋचा हो या अर्धर्च लौकिक छन्दों के बीज रूप में स्पष्ट रूप से दिखायी पडते हैं। अत हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि वेद ही लौकिक छन्दो के उपजीव्य हैं । अन्य शब्दों में वेद ही लौकिक छन्दो की उत्पत्ति के मूल हैं। हॉ, दोनो की पद्धति में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर है। ऋग्वैदिक छन्द स्वर सङ्गीत पर आश्रित है (इसलिए वैदिक छन्द को स्वर–वृत्त भी कहते हैं), जबकि लौकिक छन्द वर्ण–सङ्गीत पर। इनके अन्तर को स्पष्ट करते हुये आचार्य बलदेव उपाध्याय[2] ने लिखा है "वैदिक छन्द स्वर सङ्गीत पर आश्रित हैं अर्थात् स्वरों के उच्चावच प्रकार पर आधारित हैं। उनमें अक्षर गणना ही प्रधान है, उन अक्षरों के रूप– ह्रस्व या दीर्घ– से उनका कोई महत्त्व नहीं है। लौकिक छन्द वर्ण–सङ्गीत पर आश्रित हैं अर्थात् वर्णों के उच्चारण प्रकार का समधिक महत्व है। इन वर्णों के गुरु लाघव के कारण ही छन्दो मे सुश्राव्यता उत्पन्न होती है और इसी सुश्राव्यता को मुख्य तत्त्व मानकर लौकिक छन्दो की रचना हुई है।" लौकिक छन्द की रचना का प्रारम्भ क्रौञ्चवध के पश्चात् करूणार्द्रचित्त महर्षि वाल्मीकि के मुख से सहसा निकली हुई वाणी –

---

[1] यजुर्वेद (३२अ, ३क ४मन्त्र)

[2] सस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृष्ठ–२६३

मा निषाद ! प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।[1]

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

से हुआ। इस वाणी का सहस्त्र प्रस्फुटन देखकर मुनि वाल्मीकि के मन मे यह विचार आया कि अभी–अभी मेरे मुख से जो उद्गार निकले हैं, वे चार चरणो में बद्ध हैं एव चारो चरणों मे अक्षरो की सख्या एक समान है और यह पदावली सङ्गीत के नाद एव लय से युक्त है । अत मेरे मुख से निकला हुआ यह उद्गार निश्चित रूप से श्लोक है और श्लोक के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता–

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वित ।

शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ।।[2]

कालिदास की अनुभूति भी इसे श्लोक कहती है–

'निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थ श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक'[3]

महर्षि वाल्मीकि के मुख से निकली हुई वाणी ही लौकिक छन्द का प्रथम छन्द अनुष्टुप् है, जो वैदिक छन्द अनुष्टुप् से भिन्न है। यहीं से लौकिक छन्द का उदय माना जाता है। वैदिक अनुष्टुप् छन्द में प्रत्येक चरण में आठ–आठ अक्षर होते हैं, किन्तु गुरु–लघु का कोई सयोजन नहीं है, जबकि इस नवोदित छन्द के प्रत्येक पाद में आठ–आठ अक्षर के अतिरिक्त गुरु–लघु का विशेष सयोजन है और इसी सयोजन के कारण सुनने में एक विचित्र माधुरी उत्पन्न होती है और यही महाकवि भवभूति के मुख से कहलवा देती है–

"चित्रम् ! आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः ।"[4] अर्थात् वेद के अतिरिक्त लोक में भी छन्दो का यह नया प्रादुर्भाव है। रामायण से पूर्व लौकिक छन्द में कविता

---

[1] वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग–२ पद्य–१५

[2] वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग–२ पद्य–१८

[3] रघुवश सर्ग–१४, पद्य–७०

[4] उत्तररामचरित अङ्क–२

नहीं थी। सर्वप्रथम क्रौञ्चद्वन्द्वियोगविक्लान्त वाल्मीकि की अन्तस् भावधारा लौकिक छन्द मे प्रस्फुटित हुई। इसीलिये वनदेवता के माध्यम से भवभूति ने छन्दों के नवीन अवतार की बात कही है।

छन्द शास्त्र की परम्परा एव विकास–

छन्द शास्त्र की परम्परा एव क्रमिक विकास के सन्दर्भ में यदि हम समुलब्ध छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो के आधार पर 'यश पुण्यैरवाप्यते' के अनुसार आचार्य पिङ्गल को प्रवर्तक आचार्य (जैसा कि सर्वमान्य है) कहे, तो इसके विकास–क्रम को त्रिधा विभक्त किया जा सकता है–

१ आचार्य पिङ्गल का पूर्वकालिक छन्द काल

२ आचार्य पिङ्गल का छन्द काल

३ आचार्य पिङ्गल का उत्तरकालिक छन्द काल

जहाँ तक छन्द शास्त्र की परम्परा का सम्बन्ध है पिङ्गल सूत्र के प्रामाणिक भाष्यकार आचार्य यादवप्रकाश ने भाष्य की समाप्ति पर छन्द शास्त्रीय परम्परा का सङ्केत करते हुए कहा है कि छन्द शास्त्र के प्रथम आचार्य देवाधिदेव महादेव हैं, उनसे देवों के गुरु बृहस्पति को, बृहस्पति से दुश्च्यवन(इन्द्र) को, दुश्च्यवन से शुक्राचार्य को, शुक्राचार्य से माण्डव्य को, माण्डव्य से सैतव को, सैतव से यास्क को और यास्क से पिङ्गल मुनि को, पिङ्गल मुनि से क्रमश इस सारे जगत् को यह शास्त्र मिला।[1]

---

[1] छन्दोज्ञानमिद भवाद् भगवतो लेभे गुरूणा गुरु–
स्तस्माद् दुश्च्यवनस्ततोऽसुरगुरूर्माण्डव्यनामा तत ।
माण्डव्यादपि सैतवस्तत ऋषिर्यास्कस्तत पिंगल–
स्तस्येद यशसा गुरूर्भुवि धृत प्राप्यास्मदाद्यै क्रमात्।।
– युधिष्ठिर मीमासक– वैदिकच्छन्दोमीमासा,पृष्ठ ५७–५६ से उदधृत।

किन्तु अन्यत्र एक दूसरी परम्परा का द्योतक श्लोक प्राप्त होता है। उसके अनुसार परम्परा का यह रूप सामने आता है–

शङ्कर → गुह → सनत्कुमार → बृहस्पति → इन्द्र → शेषनाग → पिंङ्गल।

इन दोनो परम्पराओ से यह सङ्केत मिलता है कि छन्द शास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से अबाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। अन्य शब्दो मे, हम यह कह सकते हैं कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही छन्द शास्त्र के विषय मे चिन्तन मनन होता आ रहा है।

आचार्य पिङ्गल का पूर्ववर्ती छन्द काल–

आचार्य पिङ्गल ने अपने छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थ 'छन्दःसूत्र' या 'छन्दःशास्त्र' दोनों ही नाम प्रचलित हैं– मे कतिपय प्राचीन आचार्यों यथा क्रौष्टुकि, यास्क, ताण्डि, सैतव, काश्यप, रातमाण्डव्य प्रभृति छन्दःशास्त्रीय आचार्यों के मतो का उल्लेख किया है।[1] प्रश्न उठता है कि तब आचार्य पिङ्गल प्रवर्तक आचार्य कैसे हो सकते हैं ? उसका उत्तर यही है कि समुलब्ध छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ में आचार्य पिङ्गल का ग्रन्थ 'छन्दःसूत्र' ही प्राचीनतम है (यह अविवादित है) अतएव हम उन्हे प्रवर्तक आचार्य कह सकते हैं। आचार्य पिङ्गलोक्त आचार्यों का विवरण इस प्रकार है–

१ **क्रौष्टुकि**– बौधयनीय भारद्वाजगोत्रकाण्ड मे 'भृष्टयो भृष्टुभिन्दयः क्रोष्टुकयः' कहकर आचार्य क्रौष्टुकि को याद किया गया है। यास्क ने भी इनके मत का कथन किया है– "द्रविणोदा इन्द्र इति क्रौष्टुकि "[2]

२ **यास्क** – यास्क ने 'छन्दासि छादनात्' कहकर छन्द के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। भृगुसहिता में आपस्तम्ब ने यास्क के विषय में कहा है–

---

[1] स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुके – पि०सू० ३/२६, उरोवृहती यास्स्य, ३/३०, सतो बृहती ताण्डिन ३/३६, सर्वत्र सैतवस्य ५/१८ सिहोन्नता काश्यपस्य ७/८ अन्यत्र रातमाण्डव्याभ्याम् ७/३५ आदि।

[2] निरुक्त ८/२

"यास्कबाधूकमौनमौका।" ये निरुक्त नामक निघण्टुभाष्य के प्रणेता हैं। महाभारत में इन्हें ऋषि के रूप मे प्रस्तुत किया गया है– 'यास्को मामृषिख्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान्।'[1]

३ **ताण्डी** – इनके विषय में महाभारत मे कहा गया है कि ताण्डी नाम के एक प्रसिद्ध ऋषि पुत्र थे।[2] महाभारत में ही इन्हे सूत्रकर्ता के रूप मे बताया गया है–

ऋषीणामभिगम्यश्च सूत्रकर्ता सुतस्तव।
मत्प्रसादद्विजश्रेष्ठ । भविष्यति न सशय ।।[3]

सम्भवत छन्द सूत्र कर्त्ता की ओर सङ्केत किया गया है।

४ **सैतव** – पिङ्गल, जयकीर्ति तथा यादवप्रकाश आदिकों ने इनके मत के साथ ही नाम का भी निर्देश किया है। नारायण भट्ट ने नामत सैतवरचित एक पद्य उद्धृत किया है, जिसे हलायुध ने भी पिंगल सूत्र के ५/१८ को टीका मे उद्धृत किया है।[4]

५ **काश्यप**– आचार्य पिङ्गल ने सातवे अध्याय में काश्यप के मत को उद्धृत किया है। कृष्णशर्मा ने मन्दारमरन्द की टीका माधुर्यरञ्जिनी में कहा है– 'तत्र भगवता सूत्रकारेण काश्यपेन' इति। कृष्णशर्मा मध्वाचार्य के मतानुयायी थे। मध्वाचार्य का समय १२३६ शकसम्वत् स्वीकार किया जाता है। अत कृष्णशर्मा का मध्वाचार्य से उत्तरवर्ती होना सिद्ध होता है। चूँकि कृष्णशर्मा ने अपनी टीका मे आदर के साथ काश्यप का सूत्रकार के रूप में नाम सङ्कीर्तन किया। अत आचार्य काश्यप के छन्द सूत्र प्रणेता होने मे किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं दीख पड़ती ।

---

[1] शान्तिपर्व ३४३/७२
[2] ऋषिरासीत्कृते तात । तण्डिरित्येव विश्रुत (अनु १६/१)
[3] (वहीं अनु० १६/७०)
[4] सैतवेन पथार्णव तीर्णो दशरथात्मज ।
रक्ष क्षयकरीं पुन प्रतिज्ञा स्वेन बाहुना।।

६ **रातमाण्डव्य** – छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों मे इनका समवेत नाम मिलता है। माण्डव्य का नाम बौधायन सूत्र मे भृगुगण के सन्दर्भ में तथा आश्वलायन गृह्यसूत्र मे तर्पण प्रकरण मे पाया जाता है। महाभारत मे माण्डव्य नामक ऋषि का उल्लेख है।[1] इन स्थलो पर केवल माण्डव्य की चर्चा है, रात की नहीं। छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे द्विवचनान्त होने के कारण दो आचार्यों का बोध होता है। माण्डव्य के नाम से उद्धरण बृहत्सहिता में उपलब्ध होता है–

माण्डव्यगिर श्रुत्वा न मदीया रोचतेऽथवा नैवम्।[2]
साध्वी तथा न पुसा प्रिया यथा स्याज्जघनचपला।।

रातमाण्डव्य एक ही व्यक्ति हैं या अलग–अलग यह निश्चय नहीं हो पाता। वैसे आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इन्हें अलग–अलग माना है, लेकिन 'रात' के विषय में कुछ भी नहीं कह पाये हैं ।

उपर्युक्त आचार्यों को सन्दर्भ निर्देश में कहीं भी छन्द शास्त्रीय आचार्य के रूप मे नहीं बताया गया है। लेकिन छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में ही इनके मत की चर्चा की गयी है। अतएव इससे स्पष्ट होता है कि ये छन्द शास्त्रीय आचार्य ही थे।

२– आचार्य पिङ्गल का छन्द काल

छन्द शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य के रूप मे पिङ्गल मुनि प्रसिद्ध हैं। लोकविश्रुत होने के कारण छन्द और पिङ्गल एक दूसरे के पर्याय बन गये। आचार्य पिङ्गल की इकलौती कृति 'छन्दःशास्त्रम्' छन्दः शास्त्र की अष्टध्यायी है, जो सूत्रो में उपनिबद्ध होने के कारण 'छन्दःसूत्रम्' के नाम से भी अभिहित है। इसके प्रथम

---

[1] आदिपर्व अध्याय – १०७, पद्य–८

[2] बृहत्सहिता अध्याय १०४ पद्य–३

अध्याय मे सूत्रो की सख्या १५, द्वितीय मे १६, तृतीय में ६६, चतुर्थ मे ५३, पञ्चम मे ४४, षष्ठ मे ४३ सप्तम में ३६ तथा अष्टम मे ३५ हैं। कुल सूत्रो की सख्या ३०८ है। सूत्रो की सख्या के विषय मे मतभेद हैं। यह सूत्र सख्या परिमल पब्लिकेशन्स द्वारा प्रकाशित छन्द शास्त्रम् की है। इसमे प्रारम्भ से लेकर तीन अध्याय एव चतुर्थ अध्याय के सात सूत्र वैदिक छन्दो का निरूपण करते हैं, शेष लौकिक छन्दो का विवरण। चतुर्थ अध्याय में मात्रवृत्तो का तथा पञ्चम, षष्ठ एव सप्तम अध्याय में वर्णवृत्तों के तीनो भेदो का विवेचन है। अन्तिम अध्याय में प्रस्तारादि षट्प्रत्ययो का विवरण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य पिङ्गल ने अपने स्वल्पकाय ग्रन्थ मे गागर में सागर भरने का काम किया है। वृन्दावन शोध सस्थान, वृन्दावन के हस्तलिखित ग्रन्थागार मे छन्द शास्त्र की अनेक पाण्डुलिपियॉ सङ्गृहीत हैं, जिनकी प्राप्ति सख्या इस प्रकार है—

भाग १— १२२१, ३१, १४२३, १३९८, ३१६, ४४७, २९४६, १०३, १२१, ५५६, ३०८६, १९४३, २८१८, १८२०, २७५५, ५८१, २२९७।

भाग २— ४२२५, ७२३२, ७२४५, ६९७२, ५४००, ६४६१, ६७९८, ६६९४, ७१६०, ५०४६, ६६५२, ५४०२—अ, ४५९७, ७१६३।

भाग ३— ६४६५—ब, ४० ५५०, ७८२३, ७८८५, ८२, ९४, ८३०३, ९२३८, ९३१३, १०५६३, ८३१९, ९१७७, ९९२४, १०५६८, १०९२६।

भाग ४— ११७०३, १३२३४, ११४५१—ब, १३२०६, १३२३२, १३२३३, १३२४२, १३८५९, १३२८५, ११३८७, ११५४०—ब, १३२३५, १३२३६, १३२३७, १३२३८, १३२३९, १३२४०, १३२४१, १३७६७, १३८५८।

अब प्रश्न उठता है आचार्य पिङ्गल कहाँ के निवासी थे एव इनका समय क्या रहा होगा ? पुष्ट प्रमाणो की अनुपलब्धता के कारण इन प्रश्नो का उत्तर देना दुष्कर है फिर भी बाह्य साक्ष्यो के आधार पर उत्तर के पास तक पहुँचा जा सकता है।

यदि हम षड्गुरुशिष्य द्वारा उल्लिखित सर्वानुक्रम टीका की ओर दृष्टि डालें, तो उनका यह कथन "सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन" पिङ्गल को पाणिनि का अनुज स्वीकार करता है। तब तो इनका जन्म स्थान पाणिनि मुनि की तरह शालातुर तथा जन्म समय ५०० ई०पू० स्वीकार किया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ की विषय–प्रतिपादन शैली एव अध्याय विभाजन आदि के साम्य की दृष्टि से षड्गुरुशिष्य ने इन्हे पाणिनि का अनुज माना होगा। इसका प्रमाण अन्यत्र नहीं उपलब्ध होता। यूरोपीय विद्वान् आचार्य पाणिनि की तरह आचार्य पिङ्गल के जन्म काल को द्वितीय शती मानते हैं,[1] किन्तु यह युक्तिसङ्गत नहीं प्रतीत होता। पिड्गल का अर्थ नाग भी होता है, अत कतिपय छन्द शास्त्रीय आचार्य अपने छन्दो ग्रन्थ मे नागराज, पिङ्गलनाग, भुजङ्ग आदि शब्दों का प्रयोग पिड्गल मुनि के लिये करते हैं। 'छन्द शास्त्र' की हलायुध वृत्ति के मङ्गलाचरण में पिङ्गल को 'नाग' कहा गया है।

"श्रीमत्पिङ्गलनागोक्तच्छन्द शास्त्रमहोदधि ।
वृत्तानि मौक्तिकानीव कानिचिद्विचिनोम्यहम्।।"

इसी को ध्यान मे रखते हुए कुछ विद्वान पिङ्गल मुनि एव महाभाष्यकार पतञ्जलि (शेषनाग का अवतार रूप मे मान्य) को एक ही व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं, प्राकृत छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों 'प्राकृतपैङ्गल', छनदोहृदय प्रकाश' तथा 'छन्दोऽर्णवपिङ्गल' मे शेषनाग और पिङ्गल को एक ही व्यक्ति के रूप में स्वीकार

[1] A B Keith & A History of Sanskrit Literature, Page-415

करते हुए एक मनोरञ्जक कथा की ओर सङ्केत किया गया है– 'एक बार शेषनाग जलराधि से बाहर निकलकर धूप का आनन्द ले रहे थे। प्रभात का समय था, बसन्त की हवा बह रही थी। इसी समय भगवान् विष्णु के वाहन शेषनाग के शत्रु गरुड जी वहाँ आये और उन्होने शेषनाग को पकडने का सुअवसर जानकर उन्हे पकड़ लिया। प्रथम दृष्ट्या शेषनाग घबराये, किन्तु द्वितीय दृष्ट्या उन्होंने बडी ही बुद्धिमत्तापूर्वक गरुड जी से कहा कि– इस ससार मे छन्द शास्त्र का इकलौता जानकार मैं ही हूँ। यदि आप मुझे खा जायेंगे, तो छन्द शास्त्र का लोप हो जायेगा और कोई भी व्यक्ति इसके विषय में जानकारी प्राप्त नहीं कर सकेगा। शेषनाग ने गरुड से निवेदन किया कि आप मुझे निश्चित रूप से खा डाले, किन्तु इसके पहले एक बार मुझे छन्द शास्त्र के वर्णन का पूर्ण अवसर दे, जिससे कि कम से कम आप छन्द शास्त्र के विषय मे जान सकें। गरुड इस शर्त पर तैयार हो गये, किन्तु उन्होने भी एक शर्त रखी कि छन्द शास्त्र का वर्णन समाप्त होते ही आप यहाँ से भागेंगे नहीं। इतना कहकर गरुड ने शेषनाग को छोड दिया। शेषनाग ने छन्द शास्त्र का वर्णन इतने सुन्दर ढग से किया कि गरुड मन्त्रमुग्ध हो गये। शेषनाग ने भागने का उचित अवसर देखकर चार बार 'भुजङ्गप्रयात' का उच्चारण किया और जल में कूद पडे। गरुड ने शेषनाग पर धोखा देने का आरोप लगाया। शेषनाग ने अपनी सफाई पेश करते हुए कहा कि "मैं 'भुजङ्गप्रयात' पद द्वारा एक छन्द विशेष के वर्णन के साथ ही जाने की सूचना दे रहा था कि अब मैं जा रहा हूँ।"[1] किन्तु यह उचित नहीं प्रतीत होता, क्योकि महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य के नवाह्निक में 'पैङ्गलकाण्व'[2] शब्द का उल्लेख किया है, जिससे पिङ्गल की पूर्वकालिकता सिद्ध होती है और साथ ही पिङ्गल तथा

---

[1] प्राकृतपैङ्गलम्– मङ्गलाचरण।

[2] महाभाष्य अह्निक ६, सूत्र ७३

पतञ्जलि को एक मानने की परम्परा भी अपास्त होती हुई प्रतीत होती है। शबर स्वामी ने अपने मीमासा भाष्य में पिङ्गल का नाम तथा सर्वगुरु 'मगण'[1] का निर्देश किया है, जिससे महर्षि पाणिनि से भी इनकी पूर्वकालिकता सिद्ध होती है। महाभारत[2] मे पिङ्गल का नाम मिलता है, परन्तु मुनि न होने के कारण यह छन्दशास्त्रीय आचार्य पिङ्गल नहीं प्रतीत होते हैं। पुराणो मे पिङ्गल का उल्लेख अनेकश मिलता है, किन्तु इनमे छन्दो–निरूपण पिङ्गलानुसारी ही है, अत आचार्य पिङ्गल पुराणों से पूर्वकालिक सिद्ध होते हैं। वामन पुराण मे ये प्रातस्मरणीय आचार्यों मे आसुरि के साथ याद किये गये हैं।[3]

इस प्रकार विविध साक्ष्यो को ध्यान में रखते हुए आचार्य पिङ्गल का समय ५०० ई०पू० माना जा सकता है।

आचार्य पिङ्गल ने अपने ग्रन्थ में दो सूत्र[4] 'अपरान्तिका', 'वनवासिका' दिये हैं, जिससे उनके निवास स्थान की ओर सङ्केत प्राप्त होता है। ये दोनो शब्द पश्चिमी समुद्रतटीय प्रदेशो (सम्भवत बम्बई के पास दक्षिण कोंकण प्रदेश) मे स्त्रीजनो के लिये प्रयुक्त होता है। अत पिङ्गल मुनि का इन स्थानो के प्रति अनुराग दीख पडता है। पञ्चतन्त्रकार ने निर्देश किया है कि छन्दो–ज्ञान के निधि पिङ्गल को मकर ने समुद्र के तट पर मार डाला।[5] ये दोनो आचार्य पिङ्गल के समुद्र तटीय निवासी होने की ओर सङ्केत करते हैं–हो सकता है कि आचार्य पिङ्गल का निवास स्थान पश्चिमी समुद्रतटीय दक्षिण कोंकण प्रदेश रहा हो, किन्तु जन्म–समय एव जन्म–स्थान के विषय मे इदमित्थ रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

---

[1] यथा मकरेण पिङ्गलस्य सर्वगुरुस्त्रिक प्रतीयते, मी० भा० १/१/५

[2] निष्टानको हेमगुहो नहुष पिङ्गलस्तथा आदि पर्व ३५/६

[3] सनत्कुमार सनक सनन्दन सनातनोप्यासुरिपिङ्गलौ च।

[4] ४/४१ ४/४३

[5] छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम् — पञ्चतन्त्र २/२६

टीका सम्पत्ति–

१ भट्ट हलायुध – भट्ट हलायुध 'छन्द सूत्र' के प्रथम टीकाकार हैं, जिन्होंने 'मृतसञ्जीवनी' नाम्नी टीका लिखी, जिसे व्यवस्थित विभाग से 'हलायुध वृत्ति भी कहा जाता है। हलायुध ने 'कविरहस्य' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी लिखा है, जिसमे उन्होंने अपने उपजीव्य का नाम राष्ट्रकूट कुलोद्भव 'कृष्णराज' लिया है। राष्ट्रकूट वश में तीन कृष्णो का व्याख्यान मिलता है–

१ कृष्णराज शुभतुङ्ग २ कृष्णराज अकाल वर्ष ३ तृतीय का भी नाम कृष्णराज अकाल वर्ष था। इनका समय शकसम्वत् ८६७ से शकसम्वत् ८८८ निश्चित होता है। हलायुध ने तृतीय अकालवर्ष को ही अपने ग्रन्थ 'कविरहस्य' मे नायक घोषित किया है। इसके बाद दानपत्र लेख से पता चलता है कि राजा खुडिगदेव, जो तृतीय कृष्णराज अकालवर्ष का वैमात्रेय भ्राता था, शकसम्वत् ८८८ से शकसम्वत् ८६३ तक राजगद्दी पर बैठा। पिङ्गल सूत्र की लिखित पाण्डुलिपि ने दो स्थानों पर खुडिगदेव का नाम निर्देश है।[1] अत भट्ट हलायुध इन्हीं दोनो का समकालिक रहा होगा। तत्पश्चात् वह मालवनरेश वाक्पतिराज के नाम से विख्यात मुञ्ज के आश्रम मे चला गया। हलायुध के द्वारा वाक्पतिराज की प्रशसा में स्वनिर्मित अनेक पद्यो से यह पुष्ट होता है (४/१६, ५/३४, ५/३६, ७/५, ८/१२)[2]। इन विश्लेषणों से यह स्पष्ट होता है कि छन्द शास्त्र पर 'मृतसञ्जीवनी' वृत्ति का यही समय रहा होगा।

---

[1] त्वया कृतपरिग्रहे खुडिगवीर् । सिहासने – लि०पा० ७/१७

[2] ४/१५ का उदाहरण
ब्रह्मक्षत्रकुलीन· समस्तसामन्तचक्रनुतचरण ।
सकलसुकृतैकपुञ्ज· श्रीमान् मुञ्जश्चिर जयति।।

२ यादवप्रकाश –

आचार्य यादवप्रकाश ने पिङ्गल के छन्दःशास्त्र पर 'पिङ्गलनागछन्दोविचिति' नाम से भाष्य लिखा, जो अभी तक अप्रकाश्य है, यह खेद का विषय है। यह भाष्य अत्यन्त प्रामाणिक एव पाण्डित्यपूर्ण है। इसमे वैदिक छन्दो–विषयक अधिक जानकारी मिलती है, जिस कारण वैदिक छन्दोज्ञान के लिये अन्य टीकाओं की आवश्यकता न के बराबर है। लौकिक–छन्दो के वर्णन–प्रसङ्ग मे ये पिङ्गल के पूरक सिद्ध होते हैं। इन्होने नवीन छन्दों की उद्‌भावना कर उनका लक्षण पिङ्गल की शैली मे एव वृत्तों का उदाहरण स्वरचित पद्यों में दिया है।

यादवप्रकाश रामानुजाचार्य के गुरु के रूप में वेदान्त साहित्य मे विख्यात हैं। रामानुजाचार्य का समय १०१७ ई० से ११३७ ई० माना जाता है, अत इनका समय दशम शती के अन्तिम चरण से लेकर ग्यारहवीं शती का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। वैजयन्ती कोश के रचयिता होने के कारण भी पर्याप्त विश्रुत हैं। इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'यतिधर्मसमुच्चय' हस्तलिखित प्रति मे प्राप्य है।

३ भास्करराय –

भास्करराय ने पिङ्गल छन्द सूत्र पर 'भाष्यराज' नामक टीका का प्रणयन काशी मे किया।[1] इन्होनें केवल सत्रह वर्ष की अवस्था मे 'सत–कौस्तुभ' नामक छन्दोग्रन्थ लिखा। २०वे वर्ष में वृत्तरत्नाकर के ऊपर 'मृतजीवनी' व्याख्या लिखी। ५०वे वर्ष मे उन्होंने 'वृतचन्द्रोदय' नामक प्रकृष्ट छन्दोग्रन्थ की रचना की। इन्होंने छन्द विषयक चार ग्रन्थ लिखे, जो प्रणयन–क्रमानुसार इस प्रकार हैं–

---

[1] वेदाङ्गछन्द सूत्रभाष्यराजोऽयमधिकाशि सम्पूर्ण
– बलदेव उपाध्याय – संस्कृतशास्त्रों का इतिहास पृ० ३००

१ सत–कौस्तुभ, १६६७ ई० २ मृतजीवनी व्याख्या, १७०० ई०

२ वृत्तचन्द्रोदय, १७३० ई० ४ पिङ्गल सूत्रभाष्यराज, १७३६ ई०।

इनमें वृत्तचन्द्रोदय छन्द शास्त्र का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है ।

भास्करराय महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनका अधिकॉश समय काशी मे बीता। इनका समय सत्रहवीं शती का अन्तिम तथा अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया जाता है। (१६८० ई० – १७४५ ई०)

आचार्य पिङ्गल की 'छन्द शास्त्र की उपर्युक्त टीका मे हलायुध वृत्ति ही सर्वलोकप्रिय है।

आचार्य पिङ्गल का उत्तरकालिक छन्द.काल

१ **शौनकीय प्रातिशाख्य** – आचार्य पिङ्गल के उत्तरकालिक छन्दोग्रन्थ के रूप में सबसे पहले हम शौनकीय प्रातिशाख्य को लेते हैं। प्रकृत प्रातिशाख्य में अन्तिम १६ से लेकर तीन पटलो मे वैदिक छन्दों के लक्षण निरूपित किये गये हैं। यद्यपि कुछ लोग इसे अत्यन्त प्राचीन स्वीकार करते हैं, किन्तु प्रातिशाख्य के छन्द विषयक पटलो के अनुशीलन से पता चलता है कि यह आचार्य पिङ्गल का उत्तरकालिक है, पूर्वकालिक नहीं, क्योंकि इसमें छन्दों के अत्यन्त सूक्ष्म भेद किये गये हैं, जो पूर्व में विद्यमान किसी छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ (और वह पिङ्गल का 'छन्द शास्त्र' ही हो सकता है) के सम्भव नहीं है। प्रातिशाख्य मे 'यजुषा षड्‌ृचा त्रिषट् साम्ना द्वादश सम्पदि'[1] यह व्याख्यान छन्द सूत्र के 'यजुषा षट्', 'साम्ना द्वि', 'ऋचा त्रि' इन त्रिविध सूत्रो का अनुवाद मात्र प्रतीत होता है। एतदतिरिक्त छन्द शास्त्र में

---

[1] शौनकीय प्रातिशाख्य (१६/१२)

'न्यङ्कुसारिणी को क्रौष्टुकि के मत में 'स्कन्धोग्रीवी'[1] तथा यास्क के मत में 'उरोबृहती'[2] यह कहा गया है, जबकि प्रातिशाख्य मे इस प्रकार का व्याख्यान है—'न्यङ्कुसारिणी। स्कन्धोग्रीव्युरोवृहती त्रेधैना प्रतिजानते।'[3] यह भी छन्द सूत्र का अनुवाद प्रतीत होता है। इन सबका विश्लेषण करने पर आचार्य पिङ्गल की प्राचीनता स्वय सिद्ध हो जाती है।

कात्यायन –

आचार्य कात्यायन की भी आचार्य पिङ्गल से अर्वाचीनता सिद्ध होती है, क्योकि इनके द्वारा प्रणीत ऋक्सर्वानुक्रम सूत्र पूर्णतया प्रातिशाख्य के अनुसार ही है।

अग्निपुराण –

अग्निपुराण के 'आग्नेय छन्द सार' शीर्षक के अन्तर्गत अध्याय ३२८ से अध्याय ३३५ तक क्रमश परिभाषा, दैव्यादिसञ्ज्ञा, पादाधिकार, उत्कृति आदि वर्णवृत्त, आर्या आदि मात्रावृत्त, विषमवृत्त, अर्द्धसमवृत्त, समवृत्त, प्रस्तारादिको का विवेचन समुपलब्ध होता है। ये सभी आचार्य पिङ्गलोक्त छन्दो का अनुवादमात्र ही हैं, क्योंकि स्वय पुराणकार ने प्रतिज्ञा की है कि पिङ्गलमत के अनुसार ही छन्दों का लक्षण कहा जायेगा— 'छन्दो वक्ष्ये मूलशब्दै पिङ्गलोक्त यथाक्रमम्।'[4]

गरुडपुराण –

गरुडपुराण के अध्याय २०७ से लेकर अध्याय २१२ तक अर्थात् छ अध्यायों में छन्द शास्त्र का पूर्ण विवरण समुपलब्ध होता है। क्रमश परिभाषा, मात्रावृत्त, समवृत्त, अर्द्धसमवृत्त, विषमवृत्त और प्रस्तारादि के वर्णन द्रष्टव्य हैं। इस पुराण में कुछ नवीन

---

[1] छन्द सूत्र अध्याय—३ सूत्र—२६
[2] वही – अध्याय—३, सूत्र—३०
[3] शौनकीय प्रतिशाख्य पटल—१६, पद्य—४३
[4] अग्निपुराण, अध्याय ३२८ पद्य—१

छन्द– जो छन्दःसूत्र में नहीं कहे गये हैं–पाये जाते हैं। यह केवल लौकिक छन्दों का निरूपण करता है। भास्करराय के द्वारा यह 'गरुडाम्नाय' के नाम से अभिहित है।

नारदीय पुराण –

नारदीय पुराण के पूर्वखण्ड के अध्याय ५७ मे छन्दःभेद[1] की चर्चा करके गणसञ्ज्ञा, समार्द्धसमादि वृत्त, उक्तादि सञ्ज्ञा और प्रस्तार का निरूपण है। अन्तत 'इत्येतत्किञ्चिदाख्यात छन्दसा लक्षण मुने। प्रस्तारोक्तप्रभेदाना नामानन्त्य प्रजायते।।'[2] यह कहकर विषय का उपसहार किया गया है। इसमें वृत्त का प्रातिस्विक लक्षण नहीं है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण –

इस पुराण के तृतीय खण्ड के तीसरे अध्याय में गायत्री आदि के सामान्य लक्षण के साथ–साथ लघु, गुरु एव प्रस्तार का निरूपण किया गया है। अन्त में –

दिङ्मात्रमेतत्कथित नरेन्द्र। विस्तारजिज्ञासुखो मनुष्य।
ससाथयेत्तत्स्वधिया यथावत्सुदुस्तर विस्तरशो हि वक्तुम्।।[3]

ये सभी आर्षछन्दोग्रन्थ हैं, जिनमें आचार्य पिङ्गल के छन्द सूत्र को आधार मानकर छन्दःविषयक सिद्धान्त एव लक्षण प्रतिपादित किये गये हैं।

नाट्यशास्त्र – आचार्य भरत –

व्यावहारिक दृष्टि को अङ्गीकृत करते हुए नाट्य व्यवहार को ध्यान में रख कर आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्रम्' के पन्द्रहवें एव सोलहवें अध्याय में 'छन्दोविधान' एव 'छन्दोविचिति' का सविस्तार निरूपण किया है। नाट्य के सन्दर्भ में

---

[1] लौकिक वैदिक चापि छन्दोद्विविधमुच्यते – नारदीय पुराण

[2] नारदीय पुराण अध्याय–५७, पद्य–२१

[3] विष्णुधर्मोत्तरपुराण अध्याय–३, पद्य–२०

छन्दो का निरूपण आवश्यक है क्योकि नाट्य में वृत्तात्मक पद्यों का व्यवहार होता है। अत नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ में छन्दोविधान का निरूपण युक्ति–सङ्गत है।

आचार्य ने अपने ग्रन्थ में छन्दोविधान एव छन्दोविचिति के सन्दर्भ में सिद्धान्त एव लक्षण तो पिङ्गलानुसारी ही दिये हैं, लेकिन लक्षण–निर्देश में कुछ मौलिक प्रतिभा भी दिखाई पडती है। आचार्य भरत पिङ्गलोक्त अष्टगणों से परिचित हैं तथा उनके नाम पिङ्गल द्वारा प्रदत्त नाम ही हैं, किन्तु छन्दों के लक्षण देते समय वे गुरु–लघु पद्धति को अपनाते हैं।[1] यह पद्धति आचार्य की मौलिक प्रतिभा का परिणाम प्रतीत होती है, क्योंकि इनके पहले स्वरूप–निर्धारण के लिये यह पद्धति नहीं प्राप्त होती। उदाहरण सभी स्वरचित पद्य हैं और मुद्रालङ्कार के माध्यम से उन छन्दो के नाम भी आ गये हैं, जिनके उदाहरण दिये गये हैं।[2] सम्भवत· यह आचार्य की मौलिक सूझ ही है, क्योंकि ऐसा प्रयोग इनके पहले नहीं पाया जाता है। छन्द·शास्त्रीय आचार्य के रूप मे भी भरत का योगदान किसी भी छन्द शास्त्रीय आचार्य से कम नहीं है।

श्रुतबोध – कालिदास ·–

लौकिक छन्दों का अत्यन्त सरल रूप जिस छन्द·शास्त्रीय ग्रन्थ में देखने को मिलता है, वह है– 'श्रुतबोध' और इसके प्रणेता हैं– 'कालिदास'। यह कालिदास दीपशिखा कालिदास ही हैं, या कोई और, इस विषय मे निश्चितता का अभाव है। वैसे कुछ विद्वान् इसे दीपशिखा कालिदास की ही रचना मानते हैं। कतिपय विद्वान् उपलब्ध कालिदास नाम के लेखकों में तीसरे कालिदास को इसका लेखक मानते हैं।[3] निश्चित

---

[1] द्वितीय पञ्चमञ्चैव लघु यत्र प्रतिष्ठितम्।
शेषाणि च गुरूणि स्युर्मालती नाम सा यथा।। — नाटयशास्त्र अध्याय– १६, पद्य– ६

[2] शोभते बद्धया षट्पदाविद्धया।
मालतीमालया मानिनी लीलया।। — नाटयशास्त्र अध्याय–१६, पद्य–७

[3] M Krishnamachariar] "History of Classical Sanskrit Literature" Page 908

रूप से मेरी विनम्र मान्यता है कि कवि कुलगुरु कालिदास कहीं पर भी आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुए हैं, अत उनके द्वारा इस शास्त्रीय ग्रन्थ के प्रतिपादन का प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ, कालिदास के नाम से विख्यात होना ही इसके महत्त्व को प्रकट कर देता है। सस्कृत काव्यों मे प्रचलित छन्दों का विवरण इसका वैशिष्ट्य है। कुल ४० छन्दो का विवेचन है, जिसमे मात्रावृत्तों में आर्या, गीति तथा उपगीति, शेष ३७ वर्णवृत्तो का विवेचन है। गणो के नाम तथा रूप का उल्लेख है, परन्तु लक्षण विन्यास में गणपद्धति का उपयोग न कर आचार्य भरत का अनुकरण करते हुये लघु—गुरु वाली पद्धति को अपनाया गया है। लक्षण तथा लक्ष्य दोनों को एक ही पद्य के माध्यम से लक्षित किया गया है, जिससे इसकी उपयोगिता स्पष्ट होती है।

प्रश्न उठता है कि श्रुतबोध के लेखक कालिदास का नाम किसी भी छन्दःशास्त्रीय आचार्य ने नहीं लिया है, इसका क्या कारण है? इसके पीछे इसकी सुगमता एव सरलता ही कारण हो सकती है। वृन्दावन शोध सस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थागार में श्रुतबोध की अनेक पाण्डुलिपियॉ सङ्गृहीत हैं, जिनकी प्राप्ति सख्या इस प्रकार है—

भाग १ — ३११५, ३११६, ३११७, ३११८

भाग २ — ६२२७, ६२२८, ६२२६, ६२३०, ६२३१

भाग ३— ६६१२, ६६१३, ६६१४, ६६१५, ६६१६, ६६१७

भाग ४ — १२६६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६६, ७००, ०१, ०२

श्रुतबोध के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि कवियों ने किस प्रकार नये छन्दों की उद्भावना की होगी। कवियो ने प्रस्तार विधि से कृत्रिम छन्दों की वृद्धि नहीं की होगी, वरन् लय साम्य के आधार पर लघु गुरु वर्णों के यत्किञ्चित् परिवर्तन द्वारा ही नवीन छन्दों की उद्भावना की होगी। यह कालिदास के विवेचन से स्पष्ट है।

बृहत्सहिता –वराहमिहिर –

नानाविध विद्याओ के लिये विश्वकोश के रूप में जाना जाने वाला 'बृहत्सहिता' वराहमिहिर द्वारा लिखित है। यह मूलत ज्योतिष–ग्रन्थ है, किन्तु देहलीदीपकन्यायेन अनेक विध उपयोगी विषयो की भी चर्चा है। इसके अध्याय १०४ मे ग्रहगोचरो का वर्णन विविध छन्दो में कर मुद्रालङ्कार के माध्यम से छन्दों के नाम भी निर्दिष्ट कर दिये गये हैं, किन्तु इनका उपजीव्य कौन है? यह कहना सन्दिग्ध है। वैसे तो इनका समय षष्ठशती माना जाता है, इस आधार पर आचार्य पिङ्गल एव भरत इनके उपजीव्य हो सकते हैं, किन्तु कहीं भी इनका निर्देश नहीं है। मुद्रालङ्कार के द्वारा उदाहरण एव तत्तद् छन्दों का नाम निर्देश होने के कारण आचार्य भरत को इनका उपजीव्य कहा जा सकता है। इस अध्याय की वृत्ति मे भट्टोत्पल ने मूलकारिका में सङ्केतित वृत्त का लक्षण विस्तार के साथ प्राचीन लक्षणो को उद्धृत कर दिया है, किन्तु उद्धरण सन्दर्भ न होने से ग्रन्थ का पता नहीं चलता है। हाँ, इतना जरूर स्पष्ट होता है कि यह कोई प्रकृष्ट छन्दो–ग्रन्थ रहा होगा। इस अध्याय मे वराहमिहिर ने श्रुतिसुखदवृत्त का ही सङ्ग्रह किया है। उनका कथन है कि प्रस्तारजनित छन्दो के विस्तार को जानकर भी इतना ही कार्य होता है।[1] मात्रावृत्त तथा वर्णवृत्त दोनों को मिलाकर भट्टोत्पल ने लगभग ६० छन्दों का लक्षण सङ्गृहीत किया है। उत्पल का समय नवम शती तथा वराहमिहिर का षष्ठ शती है। अत यह समय आचार्य भरत एव 'जयदेवच्छन्द' के लेखक जयदेव के मध्यवर्ती समय से सम्बन्ध रखता है। इस समय मे छन्दोग्रन्थ प्रणयन या चिन्तन–मनन का क्रम निरन्तर चलता रहा ।

---

[1] विपुलामपि बुद्ध्वा छन्दोविचितिं भवति कार्यमेतावत्।
श्रुतिसुखद वृत्तिसङ्ग्रहमिममाह वराहमिहिरोऽत ।। – बृहत्सहिता १०४/६४

जनाश्रयी छन्दोविचिति – जनाश्रय –

जनाश्रय की गणना भी छन्द शास्त्रीय आचार्यों मे होती है।[1] इन्होने षडध्यायों वाला 'जनाश्रयी छन्दोविचिति' नामक सूत्रात्मक छन्दोग्रन्थ का प्रणयन किया। सूत्रो के ऊपर अज्ञातनामा एक सुबोध वृत्ति भी है, जिसमे प्राचीन महाकवियो कालिदास, भारवि, कुमारदास, अश्वघोष आदिको के पद्यो को उदाहरण के रूप में दिया गया है। इन्होने कुमारदासकृत जानकीहरण महाकाव्य के दो श्लोक (१/३०, १/३७) उद्धृत किया है। इससे ग्रन्थ एव ग्रन्थकार का समय छठीं शती ठहरता है।

ये पिङ्गल सम्मत होते हुए भी कुछ बिन्दुओं पर असम्मत भी हैं। मुख्य भेद यह है कि पिङ्गल के अनुसार गणो की सख्या आठ है, किन्तु इन्होनें गणो की सख्या अठारह मानी है।[2] वैदिक छन्द विहीन इसके प्रथम अध्याय में छन्दशास्त्रीय परिभाषिक सञ्ज्ञायें हैं, द्वितीय अध्याय में विषम वृत्तों का निरूपण है, तृतीय अध्याय में अर्द्धसम वृत्तों का, तो चतुर्थ अध्याय में सम वृत्तों का विवेचन है, पञ्चम अध्याय में वैतालीय, मात्रासमक, आर्या नामक त्रिविध जातिच्छन्दों का विवरण है, तो षष्ठ अध्याय प्रस्तार का वर्णन करता है।

सूत्रकार एव वृत्तिकार के भिन्न एव अभिन्न होने में मतवैभिन्य है, किन्तु पूर्ववर्ती छन्दोग्रन्थ के आधार पर एव कतिपय सूत्रों[3] कि वृत्ति से भी यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूत्रकार एव वृत्तिकार दोनों अलग–अलग हैं, एक नहीं। सूत्रों के प्रणेता के विषय

---

[1] माण्डव्य पिङ्गल–जनाश्रय–सैतवाख्य श्रीपादपूज्य–जयदेव –बुधादिकानाम्।
छन्दासिवीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान् छन्दोऽनुशासनमिद जयकीर्तिनोक्तम।।
जयकीर्ति–छन्दोनुशासन ८ अधि०/अन्तिम् श्लोक

[2] छन्दोविचिति, १/१८–३५

[3] भाहेति समानम् २/३, ४/३ तथा ५/४३

मे ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक[1] से यह पता चलता है कि जनाश्रय उपाधिधारी कोई राजा थे, जिनका मूल नाम माधव वर्मा था।

जयदेवच्छन्द – जयदेव –

जनाश्रयी–छन्दोविचित्ति के पश्चात् 'जयदेवच्छन्द' नामक छन्दोग्रन्थ का प्रणयन हुआ, जिसके प्रणेता हैं– प्रौढ छन्दःशास्त्री जयदेव। यह भी पिङ्गलानुसारी ही है, अर्थात् इस ग्रन्थ का भी उपजीव्य आचार्य पिङ्गल का सूत्र ही है। आकार एव वर्णन में भी पिङ्गल के छन्दसूत्र की ही तरह है। यह भी अष्टध्यायी ग्रन्थ है, जिसके प्रथम तीन अध्याय वैदिक छन्दो के लिए समर्पित हैं तो शेष पाँच अध्याय लौकिक छन्दों का निरूपण करते हैं, किन्तु यह सूत्र शैली मे उपनिबद्ध न होकर वृत्त शैली मे लिखा गया है, जो इनकी मौलिकता का सूचक है। यही वृत्तशैली पश्चाद्वर्ती छन्द ग्रन्थकारो के लिए आदर्श के रूप मे प्रस्तुत होती हुई दीख पडती है। जैसे इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण इन्द्रवज्रा मे ही किया गया है, जिस कारण छन्दो के पृथक् उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं पडती है। इसका प्रकाशन ताडपत्र पर लिखित हस्तलिपि के आधार पर हुआ है। इसके दो भाग हैं– प्रथम में १० पृष्ठ हैं, जिनमें 'जयदेवच्छन्द' का पाठ है। द्वितीय भाग मे जयदेवच्छन्द की हर्ष–विरचित विवृति है, जो पृथक् रूप से अङ्कित पृ० १ से ४४ तक है। यह प्रति जयसलमेर[2] के भण्डार मे सुरक्षित है।

आचार्य जयदेव एक प्राचीन छन्दःशास्त्रीय आचार्य हैं, क्योंकि इनके मत का उल्लेख १००० ई० के पश्चाद्वर्ती ग्रन्थकारों ने किया है। जैन ग्रन्थकारो ने विशेष रूप से इनके मत का उल्लेख किया, जिस कारण इनके जैन मतावलम्बी होने का

---

[1] स भूपतिरुदारधीर्जयति सम्पदेकाश्रयो जनाश्रय इति श्रिया वहति नाम सार्थं विभुः।
मखैरुरुभिरद्भुतैर्मघवतो जयश्रीरपि जिता विजितशत्रुणा जगति येन रुद्धाचरत्।

[2] मात्रिक छन्दों का विकास, पृष्ठ ४१

अनुमान किया जाता है। भट्ट हलायुध ने इनके मत का खण्डन दो स्थलो[1] पर किया है और उपहास के निमित्त इनके लिए 'श्वेतपट' (श्वेताम्बरी जैन) का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त वृत्तरत्नाकर के टीकाकार सुल्हण ने जयदेव के मत का खण्डन 'श्वतेपट' के नाम से किया है। इन दोनो उद्धरणो से जयदेव के जैनी होने के स्पष्ट सङ्केत मिलते हैं। जैन ग्रन्थकार जयकीर्ति, नेमिसाधु तथा हेमचन्द्र आदि इन्हे पिङ्गल के समकक्ष आदर देने के पक्षपाती प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि वृत्तरत्नाकर जैसा सुव्यवस्थित होने पर भी इनका ग्रन्थ वैदिक मतावलम्बियो के बीच समादृत न हो सका। इस ग्रन्थ के टीकाकार हर्षट (सम्भवत मुकुलभट्ट के पुत्र) हैं, जैसा कि वृत्ति की पुष्पिका से स्पष्ट है। मम्मट ने काव्य प्रकाश मे मुकुलभट्ट के मत का खण्डन किया है। परिणामत हर्षट का समय दशम शती का पूर्वार्द्ध (९७५ ई०) मानना समीचीन है। इस आधार पर जयदेव का समय नवमशती का अन्तिम चरण (८७५ ई०) माना जा सकता है।

छन्दोऽनुशासन – जयकीर्ति –

'छन्दोऽनुशासन' अष्ट अधिकारात्मक छन्दोग्रन्थ आचार्य जयकीर्ति द्वारा प्रणीत है। छन्दोऽनुशासन केवल लौकिक छन्दो को ही समर्पित है। इसमे वैदिक छन्दों का निरूपण नहीं है। समग्र ग्रन्थ आर्या तथा अनुष्टुप् छन्दो मे निबद्ध है। छन्द का लक्षण वृत्त शैली मे किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे यतिं मानने वाले और न मानने वाले आचार्यों का सङ्कलन है–

वाञ्छन्ति यति पिङ्गल–वशिष्ठ–कौण्डिन्य–कपिल–कम्बलमुनय ।[2]
नेच्छन्ति भरत–कोहल–माण्डव्याश्वतर सैतवाद्या केचित् ।।

---

[1] पिङ्गलसूत्र १/१० ५/८

[2] छन्दोऽनुशासन अधिकार –१, पद्य–१३

ग्रन्थ के अन्त मे माण्डव्य, पिङ्गल, जनाश्रय, सैतव, जयदेव प्रभृति छन्द शास्त्रीय आचार्यों का नामसङ्कीर्तन है। जैसा कि जनाश्रय–जनाश्रयी छन्दोविचिति की टिप्पणी मे उल्लेख किया जा चुका है। इस ग्रन्थ का सप्तम अधिकार कन्नड भाषा के छन्दो का निरूपण करता है। अत एव जयकीर्ति को कन्नड़ देश का निवासी मानना असङ्गत न होगा। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में उन्होंने 'वर्धमान की वन्दना की है जिससे उनके जैन होने की ओर सङ्केत मिलता है। इनका समय दशम शती के आस–पास माना जा सकता है।[1]

रत्नमञ्जूषा –

छन्द शास्त्र के विकास क्रम मे 'रत्नमञ्जूषा' भी गवेषणीय है, जिसके कर्ता के विषय मे जानकारी नहीं प्राप्त होती। हॉ, इतना अवश्य है कि इसके कर्त्ता जैन मतावलम्बी थे। मूल ग्रन्थ सूत्रात्मक है, जिस पर अज्ञातनामा छन्द शास्त्रीय आचार्य का भाष्य है, जो निश्चित रूप से जैन मत के अनुयायी थे। भाष्य के मङ्गल श्लोक में 'वीर' की स्तुति होने के कारण भाष्यकार का जैनत्व प्रकट होता है। भाष्य के अन्त मे ग्यारह पद्य ऐसे मिलते हैं, जो लेखक द्वारा उद्धृत से प्रतीत होते हैं और अन्तिम ग्यारहवे पद्य मे 'पुन्नागचन्द्र' नामक रचयिता के नाम का भी उल्लेख किया गया है।[2] अत सम्भव है कि पुन्नागचन्द्र ही इसके लेखक हों।

प्रकृत छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ का भी उपजीव्य पिङ्गल का छन्द·सूत्र ही रहा होगा, ऐसा उसके कलेवर एव विवेचन शैली से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यह छन्द–मञ्जूषा अनेक नवीनताओ के कारण अपना अलग ही महत्त्व रखती है। आचार्य पिङ्गल की तरह ही यह भी अष्टध्यायी ग्रन्थ है। वैदिक छन्दों को छोड़कर

---

[1] The date of Jauakirti, An article on Mr Govind Pai in the 'कन्नडत्रैमासिक प्रबुद्धकर्णाटकम्'

[2] एकच्छन्दसि खण्डेमेरुरमल· पुन्नागचन्द्रोदित· – अन्तिम पङक्ति, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९४४

लौकिक छन्दों की विवेचन शैली लगभग एक जैसी है, किन्तु चिह्न विषयक मतभेद है। जहॉ एक ओर पिङ्गल त्रिकात्मक अष्टगणो को स्वीकार करते हैं, जो व्यञ्जनादि हैं, किन्तु यह त्रिकात्मक अष्टगणों को तो स्वीकार करती है, लेकिन गणों का प्रदर्शन करने वाले चिन्ह (भ ज, स) को बदल देती है। इस चिन्ह प्रदर्शन के दो वर्ग हैं– व्यञ्जनात्मक और स्वरात्मक यथा पिङ्गलोक्त 'म यहॉ 'क' अथवा 'आ का रूप लेता है तथा सर्वलघु 'न यहॉ 'ह' या 'इ' के रूप मे प्रदर्शित है। मात्रावृत्तों में पिङ्गलोक्त चतुष्कला का उल्लेख किया गया है। प्रति अध्याय सूत्रों की सख्या क्रमश इस प्रकार है– २६, २८, २८, २०, ३७, ३८, ३४ तथा १६ । ग्रन्थ निर्माण का समय ग्यारहवीं शती माना जा सकता है।

सुवृत्ततिलक – क्षेमेन्द्र –

छन्दशास्त्र के प्रमुख तीन अङ्ग हुआ करते हैं– वृत्त का स्वरूप परिचय, गुणदोष–विवेचन तथा वृत्त–विनियोग। इन तीनो अङ्गो को पूर्णत समेटे हुए यदि कोई छन्दग्रन्थ है, तो वह है– 'सुवृत्ततिलक' जिसके कर्त्ता महाकवि क्षेमेन्द्र हैं। प्रकृत छन्दोकृति मे केवल वार्णिक वृत्तो के विषय मे ही अङ्गत्रय के माध्यम से विचार किया गया है। इसमे तीन विन्यास हैं। प्रथम विन्यास का नाम वृत्तावचय है, दूसरे विन्यास का नाम गुणदोष–प्रदर्शन तथा तीसरे विन्यास का नाम वृत्त–विनियोग है। वृत्तावचय छन्दो के स्वरूप का ज्ञान कराता है, गुणदोष–प्रदर्शन शब्द शिल्प या शब्द योजना की कला सिखाता है तथा वृत्तविनियोग विषयानुरूप छन्दों की चर्चा करता है। वृत्त–विनियोग नामक तृतीय विन्यास छन्दोग्रन्थों मे अपूर्व है। यह विन्यास आचार्य क्षेमेन्द्र के लम्बे जीवन के काव्यानुशीलन का अनुभव प्रतीत होता है। क्षेमेन्द्र का स्पष्ट कथन है कि काव्य में रस एव वर्णन के अनुसार ही वृत्त का विनियोग करना

चाहिये।[1] एतदर्थ उन्होने अनुष्टुप् आदि कतिपय छन्दों के विषय भी निर्धारित किये हैं।[2] ग्रन्थकार ने विशिष्ट कवियों के विशिष्ट छन्दों का भी निर्देश किया है, जो सर्वप्रकारेण नूतन एव मौलिक सूझ है। क्षेमेन्द्र का कथन है कि कालिदास का श्रेष्ठ एव प्रिय वृत्त है– मन्दाक्रान्ता, भवभूति की शिखारिणी, राजशेखर का शार्दूलविक्रीड़ित, भारवि का वशस्थ तथा पाणिनि की उपजाति।

महाकवि क्षेमेन्द्र के पिता का नाम प्रकाशेन्दु तथा इनका अपरनाम व्यासदास था।[3] सर्वमनीषिशिष्य तथा परममहेश्वर भी इनके उपनाम मिलते हैं। दादा(पितामह) का नाम निम्नाशय तथा पुत्र का नाम सोमेन्द्र था। ये कश्मीरी ब्राह्मण थे। तत्कालिक कश्मीरी शासक अनन्त देव के राजपण्डित थे।[4] इनका शासनकाल १०५० ई० से १०७२ ई० माना जाता है। अत क्षेमेन्द्र का समय भी ग्यारहवीं शती का मध्य ठहरता है।

वृत्तरत्नाकर – केदारभट्ट –

सम्प्रति छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों मे एक सर्वाधिक लोकप्रिय नाम उभरता है और वह है वृत्तरत्नाकर, जो षडध्यायी है, जिसके प्रणेता हैं– केदारभट्ट, जो छन्द शास्त्रीय इतिहास मे मध्ययुग से सम्बन्ध रखते हैं। ग्रन्थ का परिमाण है–१३६ श्लोक।[5] प्रकृत ग्रन्थ का प्रथम अध्याय सञ्ज्ञाओं का निर्देश करता है, तो दूसरे अध्याय मे मात्रिक छन्दो का निरूपण है, तृतीय अध्याय समवर्ण वृत्तों को समर्पित है, तो चतुर्थ अध्याय

---

[1] काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्ताना विनियोग विभागवित्।। – सुवृत्ततिलक, विन्यास–३ पद्य–७

[2] शास्त्र कुर्यात्प्रयत्नेन प्रसन्नार्थमनुष्टुभा।
येन सर्वोपकाराय याति सुस्पष्टसेतुताम्।। – वही, विन्यास–३, पद्य–६

[3] इतिश्रीप्रकाशेन्द्रात्मजव्यासदासापरनामक श्री क्षेमेन्द्र–विरचिते सुवृत्ततिलके वृत्तविनियोग नाम तृतीयो विन्यास।

[4] सुवृत्ततिलक, विन्यास–३, पद्य–४०

[5] वृत्तरत्नाकर, अध्याय–१ पद्य–५

अर्द्धसम वृत्तो को, पञ्चम अध्याय मे विषम वर्ण वृत्तों का विवरण है, तो छठे अध्याय मे प्रस्तारादि षड्प्रत्ययो का प्रतिपादन किया गया है। छन्द का लक्षण गणों के द्वारा किया गया है। गणनिर्देश के लिये वे पिङ्गल का ही अनुसरण करते हैं सम्पूर्ण ग्रन्थ सूत्रात्मक न होकर पद्यात्मक है। लक्षण–प्रणाली मे जयदेव की प्रणाली को स्वीकार करते हुए अपनी कृति को विशिष्ट एव लोकप्रिय होने को विवश किया। इसमें छन्द का लक्षण उसी छन्द मे किया गया है।[1] अन्य शब्दों मे, लक्षण और उदाहरण एक ही रूप मे बताया गया है।[2] इस शैली से लक्षण मे ही उदाहरण का भी समावेश हो जाता है, अन्यत्र उदाहरण ढूँढने की आवश्यकता नहीं पडती। इसका परिमाण अत्यन्त अल्प होते हुए भी इसमें प्राय सभी छन्दो का निरूपण प्राप्त होता है।

केदारभट्ट का भी जन्म स्थान एव स्थितिकाल के विषय में प्रमाणो के अभाव में पता नहीं चल पाता। इन्होने अपने वश का परिचय दिया है कि ये कश्यप गोत्र में उत्पन्न हुए पिता का नाम पव्येक है।[3] इन्होने अपने आपको शैव घोषित किया है। नाम व सम्प्रदाय से ऐसा प्रतीत होता है कि ये दक्षिण भारत के निवासी रहे होंगे।

केदारभट्ट के जन्म के समय के विषय मे कुछ विद्वानों का मत है कि इन्होंने मङ्गलाचरण मे विष्णु एव शिव की वन्दना की है, जिससे इनका जन्म उस समय में हुआ होगा जब वैष्णव एव शैव के मध्य सघर्ष चल रहा था।[4] इस दृष्टि से इनका जन्म समय पन्द्रहवीं शती माना जा सकता है,किन्तु यह युक्तिसङ्गत नहीं प्रतीत होता है, क्योकि वृत्तरत्नाकर की हस्तलिखित प्रति (जो जैसलमेर के पुस्तकालय मे सुरक्षित है[5]) का लेखन काल ११३५ ई० है। इसके सर्वप्राचीन टीकाकार त्रिविक्रम भट्ट का

---

[1] तेनेद क्रियते छन्दो लक्ष्यलक्षणसयुतम्, वृ० र० १/३

[2] प्रमाणिका छन्द का लक्षण प्रमाणिका छन्द में ही – प्रमाणिका जरौ लगौ।

[3] वृत्तरत्नाकर १/२ ६/१०

[4] धरानन्द शास्त्री कृत 'वृत्तरत्नाकर' की टीका की भूमिका से

[5] आचार्य बलदेव उपाध्यायकृत 'सस्कृत शास्त्रों का इतिहास' से उदधृत पृष्ठ ३०८

समय ११वीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। अत इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि इनका स्थितिकाल ११वीं शती का उत्तरार्द्ध हो सकता है।

वृत्तरत्नाकर की टीका–सम्पत्ति अत्यन्त समृद्ध है। इसकी अद्यावधि लगभग सोलह टीकाये हो चुकी हैं जिनका प्रबन्ध विस्तार के भय से केवल नाम सङ्कीर्तन किया जा रहा है–

१ त्रिविक्रम भट्ट, ११वीं शती का उत्तरार्द्ध (वेलणकर के अनुसार ये सर्वप्राचीन टीकाकार हैं)।

२ सुल्हण– सुकवि हृदयानन्दिनी, १२४६ वि०स० (११८६ई०), पाण्डुलिपि सख्या ४८४(१८६५–१६०२) भण्डारकर शोध सस्थान, पूना।

३ सोमचन्द्र गणि– वि०स० १३२६ (१२७२ ई०), पाण्डुलिपि सख्या ५५७(१८८४–८७) भण्डारकर शोध सस्थान, पूना।

४ रामचन्द्र विबुध – १४५५ ई०, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, पञ्चम सस्करण, १६३६ ।

५ समय सुन्दरगणि– सुगमावृत्ति, १६३७ ई०, एच०डी० वेलणकर, जयदामन्, क्रिटिकल, पृ० ४३ एव ५२ ।

६ नारायण भट्ट– (प्रकाशित निर्णय सागर बम्बई से) १६८० ई० एव काशी सस्कृत सीरीज, १६२७ ई०।

७ भास्कर – सेतु, (प्रकाशित चौखम्भा काशी से) स० १७३२, १६७५ ई०।

८ जनार्दन– भावार्थदीपिका – १७८६ ई० का हस्तलेख प्राप्त 'वृत्तप्रदीप' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना।

६ सदाशिवकृत टीका – पाण्डुलिपि सख्या १७६ (१६०२–०७) भण्डारकर शोध सस्थान, पूना।

१० श्रीकण्ठकृत टीका– पाण्डुलिपि सख्या १०४ (१९१९–२४) भण्डारकर शोध सस्थान, पूना।

११ विश्वनाथकृत 'प्रभा टीका – पाण्डुलिपि सख्या ६०८ (१८८७–९१) भण्डारकर शोध सस्थान, पूना।

१२ कृष्णसार (देवेन्द्र भारती) – वृत्तप्रकाशिका

१३ करुणाकरदास – कवि चिन्तामणि

१४ दिवाकर – वृत्तरत्नाकरादर्श

१५ धरानन्दशास्त्री – प्राज्ञतोषिणी, टीका, मोतीलाल बनारसीदास, १९७३ ई०।

१६ बलदेव उपाध्यायकृत टीका, शारदा शोध सस्थान, १९९८ ई०।

उल्लेख्य है कि वृन्दावन शोध सस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थागार मे वृत्तरत्नाकर की ग्यारह पाण्डुलिपियॉ सङ्गृहीत है, जिनकी प्राप्ति सख्या इस प्रकार है–
३११४, ६२२३, २४, २५, ६६०६, १०, १२६८८, ८६, ९०, ९१, ९२।

छन्दोऽनुशासन – हेमचन्द्र –

वृत्तरत्नाकर के पश्चाद्वर्ती कतिपय छन्दोग्रन्थों में प्राकृत छन्दःशास्त्र का प्रभाव देखा जाता है। उनमें सर्वप्रथम नाम आता है– छन्दोऽनुशासन का, जिसके प्रणेता हैं हेमचन्द्र। हेमचन्द्र का छन्दोऽनुशासन सस्कृत वृत्तों से अधिक प्राकृत वृत्तों पर प्रकाश डालता है। इसमें उनका मौलिक विवेचन प्रत्येक स्थल पर देखा जा सकता है। उन्होनें स्वय इस पर 'स्वोपज्ञवृत्ति' लिखी है जो 'छन्दश्चूडामणि' के नाम से प्रसिद्ध है। पिङ्गल के छन्दःसूत्र की तरह यह भी अष्टध्यायी है। ग्रन्थ सूत्रात्मक है। प्रथम अध्याय में सञ्ज्ञाओ का विवेचन है, तो द्वितीय अध्याय में समवृत्तों का, तृतीय में अर्द्धसम, विषम–वैतालीय, मात्रासमक आदि का, चतुर्थ में आर्या–गलितक खञ्जक आदि का,

पञ्चम, षष्ठ तथा सप्तम में अपभ्रंश छन्दों का तथा अष्टम में प्रस्तार आदि षट्प्रत्ययों का विवरण है।

प्रत्येक अध्याय में सूत्रो की सख्या इस प्रकार है– १७, ४०१, ७३, ६१, ४२, ३२, ७३ तथा १७। उदाहरण के रूप मे सस्कृत एव अपभ्रंश दोनो छन्दों में स्वरचित पद्य को ही दिया है।

हेमचन्द्र का स्थितिकाल ११वीं शती का अन्तिम चरण एव १२वीं शती का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया जाता है। इन्होने वक्त्रप्रकरण में वृत्तरत्नाकर के 'श्रुतिसुखकृदियमपि जगति ञि जशिर् उपगतवति सति भवति खजा' की चर्चा की है, अत ये केदारभट्ट से उत्तरकालिक सिद्ध होते हैं। हेमचन्द्र का जन्म गुजरात प्रदेश की अहमदाबाद जिले धुधुकानगर में वि० स० ११४५ की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था। इनके पिता का नाम 'चलिग' तथा माता का नाम 'पाहिनी'[1] था। इनके विषय में ऐसा कहा जाता है कि ये अनहिलवाड (पाटन) के राजा जयसिह के भतीजे कुमारपाल के आश्रित और गुरु थे।[2] छन्दोऽनुशासन के अतिरिक्त 'काव्यानुशासन' भी इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

वाणीभूषण – दामोदर मिश्र –

प्राकृत छन्द शास्त्र से प्रभावित एक दूसरा छन्दोग्रन्थ आता है, वह है दामोदर मिश्र प्रणीत–'वाणीभूषण'। यह दो परिच्छेदों में उपनिबद्ध है। प्रथम परिच्छेद मे मात्रावृत्तो तथा द्वितीय परिच्छेद में वर्णवृत्तो का निरूपण है। लक्षणों का गठन पारिभाषिक शब्दावली मे दिया गया है। दामोदर के समय में सस्कृत के विद्वान् प्राकृत छन्दोग्रन्थों का परिशीलन नहीं करते थे। इसलिए उन्होने विशेषत उन्हीं के

[1] चन्द्रप्रभसूरिकृत प्रभावकचरितम् पद्य –११ तथा १२

[2] डॉ० नेमचन्द्रशास्त्री आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन पृ०६

अध्ययनार्थ उसकी रचना की है।[1] वस्तुत यह ग्रन्थ 'प्राकृत–पैड्गल' का सस्कृत में अनुकरणमात्र है। इसमे कुल ३५० पद्य हैं, जिनमे ४३ मात्रिक तथा १११ वार्णिक वृत्तों के लक्षण व उदाहरण हैं। दामोदर मिश्र ने वाणी भूषण में प्राकृत तथा अपभ्रश भाषा के छन्दो को मात्रावृत्त प्रकरण मे सस्कृत मे लक्षित कर उनका सस्कृतीकरण कर उदाहरण सस्कृत पद्यो मे ही दिये हैं, जिनका प्रस्तुत प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में आधुनिक सस्कृत गीतकाव्य एव छन्द शीर्षक के अर्न्तगत विवेचन किया जायेगा।

दामोदर मिश्र के व्यक्तित्व के विषय मे यह कहा जाता है कि ये मैथिल ब्राह्मण थे जो मिथिला के राजा कीर्तिसिह के दरबार से सम्बद्ध थे। यही कीर्तिसिह विद्यापति के अवहट्ट भाषा मे निबद्ध 'कीर्तिलता' के नायक हैं। विद्यापति का समय १५वीं शती माना जाता है। अत दामोदर मिश्र इन्हीं के समकालिक सिद्ध होते हैं।

छन्दोमञ्जरी – गङ्गादास –

छन्दो की मञ्जरीभूता यह छन्दोमञ्जरी अपनी कोमलकान्त दृष्टान्तावली व लक्षणावली के कारण वृत्तरत्नाकर के बाद सबसे अधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुई, जो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ साहित्यदर्पण के समान है तथा जिसके प्रणेता हैं– गङ्गादास, जो विश्वनाथ की तरह आचार्य भी हैं और कवि भी। छन्दोमञ्जरी षष्ठ स्तबकों मे विभक्त है, जिसमें प्रथम स्तबक मे छन्दःशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों एव सिद्धान्तो का उल्लेख है, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ में क्रमश सम, अर्द्धसम तथा विषम वृत्तो का निरूपण है, पञ्चम स्तबक में मात्रावृत्तों का विवरण है तथा षष्ठ स्तबक गद्यप्रभेदो के लिये समर्पित है। वृन्दावन शोध सस्थान, वृन्दावन के

---

[1] अलसधिय प्राकृतमधि सुधिय केचिद् भवन्तीह। कृतिरेषा मम तेषामातनुतादीष दपि तोषम्।
— वाणी भूषण१/३

हस्तलिखित ग्रन्थागार मे छन्दोमञ्जरी की उन्नीस पाण्डुलिपियाँ सङ्गृहीत हैं, जिनकी प्राप्ति सख्या इस प्रकार हैं—

३०६८, ३०६६, ३१००, ०१, ०२, ०३, ०४, ०५, ०६, ०७, ०८, ०६, ६२१७, १८, १६, २०, २१ ६६०७, ०८।

गङ्गादास के जीवन वृत्त के विषय मे केवल इतना ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम वैद्यगोपालदास तथा माता का सतोषा देवी था।[1] ग्रन्थ के अन्त में[2] इनकी अन्य कृतियाँ ज्ञात होती है— अच्युतचरितम्, कसारिशतकम्, तथा दिनेश शतकम्। इनके पिता श्री वैद्यगोपालदास भी एक कवि थे, जिनकी रचना 'पारिजातहरण— नाटक का उल्लेख मिलता है।[3]

अपने देशकाल के विषय मे इन्होंने कुछ भी नहीं लिखा। सम्भवत ये उत्कल निवासी थे। वृत्तरत्नाकरादर्श नाम्नी वृत्तरत्नाकर की टीका, जो १६८४ ई० की है, में छन्दोमञ्जरी का नामोल्लेख है। इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में इसकी एक प्रति विद्यमान है।[4] उज्ज्वल नीलमणि में रूप गोस्वामी, जिनका स्थितिकाल १४६० ई० — १५६२ ई० है, ने छन्दोमञ्जरी को उद्धृत किया है। अत इसके आधार पर आचार्य गङ्गादास का स्थिति काल पन्द्रहवीं शती के आस पास ठहरता है।

वृत्तरत्नावली – वेकटेश .–

वृत्तरत्नावली के रचयिता श्रीवेकटेश हैं। इस पर अज्ञातनामा लेखक की सस्कृत व्याख्या भी मिलती है।[5] वृत्तरत्नावली मे केवल ६६ पद्य हैं, जिनमे ६२ छन्दो

---

[1] छन्दोमञ्जरी प्रथम स्तबक /१

[2] छन्दोमञ्जरी, षष्ठ स्तबक /६

[3] मत्पितु पारिजातहरणनाटके — छन्दोमञ्जरी, प्रथम स्तबक/११

[4] बलदेव उपध्यायकृत सस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३१४

[5] अड्यार पुस्तकालय के बुलेटिन, वोल्यूम—१५ से १७ के पम्फलेट सीरीज न० २७ में, १६५२ में पुन प्रकाशित व्याख्यासहित सम्पा० —एच०जी०नरहरि।

का वर्णन है। प्रत्येक पद्य लक्षण तथा उदाहरण देने के साथ–साथ अपने मे एक भक्तिपूर्ण काव्य हैं जो विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का प्रार्थनात्मक वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमे केवल उन्हीं छन्दों को लक्षित किया गया है, जो कवियों द्वारा काव्यो मे प्रयुक्त हो चुके हैं तथा छन्द शास्त्रीय आचार्यों के द्वारा लक्षित हो चुके हैं।

आचार्य वेकटेश के पिता का नाम अवधान सरस्वती था, जो तमिलनाडु में तुण्डीरमण्डल के तोण्डमण्डल तथा मक्षिकारण्य के त्रिवलोर के पास इवकादु नामक गॉव के रहने वाले थे।[1] अवधान सरस्वती की एक रचना का विवरण मिलता है, जिसका नाम 'वेदान्तशतश्लोकी' है।[2] सूर्यपण्डित ने उस पर एक व्याख्या लिखी है। भास्करकृत बीजगणित पर भी सूर्यपण्डित ने भाष्य लिखा था, जिसमे उन्होंने अपने समय–शक सम्वत् १४६० यानि १५३८ ई० तथा भाष्य लिखते समय अपनी अवस्था का उल्लेख किया है।[3] स्पष्ट है कि सूर्यपण्डित का जन्म शक सम्वत् १४३१ यानि १५०६ ई० मे हुआ था। अत अवधान सरस्वती का समय सूर्यपण्डित के कुछ पूर्व अवश्य ठहरता है। यदि अवधान को सूर्यपण्डित का समकालिक भी मान लें, तो उनके पुत्र वेकटेश का समय १५५० ई० के लगभग माना जा सकता है।

वृत्तप्रत्ययकौमुदी – रामचरण शर्मसूरि –

लघुकाय छन्दोग्रन्थ वृत्तप्रत्ययकौमुदी[4] रामचरण शर्मसूरि के मस्तिष्क की उपज है। इसमें दो प्रकाश हैं। प्रथम प्रकाश प्रत्ययादि छन्द शास्त्रीय गणित का विवेचन है,

---

[1] वृत्तरत्नावली परिचय –३ पृष्ठ –१४

[2] आफरेट कैटेलाग्स कैटेलागोरम, १३३ए० ६०७ए०

[3] षष्ठिशक्रगणिते शके कृत भाष्यमिन्दुगुणवत्सरे।
पञ्चविंशतिशतान्यनुष्टुभा ग्रन्थसम्मितिर्हिरास्ति केवलम्।। – वृत्तरत्नावली –परिचय– ३, पृ०– १२

[4] निर्णय सागर प्रेस बम्बई से स० १९५६ में प्रकाशित।

जबकि दूसरे प्रकाश मे वर्णवृत्त के केवल नाम गिनाये गये हैं इसका समय स० १६१० है जो इसके अन्त मे दिया गया है।

छन्दोऽङ्कुर – गङ्गासहाय –

सस्कृत–छन्दोग्रन्थ 'छन्दोऽङ्कुर'[1] गङ्गासहाय द्वारा लिखित है। इसमें प्रस्तारादि का विवेचन नहीं है। छन्द:शास्त्रीय पारिभाषिक सञ्ज्ञाओं का विवरण है। तत्पश्चात् वर्ण वृत्तो का निरूपण है। ग्रन्थ के अन्त में आर्या तथा वैतालीय नामक मात्रिक छन्दो की सङ्क्षेप मे चर्चा है। ग्रन्थ का रचना–काल स० १६४० के लगभग निश्चित होता है।

प्रस्तारादिरत्नाकर – अमरदास –

केवल प्रस्तारादि छन्द:शास्त्रीय गणित का विवेचन करने वाला छन्दोग्रन्थ 'प्रस्तारादिरत्नाकर'[2] अमरदास की छन्दोकृति है। अधिकाशत अनुष्टुप् छन्द मे रचित इस ग्रन्थ मे कुल पैंतीस पद्य हैं। ग्रन्थान्त में दिया गया इस ग्रन्थ का रचनाकाल सम्वत् १६५१ है।

वृत्तमौक्तिक – भट्ट चन्द्रशेखर –

सस्कृत–छन्दों के साथ–साथ हिन्दी छन्दो का भी निरूपण करने वाला छन्दोग्रन्थ 'वृत्तमौक्तिक' भट्ट चन्द्रशेखर[3] द्वारा प्रणीत है। इन्होने इसकी रचना कार्तिकी पूर्णिमा वि० स० १६७६ या १६२० ई० में की थी। ग्रन्थकार की अकाल मृत्यु

---

[1] निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से स० १६६६ में प्रकाशित।

[2] श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से स० १६६६ में प्रकाशित

[3] श्री लक्ष्मीनाथभट्टस्य पितुर्नत्वा पदाम्बुजम्।
श्री चन्द्रशेखर कविस्तनुते वृत्तमौक्तिकम्।।
— वृत्तमौक्तिक गाथा प्रकरण, ३

हो जाने के कारण छन्दोग्रन्थ की पूर्ति लेखक के पिता लक्ष्मीनाथ भट्ट,[1] जिन्होने प्राकृत पैङ्गल पर 'पिङ्गलप्रदीप नामक व्याख्या लिखी, ने की थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि छन्दोज्ञान इन्हे विरासत मे मिला था। ग्रन्थकार ने वृत्तमौक्तिक की रचना करने से पहले 'प्राकृत पैंगल' के प्रथम परिच्छेद पर 'उद्योत' नाम की टीका लिखी। वृत्तमौक्तिक छन्द शास्त्र का एक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। यह अनेक वैशिष्ट्य से विशिष्ट है। प्रकृत ग्रन्थ के दो खण्ड हैं जिसके प्रथम खण्ड में मात्रावृत्त तथा द्वितीय खण्ड मे वर्णवृत्त का विवेचन है। मात्रावृत्तों में हिन्दी छन्दो का विवरण है, जो अपनी दृष्टि से नवीन है, यथा सवैया प्रकरण मे इसके नाना प्रकारो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं। द्वितीय खण्ड के नवम तथा दशम प्रकरण में विरुदावली तथा खण्डावली का लक्षण दिया गया है।

छन्द कौस्तुभ – राधा दामोदर –

छन्द कौस्तुभ सस्कृत भाषा में लिखा गया लक्षणपरक ग्रन्थ है। छन्द शास्त्र के इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना गङ्गादास कृत छन्दोमञ्जरी के आनुगत्य पर हुई है। किन्तु ग्रन्थकार की अपनी कुछ मौलिक विशेषतायें हैं। इसमे नौ प्रभायें हैं। लक्षणो में ही उदाहरणो का समावेश हुआ है, उदाहरण अलग से नहीं दिये गये हैं। इसमें छन्दो की सख्या कुल २६४ है, जिसमे वार्णिक छन्द २२३ तथा मात्रिक छन्द ४१ है। बलदेव विद्याभूषण ने इस पर भाष्य लिखा है। इस ग्रन्थ की प्रथम प्रभा मे छन्द शास्त्रीय सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, तो दूसरी में समवर्णवृत्त, तीसरी में अर्द्धसमवर्णवृत्त, चौथी में विषमवर्णवृत्त, पॉचवी में अनुष्टुप् प्रकरण, छठवीं मे मात्रिक

---

[1] याते दिव सुतनये विनयोपपन्ने श्री चन्द्रशेखरकवौ किल तत्प्रबन्धः।
विच्छेदमाप भुवि तद्वचसैव सार्द्धं पूर्णीकृतश्च स हि जीवनहेतवेऽस्य।।
श्रीवृत्तमौक्तिकमिदं लक्ष्मीनाथेन पूरित यत्नात्। – वृत्तमौक्तिक पृ० २६१

छन्द सातवीं मे मात्रिक समछन्द, आठवीं मे वार्णिक प्रस्तार तथा नौवीं प्रभा में मात्रिक प्रस्तार का विवेचन है।

वृन्दावन शोध सस्थान, वृन्दावन के हस्तलिखित ग्रन्थागार मे सङ्गृहीत छन्द कौस्तुभ की चार पाण्डुलिपियॉ उपलब्ध हैं, जिनकी प्राप्ति सख्या इस प्रकार है– २१, १४२३, १०५५०, ११७०३।

छन्द कौस्तुभ के लेखक राधादामोदर के जीवन से सम्बन्धित कुछ विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती। ग्रन्थ के प्रारम्भ में बलदेव विद्याभूषण ने टीका मे उनका केवल सामान्य परिचय दिया है, जिसके आधार पर ये कान्यकुब्ज परिवार में उत्पन्न हुए थे। इन्हें अनेक शास्त्रो का अच्छा ज्ञान था और इनकी गणना विशिष्ट विद्वानों में की जाती थी।[1]

ग्रन्थकार ने छन्द कौस्तुभ का उपसहार करते हुए अपने सम्बन्ध में किञ्चित् प्रकाश डाला है– ब्राह्मण कुल के तिलक स्वरूप हरि के प्रिय भक्त श्रीमान् राधा दामोदर ने स्वर्णिम धागों से इस छन्द कौस्तुभ मणि को पिरोया।[2]

राधादामोदर का स्थिति काल निर्धारित करने से पूर्व निम्नलिखित तथ्यों का अवलोकन करना आवश्यक है–

१ 'छन्द कौस्तुभ' ग्रन्थ की पुष्पिका में लिपिकार ने ग्रन्थ को लिपिबद्ध करने का समय दिया है–

"सम्वत् १८२७ आश्विन शुक्ला १०, शनिवासरे। शुभ भवतु। श्रीरस्तु।"

किन्तु लिपिकार का नामोल्लेख नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि ग्रन्थ–रचना इससे बहुत पहले की है।

---

[1] निखिल शास्त्रार्थश्छन्दो विद्वद्वृन्दवन्द्य श्रीराधादामोदराभिख्य कान्यकुब्जविप्रवशावतसो महत्तम कविश्छन्द कौस्तुभ नाम छन्द शास्त्र प्रणयन् सर्वछन्द प्रगेयचरित श्रीकृष्ण प्रणमति छन्दोभिरिति
– प्रभा–प्रथमा, कारिका–१ की टीका

[2] द्विजकुलतिलक श्रीमान्राधादामोदरो हरे प्रेष्ठ।
स्वर्णै सूत्रैर्ग्रथित छन्द कौस्तुभमिभ व्यतनोत्।।

२ राधा दामोदर विश्वनाथ चक्रवर्ती के समकालिक हैं, अत इनका समय निर्धारित करने से पूर्व विश्वनाथ चक्रवर्ती का समय ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है। श्री प्रभु दयाल मीतल[1] ने विश्वनाथ चक्रवर्ती को १७वीं शती के अन्त या १८वीं शती के आरम्भ मे बङ्गाल के मुर्शिदाबाद जिले के देवग्राम नामक स्थान में उत्पन्न होना बतलाया है। ये छन्द कौस्तुभ के भाष्यकार बलदेव विद्याभूषण के शिक्षा–गुरु थे।

३ डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी विश्वनाथ चक्रवर्ती का स्थितिकाल वि० स० १७०० मानते हैं।[2]

४ डॉ० (श्रीमती) सुरेश नारग राधा दामोदर की उपस्थिति १६वीं शती के अन्त में तथा १७वीं शती के पूर्वार्द्ध मे मानती हैं।[3] बलदेव विद्याभूषण का निश्चित जन्म सम्वत् अज्ञात है, किन्तु इतना तो निश्चित है कि वे विक्रम की १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे।

डॉ० एम० कृष्णमाचारी बलदेव विद्याभूषण की उपस्थिति १८वीं शती मे मानते हैं।[4]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि राधा दामोदर का स्थिति काल वि० की १७वीं शती का आरम्भिक काल मानना उपयुक्त होगा। अनुमान है कि इनका देहावसान १७वीं शती के अन्त तथा १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुआ होगा।

छन्द कोश – आचार्य रत्नशेखर –

छन्द कोश नामक छन्दोग्रन्थ छन्द शास्त्रीय आचार्य रत्नशेखर की प्रतिभा की उपज है, जो वज्रसेन के शिष्य तथा नागपुरियातपागच्छ के हेमतिलक सूरि के उत्तराधिकारी थे। इनकी अन्य दो रचनायें भी हैं।

---

[1] "ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ०३३८–३३६

[2] श्रीमद्भागवत् के टीकाकार, पृ० २२४–२२५

[3] The Vaishnava Philosophy According to Baldev Vidhya Bhushsan Page-2

[4] History of Classical Sanskrit Literature, Page-785

१ श्रीपालचरित

२ गुणस्थानकुमारोह।[1]

छन्दकोश मे कुल ७४ पद्य हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में लघु–गुरु वर्ण तथा अष्टगणो का विवेचन है, तत्पश्चात् वार्णिक छन्दो का विवेचन हुआ है और फिर मात्रिक छन्दो का मात्रावृत्तों के अन्तर्गत लेखक ने कुछ ऐसे छन्दों को स्थान दिया है, जो स्वरूपत वर्णवृत्त हैं, वे हैं– पञ्चचामर नाराच, दुर्मिला, मेहाणी तथा प्रमाणिका। अन्त मे गाथाओ तथा उसके भेदों को बतलाते हुए सख्या, लघु–गुरु–क्रिया–प्रत्ययों की चर्चा की है।

छन्दकोश का प्रकाशन तीन हस्तलेखों के आधार पर एच० डी० वेलणकर के सम्पादन मे बम्बई विश्वविद्यालय पत्रिका में हुआ। ये हस्तलेख पूना के भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट से प्राप्त हुये हैं और इसमें चण्डकीर्ति की टिप्पणी है।

वृत्तमुक्तावली – कृष्ण भट्ट –

तीन गुम्फो मे विभाजित 'वृत्तमुक्तावली' तैलगवशीय कृष्णभट्ट द्वारा प्रणीत है। कृष्ण भट्ट का समय १८वीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। 'वृत्तमुक्तावली' की रचना सम्वत् १७८८ से सम्वत् १७९६ के मध्य हुई थी। इसके प्रथम गुम्फ में वैदिक छन्दों, द्वितीय गुम्फ मे मात्रावृत्तो जिसमे व्रजभाषा हिन्दी के कई छन्दों का सस्कृतीकरण किया गया है तथा तृतीय गुम्फ मे वार्णिक छन्दों का विवेचन है। छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ लेखन में लम्बे समय से वैदिक छन्द ने अपना स्थान खो सा दिया था, किन्तु प्रकृत ग्रन्थ मे पुन इस ग्रन्थ में अपना स्थान बना लिया। इसी दृष्टि से यह ग्रन्थ लघुकाय होने पर भी उपयोगी है।

---

[1] मात्रिक छन्दों का विकास, पृ० –५८

वाग्वल्लभ – दु खभञ्जन कवि –

उदाहरणविहीन छन्दोग्रन्थ 'वाग्वल्लभ' काशी के महान् ज्योतिर्विद एव तान्त्रिक दु खभञ्जन शर्मा 'कवि' की प्रतिभा का परिणाम है। यह छन्द शास्त्र का विशालतम छन्द ग्रन्थ है। इसमे वृत्तों के लक्षण दिये गये हैं, उदाहरण नहीं। इसमें १५४० छन्दो का वर्णन है। प्रारम्भ में कवि ने छन्द शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दो एव प्रस्तारादि षट्प्रत्ययो का विस्तार से विवेचन है। ग्रन्थकार ने अपने छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ मे प्रस्तार का आधार लेकर शताधिक नवीन छन्दों का निर्माण भी किया है। छन्दो का लक्षण लक्ष्य–लक्षण शैली में है। प्रत्येक वार्णिक वृत्त प्रस्तार सख्या के क्रम से दिया गया है। ग्रन्थ मे लक्षित १५४० छन्दों मे से १०३१ छन्द दु खभञ्जन के स्वतन्त्र लक्षित छन्द हैं, जो लौकिक छन्दों मे अपना योगदान देते हैं।

कवि का स्थिति–काल बीसवीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इनके पितामह का नाम[1] श्री प्रताप शर्मा, पिता का नाम श्री चूड़ामणि शर्मा था। ग्रन्थ पर ग्रन्थकार के पुत्र चक्रवर्ती म०म०देवीप्रसाद कवि ने ही 'वरवर्णिनी' नामक वाग्वल्लभ के अनुरूप टीका लिखी।

छन्दस्कलावती – डॉ० राम किशोर मिश्र –

छन्दस्कलावती डॉ० रामकिशोर मिश्र की प्रतिभाप्रसूता छन्द शास्त्रीय मौलिक रचना है। इसमे तीन भाग हैं। प्रथम भाग वृत्तानुसन्धान है। इस भाग मे १४ वर्णवृत्त तथा ६२ मात्रावृत्त हैं। द्वितीय भाग का नाम छन्दोऽनुसन्धान है। इसमें २५ वर्णवृत्त तथा छ मात्रावृत्त है। तृतीय भाग छान्दसपरम्परा को समर्पित है। जिसमें भरत से लेकर दीनेशचन्द्र दत्त प्रभृति छन्द शास्त्रकारो के योगदानों का उल्लेख है।

---

[1] वाग्वल्लभ – अथ कविवशवर्णनम् में

डॉ० रामकिशोर मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जनपद में शूकर क्षेत्र मे स्थित 'सोरो' नामक नगर में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में २५ फरवरी १९३९ को हुआ था। आपके जन्म का नाम श्री लोकनाथ मिश्र था। आपका वर्तमान नाम आपकी बुआ 'गोपी' ने रखा ऐसा आपने अपने परिचय में दिया है।[1] आपके पिता का नाम 'श्री होती लाल मिश्र' तथा माता का नाम 'कलावती था। पॉच वर्ष की अवस्था में ही आपकी माता का देहावसान हो गया।

आपकी सम्पूर्ण शिक्षा सस्कृत माध्यम में हुई। सन् १९६१–६३ के मध्य उच्च–शिक्षा ग्रहण कर आपने वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् आगरा विश्वविद्यालय से १९६६ में परास्नातक की भी परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय आपका विवाह सस्कार बुलन्दशहर के वीरखेडा नामक नगर में श्रीमती देवी के साथ सम्पन्न हुआ। सम्प्रति मेरठ जनपद मे स्थित खेकड़ा में महामनामालवीय महाविद्यालय मे उपाचार्य के पद को अलङ्कृत करते हुए अपने ज्ञान के माध्यम से सस्कृत साहित्य का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं ।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। आपने काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, नाटक आदि सस्कृत साहित्य की अनेक सर्जन–विधा को अपनी लेखनी से सजाया तथा सॅवारा है। आपकी कृतियों मे दो कृतियाँ छन्द शास्त्रीय भी हैं। पहली है– असीम प्रतिभा, जिसमे वैदिक तथा लौकिक छान्दस–ग्रन्थ–परम्परा का विवेचन है तथा दूसरी 'छन्दस्कलावती' जिसके विषय मे चर्चा की जा चुकी है। डॉ० मिश्र की इस कृति मे केवल नवीन छन्दों की ही उद्‌भावना की गयी है। उन्होनें सर्वथा नये छन्दो के ही नामकरण एव लक्षण किये हैं।

---

[1] असीम प्रतिभा, पृ०–१५६

अब तक विवेचित छन्दोग्रन्थ एव छन्दःशास्त्रीय आचार्यों के अतिरिक्त प्राकृत छन्दोप्रधान ग्रन्थो की लम्बी श्रृङ्खला है, किन्तु प्रबन्ध विस्तार के भय से अपेक्षित होते हुए भी उनका विवरण नहीं दिया जा रहा है।

छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो का विभाजन –

अब तक विवेचित छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों के स्वरूप की ओर दृष्टिपात करें, तो यह गोचर होता है कि इन ग्रन्थों को लक्षण–निर्देश–शैली तथा अध्याय–विभाजन आदि की दृष्टि से कई वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं। सर्वप्रथम स्थूल दृष्टि से छन्द को लक्षित करने की पाँच शैलियाँ छन्दोग्रन्थो में पाते हैं –

१ एक सूत्रात्मक २ पौराणिक ३ वृत्तानुसारिणी

४ अक्षरानुसारिणी तथा ५ मिश्रित शैली

१ **सूत्रात्मक शैली** – इस प्रकार के ग्रन्थो में सूत्र रूप में ही छन्द का नाम व गणो की सख्या दिखायी गयी है, यथा– पिङ्गल का छन्द शास्त्र।

२ **पौराणिक शैली** – इन ग्रन्थों में छन्दों का नाम निर्देश व उसका लक्षण 'अनुष्टुप्' वृत्त में पुराणों के समान किया गया है। इसीलिये छन्द विवेचन की इस शैली को पौराणिक शैली कहना उपयुक्त है, यथा– अग्निपुराण, नाट्यशास्त्र आदि ।

३ **वृत्तात्मक शैली** – इस शैली के अन्तर्गत वृत्तों के नाम निर्देश व लक्षण उसी वृत्त मे किया गया है, यथा –छन्दोमञ्जरी, वृत्तरत्नाकर आदि।

४ **अक्षरात्मक शैली** – इसमें अक्षरो को प्रधान मानकर अर्थात् किस वृत्त मे कितने अक्षर लघु और कितने गुरु हैं, इसे आधार मानकर लक्षणों का कथन उसी छन्द में किया गया है, यथा – कालिदास का श्रुतबोध।

५ **मिश्रित शैली** – शैली का एक प्रकार ऐसा भी देखने को मिलता है, जिसमें वारणिक छन्दो का सूत्र–शैली मे तथा मात्रिक छन्दो का वृत्तात्मक शैली में लक्षण निर्देश किया गया है, यथा आचार्य रामकिशोर मिश्र कृत 'छन्दस्कलावती'।

सूक्ष्म रूप से लक्षण–निर्देश की दो शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं।

१ **गण–निर्देश शैली** – गण–निर्देश शैली के अन्तर्गत छन्दों के लक्षण–प्रदर्शन में गणों (वार्णिक एव मात्रिक गण) का सहारा लिया गया है, जिनमें पिङ्गलकृत 'छन्दःशास्त्र', जयदेवकृत 'जयदेवच्छन्द', जयकीर्तिकृत 'छन्दोऽनुशासन', केदारभट्टकृत 'वृत्तरत्नाकर, हेमचन्द्रकृत 'छन्दोऽनुशासन', क्षेमेन्द्रकृत 'सुवृत्ततिलक' तथा गङ्गादासकृत 'छन्दोमञ्जरी' आदि प्रमुख छन्दोग्रन्थ हैं।

छन्दो के लक्षण–निरूपण में गण–निर्देश–शैली ही अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुई। गणों के प्रयोग से लक्षण में स्मरणीयता तथा सङ्क्षिप्तता का समावेश होना ही इस शैली के लोकप्रिय होने में कारण दिखायी देता है। मुद्रण के अभाव में सूत्रात्मक शैली में लिखे गये ग्रन्थो में गण–प्रयोग की आवश्यकता थी। इस शैली के विरोध में यह कहा जा सकता है कि गण–प्रयोग के कारण लक्षण मे अतिपारिभाषिकता का दोष आ जाता है, जो सामान्य पाठकों के लिये कठिन सिद्ध हो सकता है। किन्तु अधिकाँश छन्दोलक्षण–ग्रन्थो मे गण–प्रयोग की प्रवृत्ति से यह स्पष्ट है कि इस शैली में निबद्ध ग्रन्थ छन्दों के विषय में भली–भाँति या सम्यक् ज्ञान की इच्छा रखने वालों के लिए ही प्रणीत किये गये हैं।

२ **गणविहीन–शैली** – द्वितीय शैली के अन्तर्गत छन्दों के लक्षण–प्रदर्शन में गणो का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि केवल पादगत अक्षरसख्या अथवा मात्रासख्या, पाद में निश्चित लघु–गुरु के क्रम तथा यति आदि के उल्लेख हैं।

इस शैली का प्रतिनिधिभूत एक ही ग्रन्थ है और वह है– कालिदासकृत 'श्रुतबोध'। गण–प्रयोग से होने वाले अतिपारिभाषिकता के दोष से बचने एव सामान्यजनो के छन्दोबोध के लिए ही ग्रन्थ का प्रणयन किया गया है, ऐसा ग्रन्थ की विवेचन–शैली से अनुमान किया जा सकता है।

अध्याय आदि में विभाजन की दृष्टि से छन्दोंग्रन्थों को दो भाँगों में बाँट सकते हैं–

१ कपिपय छन्दोग्रन्थो का अध्यायों, विन्यासों, अधिकारों, परिच्छेदों, स्तबकों आदि में विभाजन किया गया है, यथा– छन्द शास्त्र आठ अध्यायों, जयदेवच्छन्द आठ अध्यायों, जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन आठ अधिकारों, सुवृत्ततिलक तीन विन्यासों, वृत्तरत्नाकर छ अध्यायों, हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन आठ अध्यायों, वाणीभूषण दो परिच्छेदों, छन्दोमञ्जरी छ स्तबकों तथा छन्दस्कलावती तीन भागों आदि में विभाजित किये गये हैं।

२ कुछ छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ अध्याय आदि सख्या रूप से विभक्त न होकर लगातार छन्दों का विवेचन करते चलते हैं। इनमें प्रमुख ग्रन्थ हैं– दु खभञ्जन कविकृत 'वाग्वल्लभ', 'श्रुतबोध', गङ्गासहायकृत 'छन्दोऽङ्कुर' तथा अमरदासकृत 'प्रस्तारादिरत्नाकर'। ध्यातव्य है कि इस श्रेणी मे आने वाले छन्दोग्रन्थ सख्या में बहुत कम हैं।

विषय–क्षेत्र के विस्तार की दृष्टि से इन छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों के छ प्रकार हो सकते हैं–

१ प्रथम प्रकार के वे ग्रन्थ हैं, जिनमे छन्दों के लक्षण एव उदाहरण के साथ–साथ छन्द शास्त्रीय गणित षड्प्रत्ययों का विवेचन किया गया है, यथा– 'छन्द शास्त्र', 'जयदेवच्छन्द', जयकीर्ति द्वारा लिखित 'छन्दोऽनुशासन' तथा केदारभट्टकृत 'वृत्तरत्नाकर' इस प्रकार के ग्रन्थों की श्रेणी मे आते हैं।

२ द्वितीय प्रकार मे वे ग्रन्थ आते हैं, जिनमे छन्दो के लक्षणों एव उदाहरणों का ही निवेचन है, षड्प्रत्ययों का नहीं, उन ग्रन्थों में 'श्रुतबोध', दामोदरमिश्रकृत 'वाणीभूषण', 'छन्दोमञ्जरी', 'छन्दोऽङकुर' तथा 'छन्दस्कलावती' प्रमुख हैं।

३ जिन ग्रन्थों मे केवल षड्प्रत्ययो का विवेचन है, वे तृतीय प्रकार के ग्रन्थों में आते हैं। इनमे अमरदासकृत 'प्रस्तारादिरत्नाकर' ही एकमात्र समुपलब्ध ग्रन्थ है।

४ चतुर्थ प्रकार उन ग्रन्थो का है, जो केवल छन्द के लक्षणों को ही प्रस्तुत करता है, उदाहरणो को नहीं। इस श्रेणी मे दु खभञ्जन कवि का विशालकाय छन्दोग्रन्थ है, जा 'वृत्तरत्नाकर' की अनुकृति पर लक्ष्य–लक्षण शैली मे लिखा गया है, किन्तु उदाहरण अलग से नहीं दिया गया है।

५ पञ्चम प्रकार के वे ग्रन्थ हैं, जो छन्द शास्त्र से सम्बद्ध किन्तु छन्दों के लक्षणोदाहरण का विवेचन करने के स्थान पर छन्दो का रस एव भाव के साथ छन्दों के सम्बन्धों की चर्चा करते हैं, यथा– क्षेमेन्द्रकृत 'सुवृत्ततिलक'।

६ छन्दोभेद की दृष्टि से विवेचित ग्रन्थो के षष्ठ प्रकार में रखा जा सकता है। इन्हें दो भॉगों मे विभक्त करते हैं।

अ– कतिपय छन्दोग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमे वैदिक एव लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों का निरूपण किया गया है, यथा– 'छन्द शास्त्र', 'जयदेवच्छन्द' तथा श्रीकृष्ण भट्टकृत 'वृत्तमुक्तावली'।

ब– केवल लौकिक छन्दों का निरूपण करने वाले ग्रन्थ द्वितीय कोटि में आते हैं, यथा– 'वृत्तरत्नाकर' आदि।

निष्कर्ष –

छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो की विकास–परम्परा एव उनके कलेवर की दृष्टि से किये गये विभाजन आदि का विश्लेषण करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे छन्द शास्त्रीय विवेचन की परम्परा पिङ्गल के छन्द शास्त्र से प्रवर्तित हुई दिखायी पडती है, जिसमें वैदिक और लौकिक (वार्णिक तथा मात्रिक छन्द) दोनों प्रकार क छन्द लक्षित हुए। साथ ही षड्प्रत्ययो का विवेचन तथा वार्णिक

एव मात्रिक छन्दो के सम, अर्द्धसम एव विषम नामक उपभेदों की प्रवृत्तियॉ भी इसी ग्रन्थ मे सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से प्राप्त होती है। परवर्ती जितने भी छन्द शास्त्रीय आचार्य हुए हैं, सभी ने आचार्य पिङ्गल के छन्द शास्त्र को ही उपजीव्य के रूप में स्वीकार किया है। कालिदास के 'श्रुतबोध' मे 'वृत्तरत्नाकर' आदि की लक्ष्य–लक्षण–शैली से हटकर पद्यात्मक शैली का दर्शन सर्वप्रथम पाते हैं। इसमे लक्षण–विधान में गण–प्रयोग को स्थान नहीं दिया गया है। क्षेमेन्द्र के सुवृत्ततिलक मे छन्द का सम्बन्ध काव्यवस्तु, रस एव भाव से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। विशिष्ट कवियों की विशेष छन्दो के प्रति रूचि का भी सङ्केत किया गया है। छन्द का सम्बन्ध काव्यवस्तु आदि के साथ क्या है, इसके विवेचन की दिशा में अब तक उपलब्ध ग्रन्थो मे 'सुवृत्ततिलक' प्रथम एव अन्तिम हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध दृष्टि से किये गये ये विभाजन छन्द शास्त्र के क्षेत्र में उस वैज्ञानिक प्रवृत्ति की ओर सङ्केत करते हैं, जिसकी परम्परा आचार्य पिङ्गल से लेकर अद्यावधि आचार्य रामकिशोर मिश्र तक अविरल रूप से प्रवर्तित होती आ रही है।

उपर्युक्त छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो के विवेचनो से स्पष्ट हैकि छन्द शास्त्र की अविरल धारा प्रवाहित होती दिखायी पड़ती है। पिङ्गल मुनि के पूर्वकालिक छन्द शास्त्रीय विवेचन से उत्तरकालिक बीसवीं शताब्दी तक निरन्तर छन्द ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा। प्रभूत साहित्य से इसके महत्व का पता चलता है। आज भी सस्कृत रचना विविध छन्दों में हो रही है, जो पारम्परिक छन्दों से हटकर है, जिनके नामकरण के साथ–साथ लक्षण–ग्रन्थ लिखे जाने की आवश्यकता है। इस दिशा में सम्प्रति डॉ० रामकिशोर मिश्र का प्रयास सराहनीय है।

द्वितीय अध्याय

छन्दःशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

द्वितीय अध्याय
छन्दः शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

सस्कृत–छन्दोविधान एक ऐसा तकनीकी विषय है, जिसकी सैद्धान्तिक एव प्रायोगिक सिद्धि करने के लिये एक विशेष प्रकार की शब्दावली की चर्चा करना आवश्यक है। छन्द सिद्धि के लिये इन अनेक पारिभाषिक शब्दो से होकर गुजरना पड़ता है। अत छन्द के विवेचन के परिप्रेक्ष्य में इन शब्दावली या नामावली का परिज्ञान या पर्यालोचन आवश्यक है। इस क्रम में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में उन सब पारिभाषिक शब्दो का यहाँ विवेचन किया जा रहा है।

वर्ण एवं मात्रा

छन्द के स्वरूपाधायक तत्त्वो मे प्रथम तत्त्व है– वर्ण (अक्षर) एव मात्रा। 'वर्ण' शब्द अनेकार्थक है, किन्तु छन्द की विवेचना करते समय यह अर्थ विशेष की सीमा में बँध जाता है। व्याकरण तथा भाषा विज्ञान मे 'वर्ण' शब्द का प्रयोग मूल ध्वनि के अर्थ मे करते हैं, जिसके टुकडे न हो सकें, यथा– अ, इ, क, ख आदि। वर्ण के दो भेद हैं– स्वर तथा व्यञ्जन। छन्दःशास्त्र मे अ, आ अथवा क, ख आदि एक–एक वर्ण हैं। यहाँ तक कि सयुक्ताक्षर को भी एक ही वर्ण माना जाता है। यद्यपि उसमें कई वर्ण प्रयुक्त हुआ करते हैं, यथा– 'ज्योत्सना' इसमे छन्दशास्त्रीय दृष्टि से 'ज्यो' तथा 'त्स्ना' दो वर्ण हैं। वर्ण एव अक्षर एक दूसरे के अपर नाम हैं।[1] छन्दःशास्त्र में एक स्वर वाली ध्वनि को 'वर्ण या 'अक्षर' कहते हैं। इस ध्वनि के उच्चारण मे जो समय लगता है उसकी सबसे छोटी इकाई को 'मात्रा' कहते हैं। मात्रा के विषय में यह कारिका प्रसिद्ध है–

---

[1] पूर्वसूत्रे वर्णस्याक्षरमिति सञ्ज्ञा क्रियते – महाभाष्य १/१

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रिकम्।।

गुरु वर्ण के पश्चात् हल् की अलग से मात्रा नहीं ली जाती, यथा 'भवेत्' यहाँ 'त्' की अलग से मात्रा नहीं मानी जायेगी, किन्तु लघु वर्ण के पश्चात् 'हल्' होने पर लघु वर्ण गुरु माना जायेगा, यथा 'मात्रकम्। यहाँ लघुवर्ण क' के पश्चात् 'म्' की गुरु सञ्ज्ञा हो जायेगी। ये दोनो ही छन्दःशास्त्र के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। लघु के लिये खडी रेखा (।) तथा गुरु के लिये अवग्रह (ऽ) प्रतीक के लिये प्रयुक्त होते हैं। कहीं–कहीं पर वर्ण को मात्रा के आधार पर दो प्रकार से विभक्त किया जाता है– 'लघुवर्ण (एकमात्रिक) तथा 'गुरु' वर्ण (द्विमात्रिक)। व्याकरण में 'लघु' को 'ह्रस्व' तथा 'गुरु' को 'दीर्घ' कहा गया है। 'दीर्घ' और 'गुरु' में केवल इतना अन्तर है कि 'दीर्घ' हमेशा 'गुरु' हुआ करता है, किन्तु छन्दोविधान में सयोग के पूर्व विद्यमान 'लघु' भी 'गुरु' हो जाया करता है। आचार्य पाणिनि ने भी 'सयोगे गुरु'[1] कहकर 'लघु' की गुरु सञ्ज्ञा की। दीर्घ और 'गुरु' के भेद प्रदर्शन में आचार्य पाणिनि का केवल इतना ही तात्पर्य होगा कि कहीं लोग 'गुरु' शब्द का व्याकरण में भी व्यवहार न करने लगें। हाँ, इतना अवश्य है कि आचार्य पाणिनि ने 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ (३/१/३६) तथा 'गुरोश्च हल' (३/३/१०३) में 'गुरु' शब्द का प्रयोग क्रमशः 'एधाञ्चक्रे' तथा 'ईहा' प्रयोग सिद्ध करने के लिये किया है। किन्तु 'गुरु' शब्द का प्रयोग पाणिनि ने यहाँ पर क्यों किया ? यह समझ में नहीं आता, क्योकि 'दीर्घ' के प्रयोग होने पर भी प्रयोग सिद्ध होता दीख पडता है। शायद सूत्र में लाघव की दृष्टि से वैय्याकरण ने 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया होगा।

---

[1] १/४/११ अष्टध्यायी – आचार्य पाणिनि

लघु एव गुरु वर्णों का विधान करते हुए छन्दःशास्त्रीय आचार्यों ने कहा है कि वे वर्ण गुरु होंगे जो अनुस्वार से युक्त, विसर्गान्त, दीर्घ तथा सयोग से पूर्व विद्यमान हो। पादान्त में आवश्यकतानुसार विकल्प से 'लघु या 'गुरु' स्वीकार कर लिया जाता है।[1] वृत्तरत्नाकरकार ने इनका सङ्कलन करते हुए लिखा है कि –

"सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च य ।[2]

वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको लृजु ।।

यहाँ युक्तपर शब्द व्यञ्जन, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीयपरक शब्दों का उपलक्षण है[3] अर्थात् जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय व्यञ्जन आगे रहने पर लघु स्वर गुरु हो जाता है, यथा–

"मन्द कवियश प्रार्थी गमिष्यामुपहास्यताम्। [4]

यहाँ जिह्वामूलीय परभाग में रहने के कारण 'द' कार गुरु है तथा उपध्मानीय आगे रहने के कारण 'श कार गुरु है। व्यञ्जन आगे होने पर लघु स्वर गुरु हो जाया करता है, यथा–

"रघूणामन्वय वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।"[5]

प्रकृत श्लोकार्द्ध मे सकारोतरवर्ती अकार व्यञ्जन नकार होने के कारण गुरु है। पादान्त में विद्यमान लघुत्व–गुरुत्व का नियम वैकल्पिक है अर्थात् आवश्यकतानुसार कहीं गुरु तो कहीं लघु होगा, यथा–

"तस्या खुरन्यासपवित्रमपासुमपासुलाना धुरि कीर्तनीया।"[6]

---

[1] पिङ्गल छन्दः सूत्र (गन्ते १/१० ग्लादिपर १/११ हे १/१२)

[2] वृत्त रत्नाकर १/६

[3] आदिशब्देन विसर्जनीयानुस्वारजिह्वामूलीयोपध्मानीयाना ग्रहणम्। – (पि० सू० १/११ की हलायुधवृत्ति)

[4] रघुवश महाकाव्यम् सर्ग–१ पद्य–३

[5] रघुवश महाकाव्यम् सर्ग –१ पद्य–६

[6] रघुवश महाकाव्यम् सर्ग–२, पद्य–२

युक्तपरक पादान्त गुरु के लघु होने का यह नियम उपलक्षणमात्र दीख पड़ता है, क्योंकि पिङ्गल मुनि का विकल्पविधायक सूत्र 'प्रह्रे वा' के अनुसार कहीं–कहीं पादान्त मे न रहने वाला 'गुरु' 'प्र' तथा 'ह्र के पहले 'लघु' हो जाता है,[1] यथा –

सा मङ्गलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतप्रत्युद्गमनीयवस्त्रा।[2]

निर्वृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे।।

महाकवि कालिदास के प्रकृत प्रसिद्ध उपेन्द्रवज्रा छन्द मे 'गृहीत का तकारोत्तरवर्ती 'अ' युक्तपर होने के कारण 'गुरु' होना चाहिये था, किन्तु 'प्र' के पहले होने के कारण वह लघु है। यह पादान्त मे भी नहीं है, अपितु द्वितीय पाद के मध्य मे हैं।

<u>'ह्र' परक लघुता का उदाहरण</u> –

"प्राप्य नाभिह्रदमज्जनमाशु प्रस्थित निवसनग्रहणाय"।[3]

महाकवि माघ के इस पद्य मे 'ह्र' के पूर्व मे विद्यमान सयोग परक गुरु 'इ' लघु हो गया है। यह 'नाभि' शब्द प्रथम पाद के बीच में है, अन्त में नहीं।

रामायण मे भी ऐसा प्रयोग – ह्र परक गुरुत्व की लघुता मिलता है– यथा–

तव ह्रियाऽपरिह्रियो मम ह्रीरभूच्छशिगृहेऽपि ह्रत न धृता तत ।

बहुलभ्रामरमेचकतामस मम प्रिये ! क्व समेष्यति नो पुन ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि "युक्तपर" का नियम सार्वत्रिक नहीं है। कभी–कभी तीव्र उच्चारणवशात् 'युक्तपर' का नियम नहीं लागू होता अर्थात् सयुक्त

---

[1] 'प्रह्रे वा' इति, पिङ्गलमुनेर्विकल्पविधायकसुत्रम्' आज प्रचलित छन्द'सूत्र में यह नहीं पाया जाता । छन्दोमञ्जरी १/११ की सुषमा' टीका से उद्धृत

[2] कुमारसम्भवम् सर्ग– ७, पद्य– ११

[3] शिशुपालवध सर्ग–१० पद्य–६०

अक्षर से पूर्व का वर्ण लघु ही रहता है, वहाँ छन्दोभङ्ग दोष नहीं होता,[1] अपितु छन्दोभङ्ग दोष से बचने के लिये ऐसा प्रयोग कविजन किया करते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि लघु–गुरु का वैकल्पिक नियम द्वितीय एव चतुर्थ पाद मे ही समझना चाहिये, क्योंकि प्रथम तथा तृतीय पाद के अन्तिम वर्ण अगले पाद से सम्बन्ध रखते हैं। प्रथम तथा तृतीय पाद के लघु वर्ण केवल वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा में ही गुरु माने जाते हैं। इन वृत्तो मे प्रथम तथा तृतीय पाद की समाप्ति मे आने वाले गुरु अथवा लघु वर्ण के प्रयोग से भी श्रव्यता–सौन्दर्य मे हानि नहीं होती। इसी लिये कहा गया है –

'न पदान्तलघोर्गुरुत्व सर्वत्र।'

यहाँ पर प्रश्न उपस्थित होता है कि सयुक्त वर्ण से पूर्ववर्ती वर्ण 'गुरु' क्यो होता है? इसका उत्तर यह है कि बन्ध मे दृढता लाने के लिये ही ऐसा किया जाता है। वस्तुत 'बन्धदार्ढ्य' ही पादान्तस्थ वर्ण के गुरु लघु होने मे तथा 'युक्तपर' के नियम मे कारण होता है। इस व्यवस्था के कारण निश्चित रूप से कवियों को काव्यनिर्माण मे सुविधा होती है और इससे कोई हानि भी नहीं होती।

पाद

छन्द के स्वरूपाधायक तत्त्वों मे से एक तत्त्व है, पाद। इसके अपर नाम हैं–चरण, अङ्घ्रि। कोश मे 'पाद' शब्द के विविध अर्थ प्राप्त होते हैं, यथा– पर्वत के समीप की छोटी पहाडी[2], पैर तथा चरण[3], चतुर्थ भाग[4] तथा किरण[5], किन्तु छन्दःशास्त्र

---

[1] यदातीव्रप्रयत्नेन सयोगादेरगौरवम्।
न च्छन्दोभङ्ग इत्याहुस्तदा दोषाय सूरयः।। – सरस्वती कण्ठाभरण १/१३

[2] पादाःप्रत्यन्तपर्वताः –अमरकोश काण्ड–२, वर्ग–३, पद्य–७

[3] पादः यदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् – वही, वर्ग–६, पद्य–७१

[4] पाद तुरीयो भागः स्यात् – वही वर्ग–६, प–८६

[5] पादाः रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः – वही, काण्ड–३, वर्ग–३, पद्य–८६

मे 'चतुर्थ' या 'चौथाई' भाग ही अभिप्रेत है। पद्य या छन्द का चतुर्थ भाग 'पाद' कहलाता है जैसा कि पिङ्गल[1] तथा परवर्ती छन्दशास्त्रीय आचार्यों ने कहा है। अन्य शब्दो मे, जहॉ पाद शब्द का व्यवहार हो, वहाँ छन्द का चतुर्थ भाग समझना चाहिये। उल्लेख्य है कि चतुर्थ भाग से सम चतुर्थ भाग ही नहीं समझना चहिये, अपितु जिस लक्षण मे जितना कहा गया हो, उतने का ही ग्रहण करना चाहिये, तभी अर्द्धसम एव विषम छन्दो के – जिनके चरण बराबर नहीं होते– 'पाद' शब्द का व्यवहार हो सकेगा, अन्यथा नहीं।[2] यह भी ध्यातव्य है कि पाद का यह लक्षण प्रायिक है, सामान्य नहीं, क्योकि गाथा छन्दों मे (वैदिक छन्दो मे भी) तीन और छ पाद भी होते हैं। यदि हम प्रकृत लक्षण को ही 'पाद' का सामान्य लक्षण स्वीकार कर लें तब यह लक्षण तीन एव छ पादो वाले गाथा आदि छन्दों मे 'अव्याप्ति दोष' से दूषित हो जायेगा, जो कि अनिष्ट होगा। अत एव 'पाद' शब्द पूरे छन्द के एस विशिष्ट अश के लिये रूढ हो गया, जो एक पङ्क्ति में लिखा जाता था। पादबद्धता के कारण ही छन्द को 'पद्य' (पद चरणम् अर्हतीति) नाम दिया जाता है। पद्य स्थान के अनुसार आचार्यों ने 'पाद' के नाम भी दिये हैं। समस्थानीय पादो को 'युक्' तथा विषम स्थानीय पादो को 'अयुक्' सञ्ज्ञा से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार 'सम' स्थान को 'युग्म' तथा 'अनोज' एव विषम स्थान से 'अयुग्म' तथा 'ओज' नाम दिया जाता है।

गण

'गण' छन्दशास्त्र का एक पारिभाषिक तत्त्व है, जिसका छन्द स्वरूप निरूपण मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। गण का अर्थ है– 'समूह'। वैसे कोशकारों ने 'गण' शब्द के

---

[1] पादश्चतुर्भाग – छन्द शास्त्र ४/१०

[2] यस्य वृतस्य यादृशै पादैर्न्यूनाक्षरैरधिकाक्षरैर्वा समाप्तिर्दृश्यते,
तस्य तादृशा एव पादा ग्रहीतव्या। .. उद्गतादिषु विषमवृत्तेषु चतुर्भागातिक्रमेणापि पादव्यवस्थादर्शनात् (छन्द सूत्र ४/११ की हलायुध वृत्ति)

अनेक अर्थ बताये हैं– समूह[1], शिव के दूत[2] तथा व्याकरण मे धातुओ तथा शब्दो के वे समूह, जिनमें समान लोप, आगम तथा वर्ण विकार आदि होते हैं। यहाँ प्रथम अर्थ ही अभिप्रेत है। प्रश्न उठता है किसका समूह ? उत्तर मिलता है वर्णों का समूह। पुनश्च प्रश्न उठता है– कितने वर्णों का समूह ? उत्तर मिलता है तीन वर्णों का समूह। तीन वर्णों के समूह के लिये आचार्यों ने 'त्रिक' का प्रयोग किया है। इन्हीं गणो से छन्द का आकार निर्मित होता है।[3]

गण दो प्रकार का होता है– १ मात्रागण २ वर्णगण। मात्रागणो में एक गण की चार मात्रा होती है, जिनका प्रयोग आर्यादि मात्राछन्दों के स्वरूप निरूपण के सन्दर्भ में किया गया है। एक गण मे चार मात्रा के आधार पर मात्रागणों की सख्या पॉच बैठती है–

१ सर्वगुरु (SS), २ अन्तगुरु (।।S) ३ मध्य गुरु (।S।)
२ आदिगुरु (S।।) ५ सर्व लघु (।।।।)[4] ।

ध्यातव्य है कि लघु की एक मात्रा और गुरु की दो मात्रा होती है। प्रश्न उठता है कि वार्णिक गणो की तरह इसमे तीन की सख्या का विधान नहीं है क्योंकि वर्ण एकमात्रिक भी हुआ करते हैं तथा द्विमात्रिक भी। अतएव गण मे मात्राओ की सख्या का 'दो' से विभाज्य होना सुविधाजनक था। दो मात्राओं की इकाई छोटी होती तथा कहीं–कहीं एक ही वर्ण के बराबर हो जाती। इसलिए चार मात्राओं को इकाई मानकर मात्रिक गण सञ्ज्ञा दी गयी।

---

[1] अमरकोश काण्ड–२ वर्ग–५, पद्य–४०

[2] वही काण्ड–३ वर्ग–३ पद्य–४६

[3] ज्ञेया ह्यष्टौ त्रिकास्तत्र सञ्ज्ञाभि सीनमक्षरम्।
त्रीण्यक्षराणि विज्ञेयस्त्रिकोंऽश परिकल्पित ।। नाट्यशास्त्र १५/८१

[4] ल समुद्रा गण (पिङ्गल छन्दसूत्र ४/१२), गौगन्तमध्यादिर्न्लश्च (४/१३)

वर्णगण आठ प्रकार के हैं। इसके स्वरूप का निर्धारण करते हुए आचार्य पिङ्गल ने अपने ग्रन्थ में प्रत्येक गणो के स्वरूप–निर्धारक आठ सूत्र दिये हैं।[1] स्वरूप सहित गणों के नाम इस प्रकार हैं – मगण (ऽ ऽ ऽ), यगण (। ऽ ऽ), रगण (ऽ । ऽ), सगण (। । ऽ), तगण (ऽ ऽ ।), जगण (। ऽ ।), भगण (ऽ । ।), तथा नगण (। । ।), । आचार्य भरत, कालिदास, केदारभट्ट, तथा गङ्गादास तथा दु:खभञ्जन कवि प्रभृति छन्दशास्त्रीय आचार्यों ने भी गणो के यही स्वरूप निर्धारित किये हैं, जिसे सम्बन्धित ग्रन्थ मे देखा जा सकता है।

गणों का स्वरूप–निर्धारण करने के लिए 'यमाताराजभानलगम्' सूत्र का जानना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमे दश अक्षर हैं, जिसमें प्रत्येक अक्षर प्रत्येक गण का सूचक है, अन्तिम दो अक्षर 'ल', 'लघु' का तथा 'ग', 'गुरु' का द्योतक है। जिस गण के स्वरूप को जानना हो, उस अक्षर के सहित आगे के दो अक्षर को ले लेने से उस गण का स्वरूप निर्मित हो जाएगा। उदाहरण के लिए यदि यगण का स्वरूप हो तो यमाता अर्थात् आदि लघु वाला यगण (। ऽ ऽ) का स्वरूप होगा।

छन्दोविधान में लक्षणोक्त क्रमिक गणो का पूरा होना आवश्यक है, न कि ऐसे शब्दों का प्रयोग जिससे गण स्पष्ट रूप से दिखलायी पडते हों। यदि ऐसा है तो अच्छा होगा। इस विषय में क्षेमेन्द्र[2] का कथन है कि यह आवश्यक नहीं कि श्लोको मे ऐसे ही शब्दो का प्रयोग किया जाए जिससे प्रत्येक गण अलग–अलग गोचर हो, अपितु जिस छन्द रचना के लिए क्रमश जितने गणो का निर्देश हो, उनके अनुसार वर्ण पूरे हों। गणो की गणना कहीं अलग–अलग प्रयुक्त वर्णों से, कहीं एक पदस्थित

---

[1] धीस्त्रीम्(वही १/१), व रा सा य् (१/२) का गुह र् (१/३) वसुधा स् (१/४) सा तेक्वत् (१/५) कदास ज् (१/६), कि वद् भ् (१/७), न हस न् (१/८)

[2] क्वचिद्विक्षिप्तसस्थानै क्वचिदेकपदस्थितै।
सयोगस्थै क्वचिद् दत्तमुदाहरणमक्षरै ।। – सुवृत्ततिलक विन्यास प्रथम, पद्य – ६

वर्णों से और कहीं सयुक्त वर्णों से मिलाकर की जाती है। वार्णिक छन्द मे निश्चित गण, वर्ण तथा लघु क्रमानुसार पङ्क्तिबद्ध होते हैं, किन्तु मात्रिक छन्दो में ऐसा नहीं होता। मात्रिक छन्दों में तो मात्रायें पूर्ण की जाती है, चाहे उनकी पङ्क्ति में वर्ण अधिक हों या कम, किन्तु कुछ मात्रिक छन्द ऐसे भी होते हैं, जिनमें मात्रिक नियम के पालन के साथ–साथ किसी विशिष्ट पाद के अन्तर्गत किसी गण विशेष का नियमन भी आवश्यक होता है। आर्या आदि के भेदों मे देखा जा सकता है।

वैदिक छन्दों में छन्द· स्वरूप–निर्धारण के लिए गणों का उपयोग नहीं किया जाता था। अक्षरो की सख्या के निर्देश द्वारा ही छन्द की अथवा उसके पाद के स्वरूप को ज्ञान हो जाता था, क्योंकि वैदिक छन्दों में पादगत अक्षरो की सख्या की समानता के अतिरिक्त उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों की योजना ही अभीष्ठ होती थी, (इसी कारण वैदिक छन्द को स्वरवृत्त भी कहा जाता है) पादगत मात्राओं की सख्या–समानता अथवा मात्राओं का क्रम निर्देश आवश्यक नहीं था, जिस कारण लघु–गुरु की सामूहिक इकाई की आवश्यकता नहीं पड़ी। लौकिक सस्कृत के छन्दो में पादगत अक्षर–सख्या के बोध के साथ–साथ पादगत मात्रा–सख्या तथा इसके क्रम का निर्देश भी आवश्यक हो गया। मात्रा–क्रम–निर्देश के लिए ही प्रत्येक वर्ण के लघु–गुरु स्वरूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध का विस्तृत उल्लेख छन्द–स्वरूप–निरूपण की दृष्टि से आवश्यक हो गया, जिससे एक ऐसी पद्धति की आवश्यकता महसूस की जाने लगी, जिसके द्वारा सङ्क्षेप में छन्द के पूरे लक्षण को सुग्राह्य रूप में प्रस्तुत किया जा सके। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'गण' पद्धति का अविष्कार हुआ।

आचार्य भरत ने गणों की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है। शायद आचार्य ने नाट्य की दृष्टि से ऐसा स्वीकार किया है, क्योंकि छन्द· शास्त्रीय आचार्यों की परम्परा में 'ब्रह्मा' का नाम नहीं है। भरत के अनुसार, 'ये आठ त्रिक हैं, जो ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं। ये गण

छन्द शास्त्र में लाघव तथा छन्द प्रमाण बतलाने के लिये निर्मित किये गये हैं। इन्हीं से वृत्त तथा जाति की उत्पत्ति हुई। ये छन्द के लक्षण वेताओं द्वारा सस्वर तथा अस्वर रूप में भी प्रयुक्त किये जाते हैं।[1]

उपर्युक्त विवेचनो का विश्लेषण करने पर गणो के सन्दर्भ मे यहाँ पर दो प्रश्न उपस्थापित होते हैं–

१ गण तीन ही अक्षर का क्यों होता है?

२ आचार्य पाणिनि के व्याकरण सूत्र प्रत्याहारो से बने हैं और छन्दों के लक्षणभूत सूत्र गणों से। जिस प्रकार प्रत्याहारो की सख्या आवश्यकतानुसार बढायी जा सकती है, उसी प्रकार गणों की सख्या बढायी जा सकती है। अत गणों की सख्या आठ ही क्यों ?

वार्णिक गण तीन ही अक्षर के क्यो ? इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करते हुए डॉ० शिवनन्दन प्रसाद कहते हैं कि " 'गण' का मान ऐसा होना चाहिये, जो बहुत अधिक भी नहीं, अल्प भी नहीं। इसलिए, तीन वर्णों के गण स्वीकृत हुए।"[2] इसी प्रश्न का एक दूसरा समाधान प्रस्तुत करते हुए वे आगे कहते हैं– "भारत में तीन की सख्या के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। यह सख्या बडी सख्याओं मे सबसे छोटी और छोटी सख्याओ मे सबसे बडी समझी गयी। दर्शन के क्षेत्र में भी, इस अनेक रूपात्मक जगत् के उद्भव की व्याख्या के लिये तीन 'प्रधान' जिनका सम्बन्ध तीन गुणो से है, इकाई के रूप मे स्वीकृत हुए। वैशेषिकों का 'त्र्यणुक तथा वेदान्तियो द्वारा मान्य जीवन की तीन दशाये – उत्पत्ति, स्थिति और सहार– भी उल्लेख्य हैं। अनन्तकाल

---

[1] एते ह्यष्टौ त्रिका नामा विज्ञेया ब्रह्मसम्भव ।।
लाघवार्थं पुनरमी छन्दो मानमवेक्ष्य च।
एभ्यो विनिर्गताश्चान्या जातयोऽथ समादय ।।
अस्वरा सस्वराश्चापि प्रोच्यन्ते वृत्त लक्षणै । – भरत नाट्यशास्त्र १५/८४ ८६

[2] मात्रिक छन्दों का विकास, पृ० –२४

को भूत, वर्तमान और भविष्यत् इन तीन वर्गों में परिधि–बद्ध किया गया। फलित ज्योतिष के अनुसार नक्षत्रों के तीन गण हैं– देव, मनुष्य और राक्षस। देवताओ मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश, गुणो मे सत्, रज, तम्, लोको में आकाश–धरित्री–पाताल आदि 'तीन' की लोकप्रियता के परिचायक हैं। पाणिनि के अनुसार भी बहुत्व बोधक सबसे छोटी 'तीन' है। अतएव, आश्चर्य की बात नहीं है कि लौकिक सस्कृत काव्य में छन्दों के लक्षण–निरूपण तथा पादगत स्वरूप और परिमाण के निर्देश के लिये तीन वर्णों के समूह को प्रतिमान रूप में स्वीकार किया गया और यह प्रतिमान 'गण' कहलाया।"[1]

डॉ० शिवनन्दन प्रसाद ने 'तीन' की सख्या की लोकप्रियता के आधार पर गणो का स्वरूप 'तीन' अक्षर का स्वीकार किया है। किन्तु यह सास्कृतिक दृष्टि से किया गया समाधान प्रतीत होता है, छन्दःशास्त्रीय दृष्टि से नहीं।

वैय्याकरणों ने उच्चारण मात्रा को ध्यान में रखकर तीन प्रकार के स्वर बताये हैं–ह्रस्व(एक मात्रा वाला), दीर्घ (दो मात्रा वाला) तथा प्लुत (तीन या तीन से अधिक मात्रा वाला)। परन्तु छन्दःशास्त्र में प्लतु का अन्तर्भाव दीर्घ में ही कर दिया गया है। अतः छन्दःशास्त्र केवल दो स्वरों या व्यञ्जनों को मान्यता देता है– ह्रस्व तथा दीर्घ। ह्रस्व तथा दीर्घ के स्थान पर क्रमशः लघु तथा गुरु शब्दों का प्रयोग होता है। लघु वर्ण एक मात्रा का परिचायक तथा गुरु वर्ण दो मात्रा का परिचायक है। इस विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक लघु अक्षर अपने विषय में दो सूचनायें देता है–

१ यह कि वह एकमात्रिक है।

२ यह कि वह एक लघु अक्षर है।

इसी प्रकार प्रत्येक गुरु वर्ण यह सङ्केत करता है–

---

[1] मात्रिक छन्दों का विकास, पृ० –२५

१ कि वह एकाधिक मात्रा वाला है।

२ कि एक गुरु वर्ण अर्थात् दो लघु वर्ण है।

यदि गुरु वर्ण एव लघु वर्ण दोनो को एक साथ रखा जाए, तो समन्वित रूप से वे तीन मात्राओ तथा तीन अक्षरों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार गुण एव सख्या दोनो ही दृष्टियों से विचार करने पर लघु तथा गुरु वर्णों का समन्वय तीन मात्राओ अथवा तीन अक्षरो का ही प्रतिनिधित्व करता है। अत स्पष्ट हो जाता है कि तीन ही अक्षरो को गण बनाया जाना युक्तिसङ्गत तथा उचित है।

जहॉ तक द्वितीय प्रश्न का सम्बन्ध है, प्रस्तारगत गणितीय दृष्टि से माहेश्वर सूत्रों के माध्यम से आचार्य पाणिनि के द्वारा बनाये गये प्रत्याहारों से भी अधिक प्रत्याहार बन सकते हैं, किन्तु छन्द शास्त्र में आवश्यकता पड़ने पर भी आठ से अधिक 'गण' नहीं बन सकते हैं। यदि लघु एव गुरु को बारी–बारी से व्यवस्थित करे तो आठ ही स्वरूप बनने सम्भव हैं–

१ आदि लघु = । ऽ ऽ

२ मध्य लघु = ऽ । ऽ

३ अन्त लघु = ऽ ऽ ।

४ सर्व लघु = । । ।

५ आदि गुरु = ऽ । ।

६ मध्य गुरु = । ऽ ।

७ अन्त गुरु = । । ऽ

८ सर्व गुरु = ऽ ऽ ऽ

उपर्युक्त स्वरूपों पर गणितीय दृष्टि से विचार करें, तो पाते हैं कि आठ के अतिरिक्त एक भी गणस्वरूप नहीं सामने आता। हॉ, अगर गणों को तीन अक्षरों का

समूह न मानकर चार अक्षर का समूह मानें तो आठ से अधिक गण बन जायेगे, किन्तु गण चार अक्षर के हो नहीं सकते, जैसा कि प्रथम प्रश्न के उत्तर में बताया जा चुका है। अत गणो की सख्या आठ उपपन्न है। मात्रिक गणों की सख्या पाँच है। दोनो गणो की सख्या का योग करने पर कुल तेरह ही गण बनते हैं। यद्यपि जनाश्रयी–छन्दोविचिति मे अट्ठारह गणों का विवेचन मिलता है, किन्तु उसमें विकसित गणो का अन्तर्भाव इन्हीं अष्टगणों मे हो जाता है।

गणों के देवता, शुभाशुभ फल एवं अक्षर

गण विवेचन के सन्दर्भ मे कतिपय छन्द शास्त्रीय आचार्यों ने गणों के देवता, शुभाशुभ फल तथा अक्षरो पर भी विचार किया है। इस विषय में सम्भवत सर्वप्रथम भामह ने ही कुछ कहा है, क्योंकि भामह की ही बात को उत्तरवर्ती आचार्यों के द्वारा कहा गया है। उनके अनुसार मगण का देवता 'भूमि' तथा फल 'लक्ष्मीलाभ' है। यगण का देवता 'जल' तथा फल 'वृद्धि' है। रगण का देवता 'अग्नि' तथा फल 'विनाश' है। सगण का देवता 'वायु' तथा फल 'विदेशगमन है। जगण का देवता 'सूर्य' तथा फल 'राग' है। भगण का देवता 'चन्द्रमा' तथा फल 'सुकीर्ति है। नगण का देवता ' स्वर्ग' तथा फल 'आयुष्य' है –

> मो भूमिस्त्रिगुरु श्रिय दिशति यो वृद्धि जल चादिलो,
> रोऽग्निर्मध्य लघुर्विनाशमनिलो देशाटन सोऽन्त्यग ।
> तो व्योमान्तलघुर्धनापहरण जोऽर्को रुज मध्यगो,
> भश्चन्द्रो यश उज्ज्वल मुखगुरुर्नो नाक आयुस्त्रिल ।।[1]

सभी छन्द शास्त्रीय आचार्यों ने गण के देवतादि के विषय में उल्लेख नहीं किये हैं। चूँकि आचार्य पिङ्गल ने वैदिक छन्दों के निरूपण के सन्दर्भ में देवतादि

---

[1] छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में भामह के नाम से उपलब्ध।

का कथन किया है इसलिए शायद गणविधान में देवतादि की चर्चा स्वत लोकजीवन के बीच उद्भूत न होकर वैदिक–पौराणिक परम्परा का निर्वाहमात्र प्रतीत होती है।

इन गणो मे परस्पर सम्बन्ध की चर्चा करते हुए कहा गया है कि मगण एव नगण मित्र हैं, भगण और यगण भृत्य हैं, जगण और तगण उदासीन हैं, रगण और सगण शत्रु तथा नीच हैं–

म–नौ मित्रे भ–यौ भृत्यावुदासीनौ ज–तौ स्मृतौ।

र– सावरी नीचसञ्ज्ञौ द्वौ द्वावेतौ मनीषिभि ।।

इन सम्बन्धों की उपयोगिता बताते हुए कहा गया है कि यदि दैव–योग से दुष्ट गण काव्य के प्रारम्भ मे आ जाये, तो द्वितीय गण का शोधन करने से दोष का परिहार हो जाता है। ऐसा प्रयोग वशस्थ छन्द में प्राप्त होता है, अत एव भारवि, माघ तथा श्री हर्ष के महाकाव्यो मे देखा जा सकता है।

आचार्यों ने शुभाशुभ अक्षरों पर भी विचार किया है। अशुभ अक्षरों को ही दग्धाक्षर भी कहते हैं। इन्हे काव्यो के आदि में रखने से छन्द की रोचकता का अपकर्ष हो जाता है, साथ ही ये गणों के फल को भी अशुभ कर देते हैं। ये शुभाशुभ अक्षर इस प्रकार हैं–

शुभ अक्षर – क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ड, ध, न, य, व, श, स, तथा क्ष।

अशुभ अक्षर – ऋ, ङ, झ, ञ, टवर्ग, पवर्ग, र, ल, ध, ष, तथा ह।

छन्द कौस्तुभकार ने समस्त अशुभ अक्षरों को दग्धाक्षर न कहकर केवल ह, ज, ध, र, घ्न, ख तथा भ को दग्धाक्षर कहा है –

"हजध्रघ्नखभानुप्राहुर्दग्धवर्णान् विपश्चित ।"[1]

---

[1] छन्द कौस्तुभ प्रभा–प्रथमा, पद्य –१५

दुखदारिद्र्य के वाचक इन अशुभ अक्षरों का प्रयोग काव्य के प्रारम्भ में कवियों को नहीं करना चाहिये। हाँ, यदि ये अशुभ अक्षर मङ्गलवाचक या देवतावाचक शब्दो के प्रारम्भ मे आते हैं, तो ये निन्दनीय नहीं हैं। इस विषय में आचार्य भामह का कथन है–

देवतावाचका शब्दा ये च भद्रादिवाचका।
ते सर्वे नैव निन्द्या स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा।।

गणदेवतादि बोधक तालिका –

गणनाम	मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
स्वरूप	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ऽ	ऽ । ऽ	। । ऽ	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ । ।	। । ।
देवता	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश	सूर्य	चन्द्र	स्वर्ग
फल	श्री	वृद्धि	विनाश	भ्रमण	धननाश	रोग	सुकीर्ति	आयुष्य
मित्रादिसञ्ज्ञा	मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र
शुभ अक्षर	क,ख,ग,घ,च,छ,ज,ड,द,ध,न,य,व,श,स तथा क्ष।							
अशुभ अक्षर	ऋ, ङ, झ, ञ, रवर्ग, पवर्ग, र, ल, ध, ष, तथा ह।							

इस प्रकार गणो के देवतादि का निरूपण हो चुकने के पश्चात् यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आचार्यों ने गणो के देवतादि का निर्धारण किस आधार पर किया होगा ? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है निश्चित रूप से इस विषय में इतना कहा जा सकता है कि प्रसिद्ध महाकवियों के काव्यग्रन्थों के आधार पर ही इनका निर्धारण हुआ होगा। महाकवि कालिदासकृत रघुवश एव मेघदूत का प्रारम्भ 'मगण' से हुआ है। ये दोनों ही कृतियाँ सस्कृत–साहित्य–जगत् में श्रीसम्पन्न एव समादृत हैं।

अत फल की तो बात समझ मे आती है, किन्तु देवता तथा मित्रादि सञ्ज्ञा का आधार नहीं समझ में आता। अत यह विद्वानों के बीच गवेषणीय है।

यति

यति' छन्द के स्वरूपाधायक तत्त्वो मे एक महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसकी महत्ता प्राय सभी आचार्यों ने बतायी है। 'यति' का अर्थ है– विच्छेद, पदविच्छेद या विराम,[1] अर्थात् छन्द का पाठ करते समय जहॉ जिह्वा अकस्मात् रुक जाये, वहॉ यति होती है। आचार्य भरत दो शब्दों के निश्चित स्थान पर विच्छिन्न रहने को यति की सञ्ज्ञा देते हैं।[2] यही अर्थ प्राय सभी छन्द शास्त्रीय आचार्यों भट्टकेदार, गङ्गादास, दु ख भञ्जन कवि तथा बसन्त त्र्यम्बक शेवडे आदिकों ने भी किया है। जहाँ पर यति होती है, उसे यति–स्थान कहते हैं।

छन्दोविधान मे श्रुति–सौकर्य के लिए यति एक निश्चित स्थान मे की जानी चाहिये। छन्द वृद्धो के द्वारा यति स्थान (स्थिति) के विषय मे विस्तार से चर्चा की गयी है।[3]

'यति सर्वत्र पादान्ते' अर्थात् सभी छन्दो में यति पादान्त में हुआ करती है। 'श्लोकार्द्धे तु विशेषत ' मे यति की दो स्थितियाँ पायी जाती हैं–

१ कहीं–कहीं श्लोकार्द्ध मे यति स्थल पर विभक्ति स्पष्ट हुआ करती है अर्थात् सन्धिकार्य के अभाव मे विभक्त्यन्त पद श्रूयमाण हुआ करते हैं, यथा–

तरूण सर्षपशाक नवौदन पिच्छिलानि च दधीनि।
अल्पव्ययेन सुन्दरि ! ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति।।

---

[1] यतिर्विच्छेद – पिङ्गलकृत छन्द सूत्र ६/१

[2] नियत पदविच्छेदो यतिरित्यभिसञ्ज्ञिता – नाट्यशास्त्र १५/८७

[3] यति सर्वत्र पादान्ते श्लोकार्द्धे तु विशेषत ।
समुद्रादिपदान्ते च व्यक्ताव्यक्तविभक्तिके।।

प्रकृत स्थल मे 'दधीनि' और 'अल्पव्ययेन' में सन्धिकार्याभाव के कारण स्पष्टविभक्तिक यति है।

कहीं–कहीं पर सन्धि होते हुए भी स्पष्टविभक्तिक यति देखी जाती है, यथा–

श्यामाकामाकुला रामा वामा भोगाय आप्यतेऽ।
नेकजन्मसु पुण्याना निचयो न चितो यदि।।

यहाँ 'पूर्वरूप' सन्धि स्पष्टत परिलक्षित होती है। प्राय कवि परम्परा के अनुसार प्रथम एव द्वितीय चरणों के मध्य तथा तृतीय एव चतुर्थ चरणो के मध्य ही सन्धिकार्य देखा जाता है। द्वितीय एव तृतीय के मध्य यह एक दुर्लभ उदाहरण है। यह कवि की अशक्ति से जनित है अथवा यह नियमभङ्ग है। परन्तु इस तरह का उदाहरण एक नये प्रयोग को जन्म देता है।

२ जहाँ पर विभक्त्यन्त पद समास में अन्तर्भूत हो जाने के कारण अस्पष्ट (अव्यक्त) हुआ करते हैं, वहाँ अस्पष्टविभक्तिक यति होती है, यथा–

सुरासुरशिरोरत्नस्फुरत्किरणमञ्जरी–।
पिञ्जरीकृतपादाब्जद्वन्द्व वन्दामहे शिवम्।।

यहाँ विभक्ति के समस्त हो जाने के कारण 'अव्यक्तविभक्तिक यति' है।

'समुद्रादि पदान्ते च व्यक्ताव्यक्तविभक्तिके' का तात्पर्य यह है कि समुद्रादि पदान्त अर्थात् चतुरक्षरात्मक यति प्राय पदान्त में हुआ करती है और विभक्ति स्पष्ट होने के कारण 'व्यक्तविभक्तिक' होती है, यथा–

'यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु'[1] इत्यादि मन्दाक्रान्ता छन्द में चार अक्षरों पर हुई यति पदान्तात्मक है। कालिदास के मेघदूतम् में इस प्रकार की 'यति अनेकश' देखी जा सकती है।

---

[1] मेघदूतम् –पूर्वमेघ पद्य –१

'क्वचित्तु पदमध्येऽपि समुद्रादौ यतिर्भवेत्' अर्थात् कहीं–कहीं पर यति पद के मध्य मे हुआ करती है, यथा–

'पर्याप्त तप्तचामीकरकटकतटे श्लिष्टशीतेतराशौ' इस स्रग्धरा छन्द मे प्रथम सात अक्षर पर पदमध्या यति है। इसी तरह अन्य जगहों पर भी देखी जा सकती है। 'समुद्रादौ' कहने का तात्पर्य यह है कि पदमध्या यति पादान्त में नहीं होती और यदि होती है तो उसे यतिदोष माना जाता है, यथा–

'प्रणमत भवबन्ध–क्लेशनाशाय नारायणचरणसरोजद्वन्द्वमानन्दहेतुम्।'

प्रकृत मालिनी छन्द के उदाहरण मे पदमध्या यति है, जो छन्द·वृद्धों के द्वारा यतिदोष के रूप मे देखी जाती है। नारायण शब्द का एक साथ उच्चारण न हो पाना ही इसकी न्यूनता है। यह पदमध्या यति यदि पद के प्रारम्भ के या अन्त के एक अक्षर पर होती है, तो भी यतिदोष का प्रसङ्ग प्रसक्त होता है। यह धातु, नाम, प्रत्यय एव अव्यय के भेद से चार प्रकार की होती है, यथा–

धात्वैकाक्षरत्व यति दोष–

'एतासा राजति सुमनसा दामकण्ठावलम्बि।'

यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्द में 'राज्' धातु के 'रा' पर पदमध्या यति है, जो एकाक्षरात्मक यति दोष है।

नामैकाक्षरत्व यति दोष –

'दु सोढो दाशरथिमहिमा राक्षसाना बभूव'

इस मन्द्राक्रान्ता छन्द मे 'दा' पर यति है, जो नाम के प्रारम्भ का एक अक्षर है।

प्रत्ययैकाक्षरत्व यतिदोष –

'सुरासुरशिरोनिघृष्टचरणारविन्द· शिव'

इस 'पृथ्वी' छन्द के आठवें अक्षर 'घ' पर यति है, प्रत्यय का प्रारम्भिक अक्षर है।

अव्ययैकाक्षरत्व यति दोष –

यथा–'रामेश वा प्रतिदिनमुताहो रमेश भजाम' प्रकृत स्थल में मन्दाक्रान्ता छन्द है, जिसमें छठे अक्षर 'ता' पर यति है, जो अव्यय का एक भाग है।

इस प्रकार यति दोष मुख्यत दो प्रकार का होता है– पदमध्ययतिदोष तथा दूसरा सन्धिमध्ययतिदोष। पदमध्ययतिदोष तथा उसके भेदों का विवेचन किया जा चुका है। सन्धिमध्ययतिदोष वहाँ होता है, जहाँ सन्धियुक्त पद यति से पूर्वापर पद के वर्ण से आक्रान्त हो जाता है। ये यतिदोष महर्षि यास्क के मतानुसार वृत्तदोष से पृथक् नहीं होते, क्योकि वृत्त यत्त्यात्मक होते हैं।[1] वृत्त के स्वरूप से भिन्न होते हुए भी यति वृत्तान्तर्गत होने से वृत्त लक्षणो मे निबद्ध की जाती है।[2]

उपर्युक्त यतिदोषों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पादमध्यगत विराम लेते समय यदि छन्द अपनी स्वाभाविकता से रहित हो जाता है, तो वह विरामस्थल यतिदोष में बदल जायेगा। पादमध्यगत नियत स्थलों पर यति–ग्रहण बिलकुल आवश्यक है। यदि ऐसा न हुआ, तो छन्दोलय में कर्णकटुता आ पडेगी। अत यति के लिये नियत स्थलों के विषय में एक निश्चित सङ्केत प्राप्त होता है, जिसके अभाव में यतिभङ्ग दोष होने से छन्द की गति में व्यवधान उपस्थित होता है, यथा–

' यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचासि।'[3]

प्रकृत पङ्क्ति के चौदहवें वर्ण 'जयदेवस्य' पद के 'दे' पर यति से नियतस्थान के अभाव में छन्द की गति मे रुकावट होती है।

---

[1] न वृत्तदोषात्पृथग्यतिदोषो वृत्तस्य यत्यात्मकत्वादिति। – छन्द सूत्र, वैदिक भाष्य ६/१

[2] यतिश्चेय वृत्तस्वरूपद्भिन्नापि गुणालङ्काराद्यपेक्षया तदन्त।

– वही मूलत डॉ० रामकिशोर मिश्र द्वारा लिखित सस्कृत छन्दों का उद्भव एव विकास, पृ० ५५६ से उद्धृत

[3] गीतगोविन्द, सर्ग–१२ पद्य–४

यति नियमो की चर्चा करते हुए कहा गया है कि 'पूर्वान्तवत्स्वर सन्धौ क्वचिदेव परादिवत्' अर्थात् स्वरसन्धि मे जो पूर्व और पर दोनो के स्थान मे एकादेश होता है, वह पूर्वान्तवद् होता है और कभी परादिवत् होता है। पाणिनि का सूत्र 'अन्तादिवच्च' (६/१/१८५) भी यही कहता है। छन्दशास्त्र में व्यञ्जन का भी परादिवद्भाव देखा जाता है।

पूर्वान्तवद्भाव का उदाहरण –

'स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा'[1]

आलोच्य स्थल में 'नो' पर यति है। यहाँ अ + उ = ओ, यह एकादेश पूर्वान्तवत् कार्य करता है।

परादिवद्भाव का उदाहरण –

"अन्तेवासिदयालुरूज्झितनयेनासादितो जिष्णुना"[2]

इस शार्दूलविक्रीडित छन्द में बारहवें अक्षर 'ये पर यति है। नकारोत्तरवर्ती 'अकार' और 'आसादितो' का 'आ' इन दोनो के स्थान मे हुए एकादेश 'नासादितो' यह परादिवत् कार्य करता है।

व्यञ्जन का परादिवद्भाव –

"इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्त ययाचे"[3] इत्यादि स्थलों पर 'द' परादिवत् कार्य करता है।

'यणादेश परादिवत्' अर्थात् यणादेश परादिवत् होता है–

---

[1] पूर्वमेघ /५१

[2] वेणीसहार अङ्क–३, पद्य–६

[3] पूर्वमेघ /५

यथा— विततघनतुषारक्षोदशुभ्राशुपूर्वा—

स्वविरलपदमाला श्यामलामुल्लिखन्त ।

उपर्युक्त स्थल मे 'पूर्वासु' और 'अविरल' मे यणादेश होकर अगले पाद के आदि अच् 'स्व' परादिवत् हो जाता है। देखे एक और उदाहरण—

'सप्ताकूपारपारप्रथितपृथुयशस्यर्थिसार्थे कृतार्थे मालिनी छन्द के इस स्थल मे यशसि + अर्थिसार्थे = यशस्यर्थिसार्थे में यणादेश 'स्य' परादिवत् होता है।

नित्य प्राक्पद सम्बन्धश्चादय प्राक्पदान्तवत्— अर्थात् उनसे पूर्व यति नहीं की जानी चाहिये— यथा— 'स्वादु स्वच्छ च हिमसलिल प्रीतये कस्य न स्यात्'

यति के नियमों का निर्धारण अक्षर सख्या पर आश्रित रहता है। प्राय बडे—बडे छन्दो में वाणी द्वारा उच्चारण करने पर निश्चित रूप से रुक कर कुछ विश्राम देने की आवश्यकता होती है, यह विश्राम कितने—कितने अक्षरों के उच्चारण के बाद किया जाये, इसका निर्धारण आचार्यों ने उन—उन सख्याओ में विद्यमान प्रसिद्ध लौकिक पदार्थों के कथन द्वारा किया है और इसके समावेश से लक्षण बडा ही रोचक बन जाता है। छन्द के लक्षण मे यति—सूचक स्थानों के लिये लोकव्यवहार में प्रचलित सञ्ज्ञाओ का प्रयोग किया गया है। यह लोगों को अधिक सरलता से ग्राह्य बनाने के लिये तथा लक्षण को श्रुतिसुखद बनाने के लिये किया गया है, यथा—

मालिनी छन्द का लक्षण —"ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै" अर्थात् इस छन्द में भोगि (=८) तथा लोक (=७) अक्षरों पर यति होती है। छन्दों के लक्षण में प्रयुक्त लोक प्रचलित सञ्ज्ञायें इस प्रकार हैं—

सञ्ज्ञाये	सख्या	सञ्ज्ञायें	सख्या
आकाश –	०		
चन्द्रमा, पृथ्वी –	१	अश्व, मुनि स्वर, लोक –	७
बाहु, पक्ष नेत्र –	२	वसु, सिद्धि, याम –	८
गुण,राम,ताप,काल,अग्नि –	३	भक्ति, निधि, अक, ग्रह,	
वेद,वर्ण, फल, अवस्था,		द्रव्य –	९
युग, आश्रम, धाम, समुद्र–	४	दिशा, अवतार –	१०
शर,बाण,इन्द्रिय,भूत,तत्त्व–	५	रूद्र –	११
शास्त्र,राग,ऋतु,रस –	६	सूर्य, राशि, मास –	१२
		भुवन –	१४

उपर्युक्त सञ्ज्ञाओ के स्थान पर इनके पर्यायवाची शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

छन्दोविधान में यति की अनिवार्यता के सन्दर्भ मे छन्द शास्त्रीय आचार्यों में मतभेद हैं। इस विषय मे दो मत प्राप्त होते हैं–

१ यति–स्वीकारक मत।

२ यति–अस्वीकारक मत।

यति–स्वीकारक मत को मान्यता देने वाले आचार्यों में प्रमुख हैं– पिङ्गल, वशिष्ठ, कौण्डिन्य, कपिल तथा कम्बल मुनि तथा दूसरे मत के पोषक आचार्य हैं– भरत, कोहल, माण्डव्य, अश्वतर, सैतव आदि[1] इनमें से कई आचार्यों के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते।

आचार्य दण्डी यति को स्वीकार न करने वाले मत का विरोध करते हैं। उनका कथन है कि "श्लोको में नियत स्थान पर पदच्छेद 'यति' कही जाती है, उससे भिन्न यति–भ्रष्ट होना श्रुति–कटु होता है।[2]"

---

[1] वाञ्छन्ति यतिं पिङ्गल–वशिष्ठ–कौण्डिन्य–कपिल–कम्बलमुनय।
नेच्छन्ति भरत–कोहल–माण्डव्याश्वतर–सैतवाद्या केचित्।।
जयकीर्ति – छन्दोऽनुशासन अधिकार–प्रथम, पद्य–१३

[2] श्लोकेषु नियतस्थाने पदच्छेद यतिं विदु। – दण्डी –काव्यादर्श

वस्तुत यति के विषय मे यदि सूक्ष्मेक्षिका दृष्टि से विचार करें, तो छोटे–बड़े सभी छन्दो मे यति की स्वीकार्यता युक्तिसङ्गत प्रतीत होती है। बडे छन्दों में तो यह अनिवार्य है ही, छोटे छन्दों में भी यदि 'यति' को न स्वीकार करे तो छन्द की सुश्राव्यता भङ्ग हो सकती है, जो छन्द की उत्पत्ति का एक प्रमुख कारण है। छन्द की सस्वर एव सङ्गीतात्मक प्रस्तुति के लिये यति एक साधक तत्त्व है। हाँ, इतना अवश्य है कि छोटे छन्दो मे यति हमेशा पादान्त में ही होती है, पदमध्या नहीं। कतिपय आचार्य सुश्राव्यताधायक तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि जिस यति–निर्देश मे सुश्राव्यता हो, वही यति आदरणीय है।[1] यति के अनुसार किया गया पाठ श्रवणीयता के आधार पर तो प्रभावशाली होता ही है, साथ ही रचना का वाच्यार्थ समझने से पहले ही वर्ण्यविषय का भी बोध कराने लगता है। उदाहरण के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द का पाठ यदि यति के अनुसार करे तो सुनने वाले को यह आभास होने लगता है कि प्रसङ्ग वियोग शृङ्गार का है या करुण का। इसी प्रकार शार्दूलविक्रीडित छन्द वीररस का आभास कराने लगता है। हॉ, यति तभी श्रुतिसुखद होगी, जब यति का अन्त पद के मध्य मे न होकर पदान्त में हो। यदि यति पद के मध्य मे होती है तो सुनने मे विरसता आ जाती है, यथा–

'लभेत सिकतासुतैलमपि यत्नत पीडयन्'[2] प्रकृत पृथ्वी छन्द के पद्य में आठवें अक्षर पर यति है, किन्तु 'तै' पर पद समाप्त नहीं हुआ, जो सुनने में उद्वेग पैदा कर रहा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यति छन्द का एक अनिवार्य तत्त्व है, किन्तु वही यति श्रवणीयता के आधार पर खरी सिद्ध हो सकती है, जो यति नियमों के आधार पर की गयी हो और यही यति श्रुति सुखद भी होगी।

---

[1] एवं यथा यथोद्वेग सुधियो नोपजायते। तथा तथा मधुरतानिमित्त यतिरिष्यते।।

–छन्दोमञ्जरी १/१३ की टीका में उद्धृत देवेश्वरकृत कविकल्पलता का पद्य

[2] नीतिशतक /५

गति

'गति' सस्कृत–छन्दों का प्रमुख आधार है। 'गति' का अर्थ है– 'लय की गति । 'लय' का निर्माण पर्वों, लयाधारो से होता है और लयाधारो का निर्माण सार्थक ध्वनियो के नियमित सयोजन से होता है। शब्द सयोजन भेद से लय की गति परिवर्तित हो जाती है। लय की गति की महत्ता को प्रतिपादित करते हुये डॉ० श्याम गुप्त का कथन है कि "लय की गति शिथिल हो जाने पर छन्द में शिथिलता नामक दोष उत्पन्न हो जाता है।"[1] 'शय्या'[2] तथा 'शब्दपाक'[3] इसके अपर नाम है।

भारतीय काव्यशास्त्रीय आचार्यों मे वामन ने शब्दगुणों के अन्तर्गत 'समाधि और 'उदारता' गुणो का स्वरूप 'पाठ की लय' पर ही स्थिर किया है।[4] छन्द की निश्चित धारावाहिकता को गति कहते हैं। अन्य शब्दों में, आरोह–अवरोह के साथ धारावाहिक रूप से छन्द का पाठ किया जाना गति कहलाता है। 'समाधि' गुण मे आरोह–अवरोह या अवरोह–आरोह का क्रम रहता है, यथा–

'निरानन्द कौन्दे मधुनि परिभुक्तोज्झितरसे।'

इस स्थल में आरोह–अवरोह का क्रम है। अवरोह–आरोह का क्रम यथा–

'नरा शीलभ्रष्टा व्यसन इव मज्जन्ति तरव।'

'उदारता' गुण वहाँ माना जाता है, जहाँ पद नाचते से प्रतीत होते हैं, यथा–

स्वचरणविनिविष्टैर्नूपुरैर्नर्तकीनाम्।
झणिति रणितमासीत्तत्र चित्र कलञ्च।।

---

[1] डॉ० श्याम गुप्त –पत जी की छन्द योजना, पृ० ७५

[2] पदविनिमयाऽसहिष्णुत्वाद् बन्धस्य पदानुगुणरूपा शय्या।
या पदानामन्योन्यमैत्री शय्येति कथ्यते। – प्रताप रूद्रयशोभूषण पृ०–६७

[3] यत्पदानित्यजन्त्येव परिवृत्ति–सहिष्णुताम्।
त शब्दन्यासनिष्णाता शब्दपाक प्रचक्षते।। – काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति १/३/१५

[4] काव्यलाङ्कारसूत्रवृत्ति – आरोहावरोहक्रम ३/१/१३ तथा ३/१/२३

जब कोई पाठक छन्द का पाठ करता है, तो लय के साथ उसकी स्थिति प्रमुख रूप से दो प्रकार की होती है–

१ किसी छन्द को पढते समय पाठक को, चाहे वह इसका अर्थ न भी समझ रहा हो, कुछ ऐसा आभासित हो रहा होता है कि वह भी कोमल अथवा कठोर वर्ण्य विषय की मन्थर अथवा त्वरित गति के साथ बहा चला जा रहा है, यथा–

तालीषु तार विटपेषु मन्द्र शिलासु रुक्ष सलिलेषु चण्डम्।[1]
सङ्गीतवीणा इव ताड्यमानास्तालानुसारेण पतन्ति धारा।।

प्रकृत पद्य में शूद्रक ने जलधाराओं की उपमा सङ्गीत वीणा से दी है और इसका सयोजन इस रूप मे किया गया है कि पाठक इसे पढते ही बिना अर्थावबोध के ही सङ्गीतमयी गति मे लहराने लगता है।

अन्यत्र–

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिर्दष्ट्र–[2]
मुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र–
जृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम्।।

छन्द के प्रयोग की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि आलोच्य छन्द को पढते ही यह आभासित होने लगता है कि किसी कठोर एव दुर्धर्ष प्रसङ्ग की अभिव्यक्ति होने जा रही है। वेणीसहार एव मुद्राराक्षस आदि नाट्यकृतियों में इसी तरह के पद्य अनेकश देखने को मिलते हैं।

---

[1] मृच्छकटिकम् – अङ्क– ५ पद्य– २२

[2] उत्तररामचरितम् अङ्क–४ पद्य– २९

२ दूसरी स्थिति यह है कि पाठक जैसे–जैसे छन्द का पाठ करता जाता है, उसे अर्थावबोध होता जाता है और उसे पाठ की लय अर्थानुकूल प्रतीत होने लगती है, यथा–

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शर शरण्य ।[1]

जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारि ।।

प्रकृत छन्द का पाठ करते समय और साथ ही साथ अर्थावबोध हो चुकने के बाद तो विशेष रूप से पाठक को इस पद्य की लय से लगता है कि विवेकशील राजा मानो वध्य और अवध्य का विवेक कर रहा है और अपने सम्बन्ध में नितान्त विश्वस्त है कि गौ के लिये घातक यह जन्तु चाहे कितना भी भयकर क्यों न हो, मुझसे बच नहीं सकता। साथ ही, राजा के इस शौर्यकृत्य के प्रति पाठक को कोई चपलता नहीं होती और वह भी राजा दिलीप के साथ आश्वस्त भाव से इस घटना को देखने के लिये प्रस्तुत होता चलता है।

<u>दूसरा प्रसङ्ग</u>–

तारा रदाना वदनस्य चन्द्र रुचा कचाना च नभो जयन्तीम् ।[2]

आकण्ठमक्ष्णोर्द्वितय मधूनि महीभुज कस्य न भोजयन्तीम् ।।

इस छन्द को पढते समय, विशेषत अर्थावबोध हो चुकने के बाद छन्द की गति से ऐसा प्रतीत होता है कि राजाओं की तृप्ति के साथ–साथ पाठक की सहृदयता भी धीरे–धीरे तृप्त होती चली जा रही है।

उपर्युक्त सन्दर्भों के अनुशीलन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निश्चित रूप से काव्य मे छन्द के अनुरोध से एव तत्तद्पदावली के प्रयोग से पद्य में एक विशेष प्रकार की गति प्राप्त होती है। छन्द का पाठ करते समय प्रसङ्गानुरूप

---

[1] रघुवश सर्ग–२ पद्य –३०

[2] नैषधीयचरितम् सर्ग– १० पद्य–१०७

(वीर, करुण, शृङ्गार आदि को अभिव्यक्ति देने में समर्थ) वाणी अनायास या कहे कि स्वभावत निसृत होने लगती है। तभी तो 'चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात' आदि का पाठ करते समय 'वाणी की स्थिति' क्रोध को अभिव्यक्त करने लगती है और वस्तुत इसे ही गति कह सकते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि 'छन्द का पाठ करते समय गतिमयता के कारक कौन–कौन से तत्त्व हैं ? क्या छन्द की सम्बन्धित वर्ण–सख्या या छन्द का नाम इसका कारक हो सकता है? प्रश्न के उत्तर स्वरूप यह कहा जा सकता है कि छन्द के पाठ मे गतिमयता लाने मे न तो छन्द की वर्ण–सख्या और न ही छन्द का नाम कारक है, बल्कि इसके कारक हैं–प्रसङ्गानुसार वर्णों का प्रयोग, यति तथा गणो का विशिष्ट क्रम। छन्द की गतिमयता में जो सबसे अधिक उपकारक है, वह है– गणों का विशिष्ट क्रम, उदाहरण के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द को लें। इसका लक्षण है– "मन्दाक्रान्ता जलधिषड्गैर्म्भौ न तौ ताद् गुरू चेत् ।" यदि यहाँ 'मगण' के स्थान पर 'भगण' और 'भगण के स्थान पर 'मगण' कर दिया जाये तो वह गतिमयता नहीं आ पायेगी, जो मन्दक्रान्ता के वर्तमान स्वरूप मे आती है। गणों के पौर्वापर्य में व्यतिक्रम होने पर सङ्गीतमयी प्रस्तुति तो बाधित होगी ही, साथ ही छन्द का पाठ करते समय उच्चारण मे क्लिष्टता का भी अनुभव होगा। अत छन्द में गति लाने मे गणों के पौर्वापर्य का विशेष स्थान है।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त छन्दःशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दो के विश्लेषण के पश्चात् यह बात सिद्ध होती है कि वर्ण एव मात्रा, यति, गति, पाद तथा गण आदि के बिना छन्द की सिद्धि सम्भव नहीं है। यदि कवि को छन्द का एक भव्य भवन निर्मित करना है, तो छन्द के कारण सामग्रीभूत वर्ण एव मात्रा आदि का सहारा लेना ही होगा। छन्द के

सैद्धान्तिक विश्लेषण का नाम आते ही इन पारिभाषिक शब्दों की ओर अवश्य रूप से ध्यान जाता है, क्योकि छन्द का रूप ही वर्ण, मात्रा, पाद, गति, यति आदि सभी सघटक तत्वों के सम्मिलन होने पर सामने आता है। इनमें से कोई तत्त्व ऐसा नहीं है, जिसे छोड देने पर एक उत्कृष्ट छन्द की सिद्धि हो सके। हाँ, यदि यति' को छोड दें– जैसा कि कतिपय विद्वानो का विचार है– तो छन्द निर्मित तो हो जायेगा, किन्तु इससे छन्द का ही अपकर्ष होगा, क्योकि आरोह–अवरोह का साधक तत्त्व यति ही है और जिसके बिना छन्द मे गतिमयता, लयात्मकता तथा सुश्राव्यता का उच्छेद हो जायेगा। अत छन्द के सैद्धान्तिक विश्लेषण के प्रसङ्ग में इन पारिभाषिक तत्वो पर यथासम्भव शोधपरक प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय

छन्दों के भेद-प्रभेद

तृतीय अध्याय

छन्दों के भेद-प्रभेद

छन्द शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दो के विश्लेषण के पश्चात् छन्दो के भेद–निरूपण का प्रसङ्ग प्राप्त होता है, अत एव छन्दो का भेद विवेचन किया जा रहा है।

सर्वप्रथम वैदिक सस्कृत एव लौकिक सस्कृत मे रचना–वैशिष्ट्य की दृष्टि से छन्द के दो भेद होते हैं– वैदिक छन्द तथा लौकिक छन्द। यद्यपि वैदिक छन्द प्रकृत शोध की परिधि मे नहीं है, तथापि लौकिक छन्द की आधारभूमि होने के कारण वैदिक छन्द का सामान्य परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है। वैदिक वाङ्मय का अधिकॉश भाग छन्दोबद्ध है, यहाँ तक कि सम्पूर्ण ऋग्वेद छन्द में उपनिबद्ध है। छन्द की प्रधानता के कारण ब्राह्मणो तथा वेदाङ्गों में वैदिक मन्त्रों या स्वय वेद के लिए 'छन्दस्' शब्द का व्यवहार होने लगा, जैसा कि 'छन्द शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ' के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है।

वैदिक छन्दों में दो पाद से लेकर आठ पाद तक होते हैं। चूँकि छन्द अधिकतर चार पादो के हुआ करते हैं, इसलिये पाद शब्द मूलत चतुर्थांश के अर्थ में प्रयुक्त होता था। जैसा कि अमरकोश मे कहा गया है– 'पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशा'[1]। वैदिक छन्दो के पाद प्राय आठ, ग्यारह, या बारह अक्षरों के हुआ करते हैं। ऋग्वेद की जिन ऋचाओं में सभी पाद समान होते हैं, उनमें अक्षरों की सख्या प्राय २४ से ४८ तक होती है और ऐसे छन्दों में अक्षर सख्या उत्तरोत्तर चार–चार से बढती जाती है, परन्तु जिन छन्दो में अनेक प्रकार के पादों का मिश्रण हुआ करता है उन मिश्रित छन्दों में अक्षरों की सख्या २८ से

[1] काण्ड–३, वर्ग–३ पद्य–८६

लेकर ६२ तक होती है, किन्तु ऐसे छन्दों का प्रयोग विरल है। अधिकतर मन्त्रो की रचना सामान्य अर्थात् २४ से लेकर ४८ अक्षरों वाले छन्दों में ही मिलती है। ध्यातव्य है कि वैदिक छन्द अक्षरगणना तथा पादाक्षरगणना पर आश्रित होते हैं।

वेद मे प्रयुक्त एव उल्लिखित प्रमाणो के आधार पर छन्दों के भेद का निर्धारण करना अत्यन्त विषम प्रतीत होता है। कतिपय वैदिक छन्दों के लक्षण ग्रन्थो मे छन्दों के भेद विषयक विविध मत मिलते हैं। यद्यपि ऋक्–प्रातिशाख्य आदि कुछ लक्षणग्रन्थो में दर्जनों छन्दो के नाम गिनाये गये हैं, तथापि कात्यायनाचार्य चौदह छन्द स्वीकार करते हैं– १ गायत्री २ उष्णिक् ३ अनुष्टुप् ४ बृहती ५ पङ्क्ति ६ त्रिष्टुप् ७ जगती (इन्हे 'छन्द सप्तक' के नाम से जाना जाता है) ८ अतिजगती ६ शक्वरी १० अतिशक्वरी ११ अष्टि १२ अत्यष्टि १३ धृति तथा १४ अतिधृति। इसी विचारधारा के पोषक ऋग्भाष्यकार वेंकटमाधव का कथन है–

'चतुर्दशेत्थ कविभि पुराणैश्छन्दासि दृष्टानि समीरितानि।
इयन्ति दृष्टानि तु सहितायामन्यानि वेदेष्वपरेषु सन्ति।।

अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणिका तथा पिङ्गलकृत छन्द सूत्र आदि ग्रन्थों में इक्कीस छन्दो का उल्लेख है– पूर्वनिर्दिष्ट १४ छन्द, १५ कृति, १६ प्रकृति १७ आकृति १८ विकृति १६ सङ्कृति २० अभिकृति तथा २१ उत्कृति।

ऋक्प्रातिशाख्यकार ने गायत्री से पूर्ववर्ती पाँच छन्दों की और चर्चा की है– मा, प्रमा, प्रतिमा, उपमा तथा समा, जो चार अक्षर से प्रारम्भ होकर चार–चार अक्षरों से बढते हैं।

"मा प्रमा प्रतिमोपमा समा च चतुरक्षरात्।
चतुरुत्तरमुद्यन्ति पञ्चच्छन्दासि तानि ह।।"[1]

---

[1] ऋक्प्रातिशाख्य, १७/१६

इस प्रकार प्रमुख वैदिक छन्दो के लक्षण ग्रन्थ मे २६ छन्द प्राप्त होते हैं। इनमे प्रथम पाँच छन्दो मा, प्रमा आदि का व्यवहार नहीं होता। शेष इक्कीस ऋषिच्छन्दों के सात–सात छन्दों के तीन उपविभाग हैं। इन उपविभागों को 'छन्द सप्तक' नाम दिया गया है। प्रथम सप्तक में गायत्री से जगती तक, दूसरे सप्तक मे अति जगती से अतिधृति तक तथा तीसरे सप्तक मे कृति से उत्कृति तक सात छन्द आते हैं। इनमे गायत्र्यादि छन्द सप्तक ही प्रधान हैं, जिनमे अधिकाँश वैदिक मन्त्रो की रचना हुई है। गायत्र्यादि सात छन्दों में भी गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्दों का ही प्रयोग सबसे अधिक मिलता है। वास्तव मे गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती इन तीन छन्दों को ही वैदिक छन्दो का आधार माना जा सकता है, क्योकि अधिकतर छन्दो के पाद अष्टाक्षर एकादशाक्षर तथा द्वादशाक्षर वाले हैं। शौनक तथा कात्यायन प्रभृति आचार्य भी उक्त तीन पादो गायत्र, त्रैष्टुभ तथा जागत को ही सब वैदिक छन्दों का आधार मानते हैं। जिन छन्दों के पाद अष्टाक्षर हैं, उनका मूल या जाति गायत्री छन्द है, क्योकि गायत्री का एक पाद आठ अक्षरो का होता है। इसी प्रकार अन्य छन्दो के विषय में भी जानना चाहिये।

गायत्र्यादि छन्द सप्तक मे निम्नलिखित छन्दों का परिगणन होता है– १ गायत्री २ उष्णिक् ३ अनुष्टुप् ४ बृहती ५ पङ्क्ति ६ त्रिष्टुप् ७ जगती।[1] छन्दों के भेद–प्रभेदों का विवेचन करने वाले अनेक लक्षण ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के विषय में आगे चर्चा की जायगी। यहाँ ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार ही छन्द सप्तक का स्वरूप विवेचन किया जा रहा है–

१ <u>गायत्री</u> – गायत्री चौबीस अक्षरो की होती है। इसके आठ–आठ अक्षरों के तीन पाद होते हैं अथवा छ–छ अक्षरों के चार पाद हुआ करते हैं–

---

[1] ऋक्प्रातिशाख्य १७/२०

"गायत्री सा चतुर्विंशत्यक्षरा।

अष्टाक्षरास्त्रय· पादाश्चत्वारो वा षडक्षरा।।[1]

अष्टाक्षरा गायत्री का उदाहरण –

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्।।

षडक्षरा गायत्री –

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि।

आथर्वण स्तुहि देव सवितारम्।।

२ उष्णिक् – उष्णिक् छन्द अट्ठाइस अक्षरों का होता है। यह तीन पादों वाला होता है। प्रथम दो पाद आठ–आठ अक्षरो वाले तथा तृतीय बारह अक्षरो वाला होता है–

अष्टाविंशत्यक्षरोष्णिक् सा पादैर्वर्तते त्रिभि।

पूर्वावष्टाक्षरौ पादौ तृतीयो द्वादशाक्षर·।।[2]

उदाहरण –

अग्ने वाजस्य गोमत ईशान· सहसो यहो।

अस्मे धेहि जातवेदो महिश्रव।।

३ अनुष्टुप् – अनुष्टुप् छन्द ३२ अक्षरों का होता है। इसमें आठ–आठ अक्षरों के चार पाद हुआ करते हैं–

"द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप् चत्वारोऽष्टाक्षरा· समा·।"[3]

---

[1] ऋक्प्रातिशाख्य १६/१६

[2] ऋक्प्रातिशाख्य १६/२६

[3] ऋक्प्रातिशाख्य १६/३७

उदाहरण –

सहस्त्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम्।।

४ **बृहती** – चतुष्पादात्मक बृहती छन्द मे छत्तीस अक्षर हुआ करते हैं। तीन पादो मे आठ–आठ अक्षर तथा तृतीय पाद में बारह अक्षर हुआ करते हैं–

"चतुष्पदा तु बृहती प्राय षट्त्रिशदक्षरा।

अष्टाक्षरास्त्रय पादास्तृतीयो द्वादशाक्षरा।।[1]

उदाहरण –

मा चिदन्यद्विशसत सखायो मा रिषण्यत।

इन्द्रमित्स्तोता वृषण सचा सुते मुहुरुक्था च शसत।।

५ **पङ्क्ति** – पञ्चपादात्मक चालीस अक्षरों वाला छन्द पङ्क्ति है–

"पङ्क्तिरष्टाक्षरा पञ्च।"[2]

उदाहरण – इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभि।

तमिन्महत्त्वाजिषू तमर्भे हवामहे स वाजेषु प्रनोऽषिषत्

६ **त्रिष्टुप्** – यह चार पादों वाला छन्द है, जिसके पाद ग्यारह–ग्यारह अक्षर तथा कुल चौव्वालिस अक्षर हुआ करते हैं–

" चतुश्चत्वारिंशत् त्रिष्टुबक्षराणि चतुष्पदा एकादशाक्षरै पादै।।"[3]

उदाहरण –

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति य प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।

अमन्तवो मा त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिव ते वदामि।।

---

[1] ऋक्प्रातिशाख्य १६/३७

[2] ऋक्प्रातिशाख्य १६/४५

[3] ऋक्प्रातिशाख्य १६/६४

७ <u>जगती</u> – बारह–बारह अक्षरों वाले चार पादों से युक्त अडतालिस अक्षरो वाला छन्द जगती कहलाता है–

"पञ्चाशज्जगती द्व्यूना चत्वारो द्वादशाक्षरा ।"[1]

उदाहरण –

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षविरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।

अपामीवा बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति।।

उपर्युक्त छन्द सप्तक के भेद–प्रभेदो का भी उल्लेख वैदिक छन्दों का विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थो में समुलब्ध होता है। यहाँ शौनक कृत ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार गायत्र्यादि छन्द सप्तक के भेदोपभेदो की नामावली छन्द मे कुल अक्षरों की सख्या के साथ दी जा रही है। उल्लेख्य है कि इन भेदों में से कतिपय भेदो मे मूल गायत्री की अक्षर सख्या के बराबर अक्षर सख्या हुआ करती है और कुछ भेदो मे एक–दो अक्षर कम तथा किन्हीं–किन्हीं मे तो तीन अक्षर तक कम या अधिक हुआ करते हैं।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित है कि प्रत्येक मूल छन्द के भेदों में एक दो तथा तीन अक्षरो के कम या अधिक होने से यह कैसे जाना जा सकता है कि अमुक भेद अमुक छन्द का ही भेद है या यह कहें कि नामो में अनवस्था दोष प्रसक्त हो सकता है ? प्रश्न उठना स्वाभाविक है, किन्तु इसके उत्तर में केवल इतना कहा जा सकता है कि वैदिक छन्दःशास्त्रीय आचार्यों के कथनानुसार ही जानना चाहिए।

---

[1] ऋक्प्रातिशाख्य १६/७४

नामावली

गायत्री –

१ अतिनिचृद् गायत्री (६+६+७) = १६ अक्षर।

२ अतिनचृद् गायत्री (७+६+६) = २० अक्षर।

३ पादनिचृद् गायत्री (७+७+७) = २१ अक्षर।

४ पादनिचृद् वर्धमाना गायत्री (६+७+८) = २१ अक्षर।

५ वर्धमाना गायत्री (८+६+८) = २२ अक्षर।

६ द्विपदा गायत्री (१२+१२) = २४ अक्षर।

७ यवमध्या गायत्री (७+१०+७) = २४ अक्षर।

८ उष्णिग्गर्भा गायत्री (६+७+११) = २४ अक्षर।

६ पदपङ्क्ति गायत्री (४+६+५+५+५) = २५ अक्षर।

१० भूरिग्गायत्री (८+१०+७) = २५ अक्षर।

११ पादपङ्क्ति गायत्री (५+५+५+५+६) = २६ अक्षर।

१२ भूरिक्पदपङ्क्ति गायत्री (५+५+५+६+६) = २७ अक्षर।

उष्णिक् –

१३ ककुप्न्यङ्कुशिरानिचृदुष्णिक (११+१२+४) = २७ अक्षर।

१४ तनुशिरा उष्णिक् (११+११+६) = २८ अक्षर।

१५ पिपीलिकामध्योष्णिक् (११+६+११) = २८ अक्षर।

१६ अनुष्टुब्गर्भोष्णिक् (५+८+८+८) = २६ अक्षर।

अनुष्टुप् –

१७ विराड्नुष्टुप् (१०+१०+१०) = ३० अक्षर।

१८ काविरानुष्टुप् (६+६+१२) = ३० अक्षर।

१९ महापदपङ्क्तिरनुष्टुप् (५+५+५+५+५+६) = ३१ अक्षर।

२० नष्टरूपानुष्टुप् (९+१०+१३) = ३२ अक्षर।

बृहती –

२१ पिपीलिकामध्याबृहती (१३+८+१३) = ३४ अक्षर।

२२ विष्टारबृहती (८+१०+१०+८) = ३६ अक्षर।

२३ विषमपदाबृहती (९+८+११+८) = ३६ अक्षर।

पङ्क्ति –

२४ विराट्पङ्क्ति (१०+१०+१०+१०) = ४० अक्षर।

त्रिष्टुप् –

२५ विराट्स्थाना त्रिष्टुप् (९+९+१०+११) = ३९ अक्षर।

२६ विराट्स्थाना त्रिष्टुप् (९+१०+११+११) = ४१ अक्षर।

२७ विराट्स्थाना त्रिष्टुप् (१०+१०+९+११) = ४० अक्षर।

२८ विराट्पूर्वा त्रिष्टुप् (१०+१०+८+८+८) = ४४ अक्षर।

२९ पूर्वज्योतिषमती त्रिष्टुप् (८+१२+१२+१२) = ४४ अक्षर।

३० पश्चाज्ज्योतिषमती त्रिष्टुप् (१२+१२+१२+८) = ४४ अक्षर।

३१ पूर्वमध्या ज्योतिषमती त्रिष्टुप् (९+९+१०+११) = ३९ अक्षर।

३२ पश्चान्मध्या त्रिष्टुप् (१२+१२+८+१२) = ४४ अक्षर।

३३ यवमध्या त्रिष्टुप् (८+८+१२+८+८) = ४४ अक्षर।

३४ अभिसारिणी त्रिष्टुप् (१०+१०+१२+१२) = ४४ अक्षर।

३५ महापङ्क्ति त्रिष्टुप् (८+८+७+६+७+९) = ४५ अक्षर।

३६ उपजगती त्रिष्टुप् (१२+१२+११+११) = ४६ अक्षर।

जगती

३७ महापङ्क्ति जगती (८+८+८+८+८+८) = ४८ अक्षर।

३८ महासतोबृहती जगती (८+८+८+१२+१२) = ४८ अक्षर।

द्वितीय छन्द सप्तक –

१ अतिजगती (१२+१२+१२+८+८) = ५२ अक्षर।

२ शक्वरी (८+८+८+८+८+८+८) = ५६ अक्षर।

३ अतिशक्वरी (१६+१६+१२+८+८) = ६० अक्षर।

४ अष्टि (१६+१६+१६+८+८) = ६४ अक्षर।

५ अत्यष्टि (१२+१२+८+८+८+१२+८) = ६८ अक्षर।

६ धृति (१२+१२+८+८+८+१६+८) = ७२ अक्षर।

७ अतिधृति (१२+१२+८+८+८+१२+८+८) = ७६ अक्षर।

तृतीय सप्तक –

१ कृति = ८० अक्षर २ प्रकृति = ८४ अक्षर ३ आकृति = ८८ अक्षर

४ विकृति = ९२ अक्षर ५ सङ्कृति = ९६ अक्षर ६ अभिकृति = १०० अक्षर

७ उत्कृति = १०४ अक्षर।

इस प्रकार ऋक्प्रतिशाख्य के अनुसार छन्दोभेद निरूपण समाप्त हुआ।

वैदिक छन्दो के नामों की अर्थवत्ता –

आचार्य यास्क ने अपने 'निरुक्त' में गायत्र्यादि वैदिक छन्दों की अर्थवत्ता पर प्रकाश डाला है, जिसके आधार पर अधोलिखित विवेचन प्रस्तुत है–

गायत्री – स्तुति अर्थ वाली 'गै' धातु से 'गायत्री' शब्द की सिद्धि होती है। इस गायत्री छन्द के द्वारा देवताओ की स्तुति की गयी है। इसीलिए इसे गायत्री छन्द कहते हैं अथवा इस गायत्री शब्द के तीन पाद हैं। 'त्रि' शब्द तथा 'गमन' शब्द को

उलटा कर देने पर गायत्री शब्द की सिद्धि होती है। अथवा गाते हुए ब्रह्मा के मुख से निरुक्तकार आचार्य यास्क का कथन है–

'गायत्री गायते स्तुतिकर्मण । त्रिगमना वा विपरीता।

गायतो मुखादुद्पतत् इति च ब्राह्मणम्।'[1]

उष्णिक् – उष्णिक् छन्द में गायत्री छन्द की अपेक्षा चार अक्षर अधिक कहे गये हैं, इसीलिए इसको 'उष्णिक्' कहते हैं। अथवा इच्छार्थक ष्णिह् धातु से उष्णिक् शब्द की सिद्धि होती है। उष्णिक् छन्द देवताओं को अधिक प्रिय है। अथवा गायत्री छन्द की अपेक्षा उष्णिक् छन्द मे चार अक्षर अधिक होते हैं और ये चार अक्षर उष्णिक् छन्द के शिरोस्थानीय अर्थात् उष्णीष् (पगडी) के रूप मे माने जाते हैं। अत उष्णीष् की उपमा दी जाने के कारण इस छन्द को उष्णिक् की सञ्ज्ञा दी जाती है। आचार्य यास्क ने इसके नामकरण की सार्थकता इस प्रकार से सिद्ध की है–

'उष्णिगुत्स्नाता भवति। स्निह्यतेर्वा स्यात् कान्तिकर्मण। उष्णीषिणीतेत्यौपमिकम्। उष्णीष स्नायते ।'[2]

अनुष्टुप् – 'अनुष्टुप्' छन्द अनुकरण करने से बनता है, किन्तु यह अनुकरण किसका किया जाता है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा गया है कि तीन पादों वाले गायत्री छन्द का अनुकरण चतुर्थ पाद से करता है। अत इसका नाम अनुष्टुप् पडा–

'अनुष्टुबनुष्टोभनात्। गायत्रीमेव त्रिपदा सतीं चतुर्थेन पादेनानुष्टोभति'[3]

---

[1] निरुक्त ६/३

[2] वही

[3] वही

बृहती तथा पङ्क्ति – परिबृद्धि के कारण इसका नाम बृहती पड गया, क्योंकि बृहती छन्द में चार अक्षर अनुष्टप् छन्द से अधिक होते हैं– 'बृहती परिबर्हणात्।'[1] पाँच चरणों वाले छन्द को पङ्क्ति छन्द कहते हैं अर्थात् पाँच चरण होने के कारण इस छन्द को पङ्क्ति कहते हैं– 'पङ्क्ति पञ्चपदा।'[2]

त्रिष्टुप् – त्रिष्टुप् छन्द में 'स्तुभ' शब्द उत्तर भाग में पढा गया है, इसीलिए इस छन्द को त्रिष्टुप् कहा गया है। पूर्वभाग में त्रिशब्द कहाँ से आ गया ? इसके उत्तर मे कहा गया है कि यह त्रिष्टुप् छन्द छन्दों के पार गया है अर्थात् अन्य छन्दो से अधिक विस्तृत है, इसीलिए इसके पूर्वभाग में 'त्रि' जोड़ा गया है। अथवा 'त्रिवृत्त' नामक वज्र की तीन बार इस छन्द मे स्तुति की गयी है, इसीलिए इसको त्रिष्टुप् कहते हैं। आचार्य यास्क इसका व्याख्यान इस प्रकार करते हैं–

'त्रिष्टुप् स्तोभत्युत्तरपदा। का तु त्रिता स्यात्। तीर्णतम छन्द। त्रिवृद्वज्र। तस्य स्तोभतीति वा। यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभस्त्रिष्टुप्त्वम् इति विज्ञायते।'[3]

जगती – आगे गया हुआ अर्थात् सबसे अन्तिम छन्द होने के कारण इस छन्द का नाम जगती पड़ गया अथवा जल की तरङ्गों के समान इस छन्द का विस्तार किया गया है– 'जगती गततम छन्द। जलचरगतिर्वा।'[4]

वैदिक छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थ –

वैदिक छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थ निम्नलिखित हैं–

१ निदानसूत्र २ ऋक्प्रातिशाख्य तथा ३ कात्यायन की अनुक्रमणियाँ

---

[1] निरुक्त ७/३

[2] वही

[3] वही

[4] वही

३ **ऋक्सर्वानुक्रमणी** – आचार्य कात्यायन की अनुक्रमणियों में ऋक्सर्वानुक्रमणी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। यह सूत्रों में उपनिबद्ध है। इसमें पाणिनीय पदों की बहुलता है। इसलिये इसके रचयिता कात्यायन वर्तिकाचार्य कात्यायन से भिन्न ही हैं।[1] अधिसख्य विद्वान् पिङ्गल को पाणिनि का समकालिक अथवा उनका अनुज स्वीकार करते हैं।[2] इसलिये ऋक्सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन वार्तिककार कात्यायन से भिन्न होने के कारण पिङ्गल के पूर्वकालिक सिद्ध होते हैं। ऋक्सर्वानुक्रमणी में अडसठ छन्दो के भेदो का लक्षण प्राप्त होता है। इसमें कात्यायन ने प्रतिष्ठा, गायत्री आदि नौ छन्दो का लक्षण प्रस्तुत किया है। ये लक्षण पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते।

इनके अतिरिक्त आचार्य पिङ्गल का छन्दःसूत्र, उपनिदान सूत्र, जयदेवच्छन्दः, वृत्तमुक्तावली आदि भी वैदिक छन्दों को विवरण प्रस्तुत करते हैं, किन्तु वैदिक छन्दों का प्रधान रूप से विवेचन करने वाले उपर्युक्त तीन ही ग्रन्थ हैं।

उपर्युक्त वैदिक छन्दों के सामान्य परिचयात्मक स्वरूप का पर्यालोचन करने पर एक बात सामने आती है और वह यह कि लौकिक छन्दों के बीज वैदिक छन्द में ही निहित है। वैदिक छन्दो का स्वरूप अक्षरगणना पर निर्भर करता है। लौकिक छन्दों मे वार्णिक वृत्त भी अक्षर सख्या पर ही आधारित हुआ करते हैं। वैदिक छन्दो के अनुसार ही लौकिक छन्दों (वार्णिक) में कुल अक्षर सख्या चार–चार की सख्या से बढती जाती है। लघु–गुरु का सयोजन–लौकिक छन्दों के स्वरूप का प्राणतत्त्व – भी वैदिक छन्दों में देखने को मिलता है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम अनुष्टुप् छन्द को लेते हैं। ऋग्वेद के अन्तिम दशम मण्डल में जो अनुष्टुप् छन्द मिलता है, उसी

---

[1] बलदेव उपाध्याय – वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० ३५०–५१

[2] षड्गुरुशिष्यकृता पिङ्गल सूत्रटीका वेदार्थदीपिका ३/३३

३ **ऋक्सर्वानुक्रमणी** – आचार्य कात्यायन की अनुक्रमणियों में ऋक्सर्वानुक्रमणी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। यह सूत्रों में उपनिबद्ध है। इसमें पाणिनीय पदों की बहुलता है। इसलिये इसके रचयिता कात्यायन वर्तिकाचार्य कात्यायन से भिन्न ही हैं।[1] अधिसख्य विद्वान् पिङ्गल को पाणिनि का समकालिक अथवा उनका अनुज स्वीकार करते हैं।[2] इसलिये ऋक्सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन वार्तिककार कात्यायन से भिन्न होने के कारण पिङ्गल के पूर्वकालिक सिद्ध होते हैं। ऋक्सर्वानुक्रमणी मे अडसठ छन्दों के भेदो का लक्षण प्राप्त होता है। इसमें कात्यायन ने प्रतिष्ठा, गायत्री आदि नौ छन्दो का लक्षण प्रस्तुत किया है। ये लक्षण पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते।

इनके अतिरिक्त आचार्य पिङ्गल का छन्द‌सूत्र, उपनिदान सूत्र, जयदेवच्छन्द, वृत्तमुक्तावली आदि भी वैदिक छन्दो को विवरण प्रस्तुत करते हैं, किन्तु वैदिक छन्दों का प्रधान रूप से विवेचन करने वाले उपर्युक्त तीन ही ग्रन्थ हैं।

उपर्युक्त वैदिक छन्दों के सामान्य परिचयात्मक स्वरूप का पर्यालोचन करने पर एक बात सामने आती है और वह यह कि लौकिक छन्दो के बीज वैदिक छन्द में ही निहित है। वैदिक छन्दों का स्वरूप अक्षरगणना पर निर्भर करता है। लौकिक छन्दों मे वार्णिक वृत्त भी अक्षर सख्या पर ही आधारित हुआ करते हैं। वैदिक छन्दो के अनुसार ही लौकिक छन्दों (वार्णिक) में कुल अक्षर सख्या चार–चार की सख्या से बढ़ती जाती है। लघु–गुरु का सयोजन–लौकिक छन्दों के स्वरूप का प्राणतत्त्व – भी वैदिक छन्दों मे देखने को मिलता है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम अनुष्टुप् छन्द को लेते हैं। ऋग्वेद के अन्तिम दशम मण्डल में जो अनुष्टुप् छन्द मिलता है, उसी

---

[1] बलदेव उपाध्याय – वैदिक साहित्य और सस्कृति पृ० ३५०–५१

[2] षड्गुरुशिष्यकृता पिङ्गल सूत्रटीका वेदार्थदीपिका ३/३३

में एक विशेषता परिलक्षित होती है और वह यह कि अनुष्टुप् के प्रथम तथा तृतीय पाद का सप्तम अक्षर प्रायेण गुरु तथा अष्टम लघु और द्वितीय तथा चतुर्थ पाद में पञ्चम तथा सप्तम अक्षर लघु, षष्ठ तथा अष्टम अक्षर प्रायेण गुरु होते हैं, यथा–

त्य च्चिदश्व न वाजिनमरेणवो यमत्नत।

दृळह ग्रन्थि न विष्यतमत्रि यविष्ठमा रज ।।[1]

इसी प्रकार अग्रिम सूक्तो मे भी उपर्युक्त विशेषताओ से युक्त अनुष्टुप् दर्शनीय हैं। करूणार्द्रचेता महर्षि वाल्मीकि के मुख से सहसा प्रस्फुटित अनुष्टुप् छन्द इसी अनुष्टुप् छन्द का विकसित एव परिनिष्ठित रूप है, जिससे लौकिक छन्द की प्रतिष्ठापना हुई। इसके अतिरिक्त अन्यान्य छन्दों के आधार भी वैदिक छन्द ही हैं, जैसा कि द्वितीय अध्याय मे 'छन्द का उद्भव' शीर्षक के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है।

इस प्रकार हम स्पष्टत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक छन्द ही लौकिक छन्द के उपजीव्य या आधारभूमि हैं।

लौकिक छन्दों का विकास –

'कारणगुणा कार्यगुणानारभन्ते' कारण–कार्य के गुणों की व्याख्या करने वाली प्रकृत पङ्क्ति का सिद्धान्त छन्दों के विकास को भी इङ्गित करता है। दर्शन का यह स्पष्ट उद्घोष है कि कोई भी एक क्षण से अधिक अपने रूप में स्थिर नहीं रहता,[2] उसमें षड्विकारो के माध्यम से वृद्धि या क्षय अवश्य होता रहता है। छन्दो मे परिवर्तन भी निरन्तर होते रहते हैं। ऋग्वेद के बाद यजुर्वेद में छन्दों मे परिवर्तन दिखायी देता है। ब्राह्मण ग्रन्थो में अधिकतर यजुर्वेद के छन्दो का प्रयोग प्राप्त होता

---

[1] ऋग्वेद मण्डल–१० सूक्त–१४३ मन्त्र–२

[2] प्रवृत्ति खल्वपि नित्या। नहीह कश्चिदपि स्वस्मिन्नात्मनि मुहूर्तमप्यवतिष्ठते, वर्धते वा यावदनेन वर्धितव्यम्, अपायेन वा युज्यते पातञ्जल महाभाष्य ४/१/३

है। उपनिषत् काल में ऋग्वेदीय छन्दों का प्रयोग होने लगा था। ये छन्द इतने प्रसिद्ध हुए कि इनकी भाषा को भी लोग छन्दस् कहने लगे। वैदिक छन्द स्वच्छन्द गति से चलते थे, इसीलिये उन छन्दों में निबद्ध भाषा को महर्षि पाणिनि ने 'छन्दस् कहा। स्पष्ट है कि वैदिक भाषा अपने छन्दो के समान ही अनियमित व्याकरण आदि से अनिश्चित गतिविधि से स्वतन्त्र थी। उस पर किसी तरह का नियन्त्रण नहीं था इसीलिए उसे 'छन्दस्' नाम दिया गया।

वैदिक सस्कृत के अतिरिक्त जो छन्द लौकिक भाषा के व्यवहार मे आये, उन्हें लौकिक छन्द कहा गया। वैदिक छन्दो की स्वच्छन्द गति थी तथा लौकिक छन्दों की गति नियमाबद्ध है। अत एव यह कहा जा सकता है कि वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिक छन्द विशेष नियमों मे उपनिबद्ध हैं। वाल्मीकीय रामायण से पूर्व वैदिक साहित्य मे वैदिक छन्दों का प्रयोग होता था, किन्तु वैदिक ग्रन्थों के बाद रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों मे लौकिक छन्दों का प्रयोग मिलता है, जिनकी आधारभूमि वैदिक छन्द हैं (यह स्पष्ट किया जा चुका है) जो विभिन्न नियमित अक्षरों में विकसित होकर भास और कालिदास की रचनाओ से लेकर अद्यावधि काव्यो में अबाध रूप से प्रयुक्त हो रहे हैं।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगविक्लान्त महर्षि वाल्मीकि लौकिक छन्दों के प्रथम कवि माने जाते हैं। जब वैदिक छन्दों का प्रवाह अवरूद्ध होने लगा, तब प्रुमख वैदिक छन्द गायत्री का विकसित रूप अनुष्टुप् अधिक तेजी से आगे बढने लगा, जो ऋग्वेद के दशम मण्डल में प्रयुक्त अनुष्टुप् से उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ वाल्मीकीय रामायण में गोचर होता है और यही अनुष्टुप् लौकिक सस्कृत में अपरिवर्तित स्वरूप में प्रयुक्त हो रहा है। अत ऋग्वेद के बाद लौकिक सस्कृत में सर्वप्रथम छन्दस्कार के रूप मे

वाल्मीकि हमारे स्मृति पटल पर आते हैं, तथा छन्दों में अनुष्टुप् छन्द प्रथम छन्द के रूप मे नवीन अवतार लेता है।

वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के अतिरिक्त अति प्राचीन अन्य काव्य ग्रन्थों के प्राप्त न होने पर पिङ्गल आदि छन्द शास्त्रीय आचार्यों के लक्षण ग्रन्थो मे रामायण और महाभारत मे प्रयुक्त छन्दो के अतिरिक्त जिन छन्दो के लक्षण मिलते हैं, उनमे से अधिकाश छन्द कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष आदि महाकवियों की कृतियो मे प्रयुक्त हो चुके है।

प्रत्येक छन्दोलक्षण–ग्रन्थ मे छन्दो के निर्माण के लिये प्रस्तारादि प्रत्यय का वर्णन किया गया है, जिससे एकाक्षरा उक्ता नामक जाति से षड्विंशत्यक्षरा उत्कृति नामक जाति पर्यन्त एक–एक अक्षर की वृद्धि कर पूर्णपद्य में चार–चार अक्षरों की वृद्धि से तथा मगण आदि अष्टगणो तथा गुरु–लघु के क्रम को बदल देने से दूसरे स्वरूप वाले छन्द का रूप विकसित होता है। छन्दों के निर्माण का दिग्दर्शन कराते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि 'शालिनी' छन्द मे प्रारम्भिक चार वर्णों के बाद और अन्तिम सात वर्णों से पूर्व छ वर्ण (पॉच लघु तथा एक गुरु) जोड देने से मन्दाक्रान्ता का छन्द बन जाता है, इसी तरह उपेन्द्रवज्रा छन्द में ही अन्तिम वर्ण से पूर्व एक लघु वर्ण की योजना से वशस्थ का रूप विकसित होता है–

'मन्दाक्रान्ता भवेन्मध्ये शालिनी पूरिताक्षरा।

उपेन्द्रवज्र वशस्थ पर्यन्तैकाक्षराधिकम्।।'[1]

यदि इन्द्रवज्रा छन्द के लक्षण में प्रारम्भिक गुरु के स्थान पर 'लघु' रख दिया जाये, तो वह उपेन्द्रवज्रा का स्वरूप विकसित हो जाता है। एक उदाहरण और दिया जा रहा है–

---

[1] सुवृत्ततिलक विन्यास– द्वितीय पद्य–४४

जरलग

प्रमाणिका छन्द का स्वरूप – ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ

र ज ग ल

समानिका छन्द का स्वरूप – ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।

दोनों लक्षणो को देखने से यह ज्ञात होता है कि गण एव लघु–गुरु के व्यतिक्रम से छन्द के स्वरूप निर्मित हुए हैं।

उपर्युक्त विकास प्रक्रिया के पर्यालोचन से पता चलता है लौकिक छन्दो के विकास क्रम मे अक्षरो की वृद्धि के साथ–साथ गणो एव लघु–गुरु के व्यतिक्रम की प्रणाली प्रधान थी।

वैदिक छन्द की आधारभूमि में लौकिक छन्द का विस्तृत वितान पल्लवित हुआ। अन्य शब्दों मे, वैदिक छन्दों को ही आधार मानकर लौकिक छन्दों मे किन–किन रूपो का विकास हुआ, इसका विवेचन किया जा रहा है–

लौकिक छन्दो के भेद–विवेचन के सन्दर्भ मे हम विविध भेद विषयक विविध मतो की चर्चा करेगे–

कतिपय छन्द शास्त्रीय आचार्य छन्द को चतुर्धा विभक्त करते हैं– अक्षरच्छन्द, मात्राच्छन्द, अक्षरगणच्छन्द तथा मात्रागणच्छन्द। जहाँ पर मात्राओ के न्यूनातिरेक होने पर अक्षर का सख्यान हो, वहाँ अक्षरच्छन्द होता है, यथा–गायत्री, त्रिष्टुप्, आदि वैदिक छन्द इस श्रेणी में आते हैं। जहाँ अक्षरों के न्यूनातिरेक होने पर मात्राओं का सख्यान हो, वहॉ मात्राच्छन्द होता है, यथा–वैतालीय, औपच्छन्दसिक आदि। अक्षर गणच्छन्द वहाँ होता है, जिसमें अक्षरगणों का क्रमश लघु–गुरु आदि की व्यवस्था रहती है, यथा–इन्द्रवज्रा आदि। चतुर्थ भेद मात्रागणच्छन्द वह है, जहाँ मात्रागणों का क्रमश सन्निवेश हो, यथा–आर्या आदि।

दूसरा मत छन्द को तीन भागों में विभाजित करता है– वैदिक, लौकिक तथा उभयसाधारण। यह वैदिक सस्कृत तथा लौकिक सस्कृत के पद्यरचना–नियम के आधार पर किया जान पडता है।

तीसरा मत भी छन्द को त्रिधा विभक्त करता है। उनके अनुसार तीन भेद ये हैं– गणच्छन्द, मात्राच्छन्द तथा अक्षरच्छन्द।

चतुर्थ मत छन्द के दो भेद स्वीकार करता है– वर्ण वृत्त (वर्णच्छन्द) तथा जाति वृत्त (मात्राच्छन्द)

इस प्रकार छन्द के भेद विषयक मतो को देखने पर स्पष्ट होता है कि किन्हीं ने चार भेद माने तो किन्हीं ने तीन और कतिपय आचार्यों ने दो भेद स्वीकार किये हैं। इस विषय में आचार्य यज्ञेश्वर शर्मा का स्पष्ट विचार है कि छन्द के दो भेद हैं– वृत्त शब्द से व्यपदेश्य वर्णवृत्त तथा दूसरा जाति शब्द से व्यपदेश्य मात्रावृत्त।[1]

उपर्युक्त छन्दों के भेद–विषयक मत–मतान्तरो का विश्लेषण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि छन्द के वस्तुत दो ही भेद मानना युक्ति सङ्गत है– वर्णच्छन्द (वृत्त) तथा मात्राच्छन्द (जाति), क्योंकि वर्णच्छन्द मे ही गणच्छन्द, अक्षरच्छन्द एव अक्षरगणच्छन्द का समावेश हो जाता है, अत अन्य भेद अनावश्यक प्रतीत होते हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या 'छन्द' और 'वृत्त' एक दूसरे के पर्यायवाची हैं, जैसा कि छन्द के भेद प्रदर्शन में आचार्यों ने माना है ? उत्तर यह है कि 'छन्द' और 'वृत्त' एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं है, क्योंकि वृत्त छन्द का एक भाग है, न कि अपर नाम। इसे हम इस

---

[1] तदित्थ क्वचिद्विशेषमाश्रित्य त्रेधा चतुर्धा वा विभक्तानामप्येषा मात्रागणव्यवस्थानि बन्धनेषु गणवृत्तेषु वर्णव्यवस्थासमान्याद्वर्णवृत्तानतिरेक पश्यन्ति दीर्घदर्शिन। तथा च सिद्धम्– वृत्तशब्देन व्यपदेश्य वर्णवृत्तमेकम् जातिशब्देन व्यपदेश्य तु मात्रावृत्तमपरमितीत्थ द्वेधा पद्यच्छन्दो भवतीति।

– छन्दशास्त्र की भूमिका, पृ०–४८

तरह कह सकते हैं कि 'छन्द' एक वृक्ष है, तो 'वृत्त' उसकी एक शाखा। हाँ, इतना अवश्य है कि वर्णच्छन्द (वृत्त) सस्कृत महाकवियों में अत्यधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुआ, जिसकारण 'छत्रिन्यायेन' 'वृत्त' शब्द 'छन्द' का पर्याय कह दिया जाता है, वस्तुत है नहीं।

छन्द के प्रमुख दो भेद –

छन्द के प्रमुख दो ही भेद हैं– वृत्त छन्द (वार्णिक) तथा जाति छन्द (मात्रिक)।[1] जहाँ एक ओर वृत्त छन्द में वर्णों का नियमन होता है, वहीं मात्रिक छन्द मे मात्राओ का नियमन होता है। इन्द्रवज्रा आदि छन्द वृत्त छन्द या वार्णिक छन्द के अर्न्तगत आते हैं, क्योकि इनका स्वरूप लक्षण वर्णगणों के आधार पर किया जाता है, जबकि आर्यादि जाति छन्द या मात्रिक छन्द हैं, क्योंकि इनका स्वरूप लक्षण मात्रागणो के आधार पर किया जाता है। वृत्त में तीन वर्णों का गण होता है, जबकि जाति में चार मात्राओ का गण होता है, यथा–जगण (। ऽ ।) मे तीन वर्ण हैं, किन्तु मात्राये चार, क्योंकि गुरू की दो मात्रायें हुआ करती हैं। वृत्त में गुरु–लघु की व्यवस्था क्रमश नियत है, जबकि जाति में नियत नहीं। हाँ, अशत देखी जाती हैं।

वार्णिक छन्द तथा मात्रिक छन्द प्रत्येक के सम, अर्द्धसम तथा विषम भेद होते हैं। छन्द के भेद के प्रदर्शन में आचार्यों ने 'वृत्त' शब्द को छन्द सामान्य मानकर 'वृत्त' और 'जाति' दोनो का बोधक स्वीकार किया है। धरानन्द शास्त्री ने वृत्तरत्नाकर की एतत् सम्बन्धी व्याख्या में लिखा है कि –

"परमत्र समविषमभेदकरणे वृत्तशब्द छन्द सामान्यपर· न केवल वर्णवृत्तस्यैव समादयो भेदा भवन्ति, अपितु मात्रिकवृत्तानामपि।"[2]

---

[1] पद्य चतुष्पदी तच्च वृत्त जातिरिति द्विधा –छन्दोमञ्जरी ६/४

[2] वृत्तरत्नाकर प्रथम अध्याय पृ०–१५ मोतीलाल बनारसी दास

जिस छन्द के चारो चरण सामान्य लक्षण से युक्त होते हैं, उसे समछन्द कहते हैं, यथा – इन्द्रवज्रा आदि। अर्द्धसम छन्द वहाँ होता है, जिस छन्द में तीसरा चरण प्रथम चरण के समान तथा चतुर्थ चरण द्वितीय चरण के समान होता है तथा जिस छन्द के प्रत्येक चरण अलग अलग लक्षणों से युक्त हों, वे विषम छन्द कहलाते हैं।

छन्द के प्रमुख दो भेदों के विषय मे सामान्य जानकारी हो जाने के बाद अपेक्षित होने के कारण अलग–२ विवेचन किया जा रहा है–

जाति (मात्रिक) छन्द – आर्यादि के विविध रूप –

मात्रिक छन्द के तीन भेद हैं – सम, अर्द्धसम एव विषम। सममात्रिक छन्द का उदाहरण –

८ मात्रा र ल गु
। । ।ऽ।।। ऽ।ऽ।ऽ
स्थिरविलासनतमौक्तिकावली, कमलकोमलाङ्गी मृगेक्षणा।

हरति कस्य न कामिन सुरतकेलिकुशलाऽपरान्तिका।।

प्रकृत छन्द मात्रिक सम छन्द 'अपरान्तिका' का उदाहरण है, क्योकि इसके प्रत्येक चरण समान लक्षण से युक्त हैं। प्रत्येक चरण में सोलह–सोलह मात्रायें हैं तथा चतुर्थ एव पाँचवी मात्रा सयुक्त हैं । शायद इसी छन्द ने हिन्दी में आकर 'चौपाई' छन्द का रूप लिया होगा।

अर्द्धसम मात्रिक छन्द का उदाहरण –

६ मात्रा र ल गु ८ मात्रा र ल गु
।।ऽ।।ऽ।ऽ।ऽ। । ऽऽ।। ऽ।ऽ।ऽ
घुसृणेन मदेन चर्चित तव यन्निन्दति राधिके कुचम्।

मुदमातनुतेऽत्र पाकिन तद् वैतालीय फल हरे ।।

आलोच्य छन्द वैतालीय नामक अर्द्धसममात्रिक छन्द हैं, क्योंकि इसके विषम–विषम तथा सम–सम चरण समान हैं।

विषम मात्रिक छन्द –

विषम मात्रिक छन्द मे 'विषम सञ्ज्ञा अन्वर्थक है। यहाँ विषम का अर्थ – जो सम न हो। इसी कारण अर्द्धसम का भी निषेध हो जाता है, क्योंकि इसमे भी कुछ न कुछ समानता रहती ही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो सम और अर्द्धसम दोनो न हो, वह विषम है, यथा–आर्या छन्द।

आर्या छन्द के प्रथम और तृतीय चरण मे बारह–बारह मात्राये तथा द्वितीय चरण में अट्ठारह एव चतुर्थ चरण मे पन्द्रह मात्रायें हुआ करती हैं–

"यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।[1]
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

अत स्पष्ट है कि यह न तो सम है और न अर्द्धसम ही, क्योंकि विषम चरण तो समान हैं, किन्तु सम चरण समान नहीं है। इसलिये यह 'विषम' मात्रिक छन्द हुआ। प्रधान–आर्या के सभी रूप विषम मात्रिक छन्द के हैं।

मात्रा छन्दो मे सबसे प्रमुख छन्द है– आर्या। प्राकृत में भी एक ऐसा ही छन्द होता है, जिसका नाम गाथा है। कतिपय विद्वानो का कथन है कि 'गाथा' ही प्राचीन छन्द है और वही सस्कृत में आकर 'आर्या' के नाम से जाना गया। आर्या के सामान्य लक्षण[2] के विषय मे छन्द शास्त्रीय आचार्यों का कथन है कि यह आर्या वहाँ होती है, जिसके पूर्वार्द्ध – प्रथम एव द्वितीय चरण– में चतुर्मात्रिक सात गण और एक गुरू

---

[1] श्रुतबोध, पद्य–४

[2] पिङ्गल छन्द सूत्र 'अत्रायुङ् न ज् (४/१५) षष्ठो ज् (४/१६) न्लौ वा (४/१७) न्लौ चेत्पद द्वितीयादि (४/१८), सप्तम प्रथमादि (४/१६) अन्त्ये पञ्चम (४/२०), षष्ठश्च ल् (४/२१)

वर्ण होता है अर्थात (७ x ४ + २) = ३० मात्रायें होती हैं। इस आर्या के चार मात्रा वाले इन सात गणों के विषम गणों– प्रथम, तृतीय, पञ्चम एव सप्तम – में जगण (। ऽ ।) नहीं आना चाहिये।

१ यदि आर्या के पूर्वार्द्ध में छठें गण में चार लघु हो तो दूसरे लघु के पहले ही यति होगी अर्थात् पहले लघु के अन्त में यति युक्त पद होगा।

२ यदि सातवें गण में चार लघु वाला गण हो, तो प्रथम लघु के पहले अर्थात् छठें गण के अन्त में यति होगी।

३ चरम अर्द्ध (उत्तरार्द्ध) के पॉचवें गण की जगह चार लघु हो, तो वहाँ भी प्रथम लघु के पहले अर्थात् चतुर्थ गण के अन्त में यति होगी।

आर्या के पूर्वार्द्ध की तरह उत्तरार्द्ध में भी सात गण एव एक गुरू होता है। अन्तर केवल इतना है कि पूर्वार्द्ध में छठाँ गण चार मात्रा वाला (। ऽ । या ।।।।) होता है, वहीं उत्तरार्द्ध में केवल एक लघु वाला। अत उत्तरार्द्ध में तीन मात्रा कम होने के कारण २७ मात्राये ही हुआ करती हैं, यथा–

ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ । । । । । । । ऽ ऽ
वृन्दावने सलील वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनु यष्टि ।
ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । । ऽ ऽ ऽ
स्मेरमुखार्पितवेणु कृष्णो यदि मनसि क स्वर्ग ।।

प्रकृत स्थल मे आर्या के पूर्वोक्त सभी नियम घटित हो रहे हैं, अत यह आर्या छन्द है।

<u>आर्या के विविध रूप</u> – छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों मे आर्या के कितने रूप विकसित हुए, इस सम्बन्ध मे पिङ्गल कृत छन्द शास्त्र की हलायुध वृत्ति[1] में कहा गया है–

---

[1] पृष्ठ – ५१

"एकैव भवति पथ्या तिस्रो विपुलाश्चतस्र एव ता।
चपलाभेदैस्त्रिभिरपि भिन्ना इति षोडशार्या स्यु।।
गीतिचतुष्टयमित्थ प्रत्येक षोडशप्रकार स्यात्।
साकल्येनार्याणामशीतिरेव विकल्पा स्यु।।'

आर्या के मुख्यत नौ रूप होते हैं– पथ्या, विपुला, चपला, मुखचपला, जघनचपला, गीति, उपगीति, उद्‌गीति तथा आर्यागीति। छन्द'शास्त्रीय आचार्यों के विविध रूपों के प्रदर्शन में नवधा विभक्त आर्या को दो प्रकरणों में बाँटा गया है। प्रथम प्रकरण के अन्तर्गत प्रधान आर्या है, जिसमें पथ्या, विपुला तथा चपलात्रय का समावेश है, तथा दूसरा गीति प्रकरण है, जिसमें गीति, उपगीति, उद्‌गीति तथा आर्यागीति का सङ्कलन है।

प्रधान आर्या मे सर्वप्रथम पथ्या आर्या आती है। पथ्या वह आर्या है, जिसके दोनों दल अर्थात् पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में आरम्भ के तीन गणों के अन्त में एक पाद होता है[1] अर्थात् विषम चरण बारह–बारह मात्राओं वाले तथा द्वितीय चरण में अट्‌ठारह मात्राये तथा चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्राये हुआ करती हैं, क्योंकि आर्या के पूर्वार्द्ध में तीस मात्रायें तथा उत्तरार्द्ध में सत्ताइस मात्रायें होती हैं। आर्या सामान्य के लक्षण–परीक्षण में दिया गया उदाहरण ही इसका उदाहरण हो सकता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य उदाहरण–

SS ।S ।।।S SS ।। । ।S ।S ।SS
शुद्धान्तदुर्लभमिद रूप यदि वनवासिनो जनस्य।[2]
SS ।S । । ।SSS।। S ।।। SS
दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभि।।

---

[1] त्रिषु गणेषु पाद पथ्याद्ये च – पि० सू० ४/२२
[2] अभिज्ञानशाकुन्तलम् अङ्क–१, पद्य–१७

प्रकृत स्थल पथ्यार्या का है, क्योकि चतुर्मात्रिक तीन गणों के बाद दूसरा पाद शुरू होता है।

<u>विपुला</u> – विपुला आर्या वहाँ होती है, जहाँ दोनों दलों में प्रारम्भ के तीन गणों में ही पाद का विश्राम नहीं होता, अपितु लाँघकर अर्थात् आगे बढकर दूसरा पाद शुरू होता है।[1]

यहाँ यद्यपि पाद की समाप्ति के विषय मे कुछ भी नहीं कहा गया, किन्तु प्रत्यासत्तिवशात् चतुर्थ गण पर पाद की समाप्ति मानी जा सकती है। इसके बावजूद चतुर्थ गण के आदि में या अन्त मे या अन्यत्र कहाँ पर पाद की समाप्ति हो, यह प्रश्न ज्यों का त्यों बना ही रहता है। तात्पर्य यह है कि पथ्यार्या में तीन गणों पर पाद की समाप्ति होती है, इसमें ऐसा नहीं होना चाहिये। यथा–

SS S S S S | S | S S | | | | SSS
स्निग्धच्छाया लावण्यलेपिनी किञ्चिदवनतघ्राणा।
|| | | S SSS || S S S| SSS
मुखविपुला सौभाग्य लभते स्त्रीत्याह माण्डव्य ।।

आर्या के प्रकृत स्थल में पाद की समाप्ति तीसरे गण से आगे बढकर 'पि पर हुई है, अत यह विपुला आर्या है। विपुला का लक्षण पूर्वार्द्ध अर्थात् पहले घटित हुआ है, अत यह आदि विपुला या मुखविपुला है।

<u>चपला</u> – चपलार्या वह है, जिस आर्या छन्द के दोनों दलो (पूर्वार्द्ध एव उत्तरार्द्ध) में द्वितीय एव चतुर्थगण जगण के स्थल हो और वह जगण दो गुरुओं के मध्य में हो।[2] अन्य शब्दो में, हम यह कह सकते हैं कि चपला में प्रथम गण अन्त गुरु वाला,

---

[1] विपुलान्या, पि० सू० (४/२३)
[2] चपला द्वितीयचतुर्थौ ग्मध्ये जौ, (पि० सू० ४/२४)

द्वितीय जगण, तृतीय दो गुरु वाला, चतुर्थ जगण तथा पञ्चम आदि गुरु वाला गण होता है। इस छन्द में पाद की समाप्ति के लिए आर्या सामान्य का लक्षण लागू होता है।

यथा –

। । ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ
चपला न चेत् कदाचिन्नृणा भवेद्भक्तिभावना कृष्णे।
ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ
धर्मार्थकाममोक्षास्तदा करस्था न सन्देह ।।

आलोच्य छन्द मे द्वितीय तथा चतुर्थ गण दोनो दलों मे जगण के स्थल हैं तथा ये दो गुरुओं के मध्य मे भी है, अत· यह चपला आर्या हुई।

गीतिप्रकरण –

गीति – गीति प्रकरण में सर्वप्रथम गीति मात्रिक छन्द के स्वरूप विवेचन के सन्दर्भ मे आचार्यों का यह कथन है कि जिस मात्रिक छन्द के दोनों दल आर्या सामान्य के पूर्वार्द्ध के लक्षण से युक्त हों तथा यति की भी व्यवस्था ज्यो की त्यों हो, तो वह 'गीति' कहलाता है।[1] यथा –

। । ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ
मधुर वीणारणित पञ्चमसुभगश्च कोकिलालाप·।
ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ । । ऽ
गीति पौरवधूना सुप्त कुसुमायुध प्रबोधयति।।

इस छन्द के दोनों दल आर्या सामान्य के लक्षण से युक्त हैं। अत यह गीति नामक मात्रिक छन्द हुआ। इस छन्द के विषम–विषम तथा सम–सम चरण समान हैं अर्थात् प्रथम एव तृतीय चरण में बारह–बारह मात्राये तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण में अट्ठारह–अट्ठारह मात्राये हैं, अत यह अर्द्धसम मात्रिक छन्द भी है। दोनों दलों में

---

[1] आद्यर्द्धसमागीति – पि०सू० ४/२८

यति के स्थल समान होने के कारण श्रुतिसुखद होता है, इसीलिये आचार्यों ने इसे 'गीति' नाम दिया है। आजकल गेयता धर्म से युक्त होने वाले छन्द भी 'गीति' के नाम से जाने जाते हैं। हिन्दी के 'गीतिका' तथा 'हरिगीतिका' आदि छन्दों का नामकरण भी इसी कारण हुआ होगा।

उपगीति– आर्या सामान्य के उत्तरार्द्ध (अन्त्य दल) का लक्षण जिस छन्द के दोनो दलों में पाया जाता है, वह 'उपगीति' छन्द है[1], यथा–

IISISISS SS SS ISSS
नवगोपसुन्दरीणा रासोल्लासे मुरारातिम्।
S SIIIISS S IISSIS SS
अस्मारयदुपगीति स्वर्गकुरङ्गीदृशा गीते ।।

प्रकृत छन्द के दोनों दल आर्या सामान्य के उत्तरार्द्ध के लक्षण से युक्त हैं, अत यह उपगीति नामक आर्या हुई। यह अर्द्धसम मात्रिक छन्द है, क्योंकि विषम–विषम चरण बारह–बारह मात्राओं तथा सम–सम चरण पन्द्रह–पन्द्रह मात्राओं से युक्त हैं।

उद्गीति – उद्गीति नामक आर्या छन्द का निर्माण तब होता है, जब आर्या सामान्य का व्यतिक्रम हो जाता है, अर्थात् आर्या सामान्य का पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध बन जाय तथा उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध बन जाय या यह कहें कि आर्या सामान्य को जब उलट देतें हैं, तब 'उदगीति'[2] का रूप निर्मित हो जाता है, यथा–

SSISI SI ISSS SISS S
नारायणस्य सन्ततमुद्गीति सस्मृतिर्भक्त्या।
SSSSSSSI ISSISISIIS
अर्चायामासक्तिर्दुस्तरससारसागरे तरणि ।।

---

[1] अन्त्येनोपगीति पि०सू० ४/२६
[2] उत्क्रमेणोद्गीति पि०सू० ४/३०

प्रकृत स्थल आर्यासामान्य के लक्षण का व्यतिक्रम हो जाने के कारण 'उद्गीति' का है। यह छन्द भी आर्या सामान्य की तरह विषम मात्रिक छन्द है। दल परिवर्तन के कारण ही आर्या का यह स्वरूप विकसित हुआ।

आर्यागीति – जिस छन्द के पूर्वार्द्ध मे चतुर्मात्रिक आठ गण पूरे–पूरे बनें या यह कहे कि आर्या सामान्य के पूर्वार्द्ध मे एक गुरु और बढा दिया जाये तथा उत्तरार्द्ध वृद्धि सहित पूर्वार्द्ध का रूप ले ले तब वह 'आर्यागीति' छन्द का स्वरूप ले लेता है।[1] इसके पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में बत्तीस–बत्तीस मात्रायें होती हैं। यथा–

SSSI IIIS ISISS ISIS IISS
हर्षाश्रुस्तिमितदृश प्रमोदरोमाञ्चकञ्चुकाञ्चितदेहा।

SSSS SS SSS SISI IISSS
आर्यागीति भक्त्या गायन्ति श्रीपतेश्चरितसम्बद्धाम्।

इस छन्द के दोनो दलों में पूरे–पूरे आठ गण बन रहे हैं, अत यह आर्यागीति छन्द हुआ। यह अर्द्धसममात्रिक छन्द है।

आर्या के विविध रूपो का विवेचन –

आर्या के विविध रूपों के विवरण के सन्दर्भ में हमने देखा कि मात्रा–प्रस्तार की प्रक्रिया से गुजरते हुए विविध रूप विकसित होते हैं, जिनका विवेचन किया जा रहा है–

पथ्या एक ही प्रकार की होती है। महाकवियों ने प्राय इसी आर्या छन्द का प्रयोग किया है। दलों में लक्षण स्थिति के कारण 'विपुला' तीन प्रकार की होती है–

आदिविपुला – जिसके पूर्वार्द्ध में लक्षण घटित हो, वह आदिविपुला है। पहले होने के कारण इसे मुखविपुला भी कहा जाता है।

---

[1] अर्धेवसुगण आर्यागीति – पि०सू० ४/३१

अन्तविपुला – उत्तरार्द्ध में लक्षण स्थित होने पर अन्तविपुला होती है। इसे जघनविपुला भी कहते हैं, क्योंकि यह बाद में या अन्त में होती है।

उभयविपुला – जिस आर्या के दोनो दलों मे विपुला का लक्षण स्थित हो, वह उभयविपुला या महाविपुला आर्या कही जाती है। यहाँ तक प्रधान आर्या के चार भेद निर्धारित हुए।

इसके बाद विपुला की ही तरह चपला के भी तीन भेद होते हैं– मुख चपला, जघन चपला, तथा महाचपला। जिसके पूर्वार्द्ध में चपला होती है, वह मुख चपलार्या कही जाती है। जघन चपला वहाँ होती है, जहाँ आर्या के उत्तरार्द्ध में चपला का लक्षण स्थित हो। जब दोनों दलों में चपला का लक्षण स्थित हो, तो वह महाचपला आर्या होती है। पथ्यादि के साथ मिलकर चपला के बारह स्वरूप निर्मित होते हैं। इस प्रकार ४+१२ = १६ रूप प्रधान आर्या के विकसित होते हैं।

तत्पश्चात् गीति, उपगीति, उद्‌गीति तथा आर्यागीति इस गीति चतुष्टय आर्या के भी प्रधान आर्या के समान पथ्यादिक सोलह–सोलह रूप निर्मित होते हैं, अत गीत्यादि के कुल १६ X ४ = ६४ रूप होते हैं, तथा प्रधान आर्या के १६ रूप। इस प्रकार आर्या के कुल ६४ + १२ = ८० रूप विकसित होते हैं।

प्रश्न उठता है कि पथ्यादि को प्रधान आर्या क्यों कहा जाता है? इसका उत्तर इस रूप में दिया जा सकता है कि पथ्या, विपुला, चपला आदि का स्वरूप आर्या सामान्य के लक्षण में ही पाद एव मात्रा गणो की स्थिति से निर्मित होते हैं, जबकि गीतिचतुष्टय के स्वरूप के निर्माण मे या तो आर्या सामान्य का पूर्वार्द्ध ही दोनों दलों मे होता है या उत्तरार्द्ध ही या कहीं व्यक्तिक्रम हो जाता है। स्पष्ट है कि गीति चतुष्टय मे पूरा का पूरा आर्या सामान्य का लक्षण नहीं उपस्थित होता। यही कारण है कि पथ्यादि को प्रधान आर्या कहा जाता है।

आर्याओं के अतिरिक्त छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में दूसरे बहुत से मात्रिक छन्दो का विवेचन सोदाहरण किया गया है, जिनमें वैतालीय प्रकरण के अन्तर्गत वैतालीय, औपच्छन्दसिक, आपातलिका, दक्षिणान्तिका उदीच्यवृति, प्राच्यवृत्ति, प्रवृत्तक, अपरान्तिका, चारुहासिनी, मात्रिकसम प्रकरण मे अचलधृति, मात्रासमक, विश्लोक, वानवासिका, चित्रा, उपचित्रा पादाकुलक, द्विखण्डक छन्दों– जिनमे पादव्यवस्था नहीं होती, केवल दो दल या खण्ड ही होते हैं– के अर्न्तगत शिखा, खञ्जा, अनङ्गक्रीडा, अतिरुचिरा आदि छन्द प्रमुख हैं। मात्रिक छन्दों में ही वार्णिक वृत्तों मे आठवीं जाति के अनुष्टुप् जाति के छन्दो का भी उल्लेख है। मात्रिक छन्दों मे इसका उल्लेख यद्यपि कुछ अप्रासङ्गिक जैसा प्रतीत होता है, फिर भी वर्णवृत्तों की तरह वर्णों या गुरु, लघु का सयोजन नियत नहीं है।

उपर्युक्त मात्रिक छन्दों के भेद–प्रभेदों के विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है सस्कृत–छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लिखित मात्रिक छन्दो के तीन वर्ग सामने आते हैं– आर्या वर्ग, वैतालीय वर्ग तथा मात्रासमक वर्ग। इन्हे क्रमश विषम, अर्द्धसम एव सममात्रिक छन्द कहा जा सकता है।

आर्या वर्ग के छन्दो मे विशिष्ट गण–स्थानों को छोड़कर अन्य गण–स्थानों में कोई भी चतुर्मात्रिक गण–स्वरूप का प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् गण–योजना में लघु–गुरु क्रम का प्रतिबन्ध इन गणों में समान्यत नहीं रहता। मात्रिक छन्दों की मूलभूत इस स्वच्छन्दता और सुगमता के कारण आर्या छन्द को सस्कृत कवियों ने अपनी कृतियो में भूरिश प्रयोग किया है। सस्कृत लक्षण ग्रन्थों में विवेचित अर्द्धसम मात्रिक छन्दो मे वैतालीय प्रमुख है। यह मिश्रित प्रकृति का मत्रिक छन्द है, जिसमें अशत मात्राओं तथा अशत वार्णिक त्रिको को उपयोग होता है। इस छन्द के पाद के पूर्ववर्ती पादाश द्वारा यह ध्वनित होता है कि इस छन्द का मूल स्रोत लोक के बीच

ढूँढना उचित होगा, क्योकि इसका सम्बन्ध लोक सङ्गीत से कभी न कभी अवश्य रहा होगा। प्रारम्भिक अशो में द्वैमात्रिक इकाइयो की आवृत्ति द्वारा ताल का निर्माण होना इस बात को पुष्ट करता है। इसके नाम की अर्थवत्ता भी इस ओर सङ्केत करती है कि इस छन्द का सम्बन्ध ताल–सङ्गीत से मुक्त (वि + ताल) है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह छन्द कभी ताल–सङ्गीत से युक्त भी रहा होगा। मात्रासमक चतुष्पदी मात्रिक छन्द का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी सञ्ज्ञा अन्वर्थक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस छन्द की पङ्क्तियॉ मात्राओ की दृष्टि से समान है, वर्णों की दृष्टि से नहीं । मात्रासमक के प्रत्येक पाद में सोलह–सोलह मात्राये हुआ करती हैं, जो चार चतुर्मात्रिक इकाइयों के रूप में विभक्त होती है। अनुमान है कि इसी छन्द से हिन्दी का चौपाई छन्द विकसित हुआ होगा, यह बात इसके पहले स्पष्ट की जा चुकी है।

इनके अतिरिक्त आचार्य पिङ्गल, केदारभट्ट आदि आचार्यों मात्रिक अनुष्टुप् का भी विवेचन किया है, जिसके अन्तर्गत वक्त्र, पथ्यावक्त्र, विपरीतपथ्यावक्त्र, चपलावक्त्र, युग्मविपुला, विपुला, भविपुला, रविपुला, नविपुला, तविपुला आदि उपभेदों का वर्णन है। इनके लक्षण एव उदाहरण सम्बन्धित छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थो मे देखे जा सकते हैं। विपुलादि छन्द का प्रयोग श्रीमद्भगवद्गीता में अधिकाशत देखा जा सकता है।

उपर्युक्त मात्रिक छन्दों में आर्या प्रधान को छोडकर किसी भी छन्द का प्रयोग महाकवियों या सस्कृत–कवियों की कृति में देखने को नहीं मिलता, कहीं–कहीं पर मात्रासमक तथा गीति का प्रयोग देखने को मिलता है, किन्तु आचार्यों ने सभी छन्दों का लक्षण सोदाहरण स्पष्ट किया है। अत एव ये सभी छन्द केवल सैद्धान्तिक ही प्रतीत होते हैं।

वार्णिक छन्द की उद्भावना –

वैदिक छन्दों मे दो तत्त्व थे– उदात्तादि स्वरो के आरोह–अवरोह का नियमन तथा दूसरा केवल अक्षर सख्या की योजना। वर्णों के गुरु–लघु–स्वरूपो के सङ्गीतात्मक अन्तर का उपयोग वैदिक छन्दों में नहीं हुआ था। अनुमान है कि त्रिष्टुप् की पङ्क्ति को जगती की पङ्क्ति के रूप में परिवर्द्धित करने की प्रक्रिया मे इस गुरु–लघुमात्रा–सङ्गीत की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ होगा। जगती का पादगत अन्तिम अक्षर प्राय· लघु ही हुआ करता है, जबकि त्रिष्टुप् के बाद का अन्तिम अक्षर बहुधा गुरु होता है। जगती के पादान्त में लघु–गुरु के अन्तर की सङ्गीतात्मक चेतना के प्रभाववश बाद में त्रिष्टुप् और जगती के पादो के अन्तिम चार–पाँच अक्षरों वाले लघु–गुरु क्रम एक निश्चित स्वरूप में बदल गये होंगे। त्रिष्टुप् और जगती के पादान्त चार–पॉच अक्षरों का क्रमिक रूप निर्मित होता है – (। ऽ । ऽ) तथा (। ऽ । ऽ ।) । यही प्रवृत्ति गायत्री और अनुष्टुप् के विशिष्ट पादो में दिखायी देती है।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं–कहीं जो 'गाथायें' मिलती हैं, वे मुख्यत तीन छन्दो में उपलब्ध होती हैं– अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् और जगती। इनकी बनावट वार्णिक छन्दों जैसी है। ब्राह्मण ग्रन्थों की गाथाओं में गुरु–लघु का नियमन प्राय देखने को मिलता है। इसी प्रवृत्ति को लौकिक छन्दस्कारों ने स्वीकार किया, फिर भी त्रिष्टुप् और जगती वर्ग के प्रमुख छन्द इन्द्र और उपेन्द्रवज्रा तथा वशस्थ और इन्द्रवशा आदि छन्दयुग्मों में पादागत प्रथम वर्ण के गुरु–लघु रूप (ऽ) तथा (।) सम्बन्धी शिथिलता वैदिक छन्दों की स्वच्छन्दता का प्रतीक प्रतीत होती है, जिसे बाद में चलकर छन्दस्कारों ने 'उपजाति' नाम दिया, क्योकि इनके पृथक्–पृथक् स्वरूप पूरे वृत्त में नहीं घटित होते थे।

---

[1] एच०डी०वेलणकर जयदामन् भूमिका, पृष्ठ–६

इन्द्रवज्रा के आरम्भ मे गुरुवर्ण तथा उपेन्द्रवज्रा के प्रारम्भ मे लघु होता है। पाद मे शेष लघु–गुरु वर्णों का क्रम समान रहता है। महाकवि कालिदास आदि कवियो ने इनके मिश्रित रूप 'उपजाति' (इन्द्रमाला) को ही अपनाया है। वशस्थ और इन्द्रवशा के पादो मे अन्तर यह होता है कि वशस्थ के प्रारम्भ में लघु तथा इन्द्रवशा के प्रारम्भ गुरु वर्ण होता है। इन दोनो के मिश्रण को उपजाति के अतिरिक्त 'वशमाला' भी कहा जाता है।[1] जयकीर्ति ने उपजाति को जातिवाचक सञ्ज्ञा के रूप मे ही प्रयुक्त किया है।[2] बाद के छन्दःशास्त्रीय आचार्यों ने भी ऐसा ही किया है।[3]

अष्टाक्षरात्मक अनुष्टुप् पुराण तथा महाकाव्य आदि में बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ, जिस कारण यह लोकप्रिय हुआ और इसी लोकप्रियता के कारण अर्द्धनियमित रूप मे ही परिनिष्ठित हो गया। किन्तु अनुष्टुप् ने भी वैदिक स्वर–सङ्गीत को परित्याग कर एक नये सङ्गीत को अङ्गीकृत किया, जिसमें पादगत लघु–गुरु का विशिष्ट सयोजन था। इसी से तो भवभूति ने इसे छन्द के नवीन अवतार के रूप में माना है, जैसाकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। त्रिष्टुप्–जगती, जिसके पादान्त में चार–पॉच वर्णों का लघु–गुरु का क्रम व्यवस्थित हो चुका था, तथा पादारम्भ में स्वच्छन्दता बनी थी, अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय कवियों के हाथों पडने के कारण अपने इस अर्द्धानुशासित रूप को सुरक्षित न रख सके और शीघ्र ही लघु–गुरु–क्रम वाले नवीन सङ्गीत के आलोक में रूपान्तरित हुए अर्थात् पूरा पाद का पाद लघु–गुरु–क्रम से व्यवस्थित हो गया। इस प्रकार वार्णिक छन्दों की परम्परा प्रकाश मे आयी।

---

[1] जयकीर्ति छन्दोऽनुशासन २/११७

[2] एच०डी०वेलणकर जयदामन् भूमिका पृष्ठ–१४

[3] इत्थ किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम । केदारभट्ट, वृत्तरत्नाकर, ३/३२

वार्णिक (वृत्त) छन्द – इस प्रकार उद्भावित वार्णिक छन्द में वर्णों की नियत व्यवस्था से छन्दो का स्वरूप निर्धारित होता है। इसके स्वरूप–निर्धारण में अष्टविध वर्णगणो का प्रयोग किया जाता है। हाँ, कतिपय आचार्यों ने गणो का प्रयोग न कर गुरु–लघु का ही प्रयोग किया। यह भी तीन प्रकार का होता है– समवृत्त, अर्द्धसमवृत्त तथा विषम वृत्त। इनके लक्षण मात्रिक छन्दों के भेद के अन्तर्गत द्रष्टव्य हैं।

समवृत्त के भेदों का आधार पाद में अक्षरों की सख्या को माना गया है। अत· एकाक्षरात्मक पाद से छब्बीस अक्षरात्मक पाद पर्यन्त २६ भेद होते हैं,[1] जो इस प्रकार हैं–

१ उक्ता	२ अत्युक्ता	३ मध्या	४ प्रतिष्ठा	५ सुप्रतिष्ठा
६ गायत्री	७ उष्णिक्	८ अनुष्टुप्	९ बृहती	१० पङ्क्ति
११ त्रिष्टुप्	१२ जगती	१३ अतिजगती	१४ शक्वरी	१५ अतिशक्वरी
१६ अष्टि	१७ अत्यष्टि	१८ धृति	१९ अतिधृति	२० कृति
२१ प्रकृति	२२ आकृति	२३ विकृति	२४ सङ्कृति	२५ अतिकृति
२६ उत्कृति ।				

इन छन्दों को पाँच समूह में बाँट सकते हैं–

१ **अनादिष्ट छन्द** – उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा तथा सुप्रतिष्ठा।

२ **बृहच्छन्द** – गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, और जगती।

३ **अतिच्छन्द**–अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति और अतिधृति

४ **कृतिच्छन्द** – कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, सङ्कृति, अभिकृति तथा उत्कृति।

५ २६ अक्षर से बडे छन्दो को **'प्रचितिच्छन्द'** के अन्तर्गत रखा जाता है।

---

[1] आरभ्यैकाक्षरात्पादादेकैकाक्षरवर्द्धितै ।
पृथक्छन्दो भवेत्पादैर्यावत्षड्विंशतिं गतम् ।।
– वृत्तरत्नाकर १/१७

उपर्युक्त छन्द समूहों मे 'अनादिष्टच्छन्द' का 'गायत्री' जाति मे अन्तर्भाव हो जाता है। जैसाकि कहा गया है –

'उक्तादिपञ्चक कैश्चिद्‌गायत्रीत्येव कथ्यते।
यथा ह्यतिजगत्यादि त्वतिच्छन्द प्रवर्ण्यते।।'

ये छन्दों के सामान्य नाम हैं, इसीलिये इनकी सञ्ज्ञा 'जाति' है। ध्यातव्य है कि वैदिक छन्दों में गायत्री आदि छन्द–विशेष के बोधक थे, किन्तु लौकिक छन्द में आकर छन्द विशेष के द्योतक न होकर इन्होने 'छन्दोजाति' का रूप धारण कर लिया। यह 'छन्दोजाति' लौकिक छन्द का भेद 'जाति' (मात्रिक) से पूर्णत भिन्न है। यह वार्णिक छन्दों का ही सामान्य नाम है। इन्हीं के प्रस्तारगत भेद ही विशिष्ट वार्णिक छन्द हैं, जिसका विवेचन इसी अध्याय में प्रत्यय निरूपण के समय किया जायेगा।

इन छन्दोजातियों में पाद में स्थित एक–एक अक्षरों की वृद्धि से छन्द की अगली जाति बनती चली जाती है। इस प्रकार पूरे छन्द में चार–चार अक्षरों की वृद्धि होती जाती है। छब्बीस अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले छन्द को 'दण्डक' के नाम से जाना जाता है। ऐसे छन्दों को 'दण्डक इसलिये कहा जाता है कि इनके चरण इतने लम्बे होते हैं कि पाठ करने में पाठक की साँस फूल जाती है और यही साँस फूलना ही दण्ड है। दण्ड के समान लम्बे होने के कारण भी इन्हे दण्डक कहा जाता है।

प्रस्तार आदि गणितीय दृष्टि से छन्दों के उपर्युक्त भेद के विविध रूप निष्पन्न या निर्मित होते हैं। यह भेद एक निश्चित अक्षर सख्या में ही गुरु–लघु के क्रम परिवर्तन से निर्मित होते हैं। इसी सन्दर्भ में छन्दों के 'प्रत्यय' के विषय भी ज्ञातव्य है। वस्तुत छन्दों की सख्यादि की प्रतीति होने के कारण इसे 'प्रत्यय' कहा जाता है अथवा 'प्रत्यय' का अर्थ विश्वास होता है। अत विश्वासयुक्त होने के कारण इन्हें

'प्रत्यय' कहा जाता है। सम्भावित वृत्तों पर इनसे विश्वास उत्पन्न होता है। अत प्रत्यय का लक्षण यह हो सकता है– जिसके द्वारा वृत्त की प्रतीति होती है, उसे प्रत्यय कहते हैं। अथवा जिनके द्वारा सम्भावित वृत्तों की सख्या पर विश्वास हो जाता है, उन्हें प्रत्यय कहते हैं। इनकी सख्या छ है, जिन्हें 'षड्प्रत्यय' कहते हैं– प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्वयादिलगक्रिया, सख्यान और अध्वयोग।[1] इनका क्रमश विवेचन नीचे दिया जा रहा है–

१ <u>प्रस्तार</u> – छन्दों के कितने रूप हो सकते हैं? इसकी व्यपेक्षा होने पर हम प्रस्तार के माध्यम से इसे जान सकते हैं। 'प्रस्तार' का अर्थ है– "प्रस्तरण वितानन लक्षणमङ्कसख्येत्यर्थ" अर्थात् फैलाना, लक्षित करना तथा अङ्क सख्या बतलाने का नाम 'प्रस्तार' है।[2] प्रस्तार के माध्यम से छन्दों के विविध रूप जानने के प्रस्तार की विधि यह है कि सर्वप्रथम अभीष्ट छन्द में जितने वर्ण हो, उतने गुरु लिख लेना चाहिये। यही छन्द का प्रथम रूप होगा। उसके बाद पहली पङ्क्ति के पहले गुरू के नीचे अगली पङ्क्ति मे लघु लिखते हैं, तत्पश्चात् शेष वर्ण को ज्यों का त्यों उतार देते हैं। यह प्रक्रिया तब तक करते जाते हैं जब तक सर्वलघु न हो जाये और यही अन्तिम भेद होगा। हाँ, प्रथम गुरु के नीचे लघु लिखने के बाद बायीं ओर जितने भी वर्ण बचते हैं उनके स्थान पर गुरु रखते चले जाते हैं।[3] प्रकृत विधि के आधार पर षडक्षरा गायत्री जाति के प्रस्तारगत रूपो को तालिका के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं–

---

[1] प्रस्तारो नष्टमुद्दिष्टमेकद्वयादिलगक्रिया।
सख्यानमध्वयोगश्च षडेते प्रत्यया स्मृता ।।
– वृत्तरत्नाकर ६/१

[2] अभिनवभारती १४/११३

[3] पिङ्गलकृत छन्दशास्त्र – द्विकौ ग्लौ ८/२० मिश्रौ च ८/२१ पृथग्ला मिश्रा ८/२२

उदाहरण के लिये छठीं जाति षड्क्षरा गायत्री के विविध रूप जानना हो, तो सर्वप्रथम छ गुरु रख देते हैं–

१ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	२३ ऽ । । ऽ । ऽ	४५ ऽ ऽ । । ऽ ।
२ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	२४ । । । ऽ । ऽ	४६ । ऽ । । ऽ ।
३ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ	२५ ऽ ऽ ऽ । । ऽ	४७ ऽ । । । ऽ ।
४ । । ऽ ऽ ऽ ऽ	२६ । ऽ ऽ । । ऽ	४८ । । । । ऽ ।
५ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ	२७ ऽ । ऽ । । ऽ	४९ ऽ ऽ ऽ ऽ । ।
६ । ऽ । ऽ ऽ ऽ	२८ । । ऽ । । ऽ	५० । ऽ ऽ ऽ । ।
७ ऽ । । ऽ ऽ ऽ	२९ ऽ ऽ । । । ऽ	५१ ऽ । ऽ ऽ । ।
८ । । । ऽ ऽ ऽ	३० । ऽ । । । ऽ	५२ । । ऽ ऽ । ।
९ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ	३१ ऽ । । । । ऽ	५३ ऽ ऽ । ऽ । ।
१० । ऽ ऽ । ऽ ऽ	३२ । । । । । ऽ	५४ । ऽ । ऽ । ।
११ ऽ । ऽ । ऽ ऽ	३३ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ।	५५ ऽ । । ऽ । ।
१२ । । ऽ । ऽ ऽ	३४ । ऽ ऽ ऽ ऽ ।	५६ । । । ऽ । ।
१३ ऽ ऽ । । ऽ ऽ	३५ ऽ । ऽ ऽ ऽ ।	५७ ऽ ऽ ऽ । । ।
१४ । ऽ । । ऽ ऽ	३६ । । ऽ ऽ ऽ ।	५८ । ऽ ऽ । । ।
१५ ऽ । । । ऽ ऽ	३७ ऽ ऽ । ऽ ऽ ।	५९ ऽ । ऽ । । ।
१६ । । । । ऽ ऽ	३८ । ऽ । ऽ ऽ ।	६० । । ऽ । । ।
१७ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ	३९ ऽ । । ऽ ऽ ।	६१ ऽ ऽ । । । ।
१८ । ऽ ऽ ऽ । ऽ	४० । । । ऽ ऽ ।	६२ । ऽ । । । ।
१९ ऽ । ऽ ऽ । ऽ	४१ ऽ ऽ ऽ । ऽ ।	६३ ऽ । । । । ।
२० । । ऽ ऽ । ऽ	४२ । ऽ ऽ । ऽ ।	६४ । । । । । ।
२१ ऽ ऽ । ऽ । ऽ	४३ ऽ । ऽ । ऽ ।	
२२ । ऽ । ऽ । ऽ	४४ । । ऽ । ऽ ।	

प्रकृत प्रस्तार–विधि की प्रक्रिया के माध्यम से हमने देखा कि षड्क्षरा गायत्री के चौंसठ रूप हो सकते हैं। छन्दों के रूप जानने की यह विधि गणितीय दृष्टि से कितनी वैज्ञानिक है। सर्वगुरु से लेकर सर्वलघु तक ६४ रूप बन सकते हैं, न कम न अधिक। यदि सभी छन्दों के रूपों की सख्या प्रस्तार के माध्यम से जानें तो देखते हैं कि अमुक छन्द के रूप अपने ठीक पूर्व के छन्द के रूपों के दुगुने होते जाते हैं, यथा–षड्क्षरा गायत्री जाति के ६४ रूप हैं, तो सप्ताक्षरा उष्णिक् जाति के १२८ रूप होगें। आचार्य भरत ने

षडक्षरा गायत्री छन्द से लेकर २६ अक्षरों वाले 'उत्कृति' तक समस्त छन्दों के रूपों की सख्या बतायी है।[1]

समवृत्त के भेदों एव उसके रूपों को हम सुविधानुसार एक तालिका से समझ सकते हैं–

क्र स	जाति नाम	अक्षर सख्या	जातिरूपो की सख्या	सम्पूर्ण अक्षर सख्या
१	उक्ता	१	२	४
२	अत्युक्ता	२	४	८
३	मध्या	३	८	१२
४	प्रतिष्ठा	४	१६	१६
५	सुप्रतिष्ठा	५	३२	२०
६	गायत्री	६	६४	२४
७	उष्णिक्	७	१२८	२८
८	अनष्टुप्	८	२५६	३२
९	बृहती	९	५१२	३६
१०	पङ्क्ति	१०	१०२४	४०
११	त्रिष्टुप्	११	२०४८	४४
१२	जगती	१२	४०९६	४८
१३	अति जगती	१३	८१९२	५२
१४	शक्वरी	१४	१६३८४	५६
१५	अतिशक्वरी	१५	३२७६८	६०
१६	अष्टि	१६	६५५३६	६४
१७	अत्यष्टि	१७	१३१०७२	६८
१८	धृति	१८	२६२१४४	७२
१९	अति धृति	१९	५२४२८८	७६
२०	कृति	२०	१०४८५७६	८०
२१	प्रकृति	२१	२०९७१५२	८४
२२	आकृति	२२	४१९४३०४	८८
२३	विकृति	२३	८३८८६०८	९२
२४	सङ्कृति	२४	१६७७७२१६	९६
२५	अतिकृति	२५	३३५५४४३२	१००
२६	उत्कृति	२६	६७१०८८६४	१०४

[1] नाट्यशास्त्र, १५/५२–७८

वार्णिक छन्दो के प्रस्तारगत भेदों की इस तालिका को बनाने की विधि यह है कि यदि छन्द एक अक्षर का है, तो या तो हम उस एक अक्षर को लघु मानें या गुरु। इस प्रकार एक अक्षर के छन्द के दो स्वरूप हुए। इसी प्रकार २, ३, ४, ५ आदि अक्षरों वाले छन्दो के कितने भेद या स्वरूप हो सकते हैं, इसे जानने के लिये अभिनव गुप्त का कथन है कि –

एकादिक्रमवशाद् द्विगुण सुपिण्ड्यच्छन्द· प्रमाणकलितानथपिण्डयेत् तान्।

एक क्षिपेत् तदुपरीति समस्तवृत्तसख्याप्रकाशनविधौ लघुरभ्युपाय ।[1]

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। छन्द के इन विविध प्रस्तारों को यदि हम सङ्गणक यन्त्र अर्थात् कम्प्यूटर में सङ्गणित कर देखें तो निश्चित रूप से ये सारे भेद–प्रभेद प्रदर्शित हो सकते हैं। छन्दो के प्रस्तार की प्रक्रिया निश्चित रूप से वैज्ञानिक विधि पर अवलम्बित है। छन्दों की इस प्रस्तारगत भेदों का कम्प्यूटरीकरण (सङ्गणकयन्त्रीकरण) निश्चित रूप से इस दिशा मे एक नया कदम होगा।

२ <u>नष्ट</u> – नष्ट का अर्थ है– "नष्टमिति स्वरूपेणैव न ज्ञात सख्यया तु ज्ञातम्"[2] अर्थात् जिस जाति की सख्या ज्ञात है, किन्तु स्वरूप अज्ञात है, उसे 'नष्ट' कहते हैं। अन्य शब्दों में, किसी भी वृत्त का स्वरूप बिना प्रस्तारगत प्रक्रिया के ही ज्ञात करना है, तो उसे ज्ञात करने की विधि ही 'नष्ट' कहलाती है। नष्ट की प्रक्रिया से बिना प्रस्तार रचना के किसी भी छन्द के इष्ट रूप का ज्ञान सरलता से हो जाता है। यदि हम किसी जाति के किसी भेद या स्वरूप को जानना चाहे, तो प्रस्तार रचना के द्वारा एक तो समय अधिक लगेगा तथा स्थान भी। जैसे षडक्षरा गायत्री जाति के बासठवें रूप का ज्ञान करते हुए बहुत समय लग जायेगा, किन्तु 'नष्ट' की प्रक्रिया द्वारा

---

[1] नाट्यशास्त्र अभिनवभारती, १४

[2] अभिनवभारती, १४/११३

अपेक्षाकृत अत्यन्त कम समय मे बताया जा सकता है। नष्ट की प्रक्रिया जानने की विधि इस प्रकार है–

जिस क्रमाङ्क के वृत्त का स्वरूप जानना हो, तो सर्वप्रथम उस क्रमाङ्क को देखते हैं कि वह 'सम है या 'विषम' यदि सम हो तो प्रथम अक्षर लघु लिखते हैं और यदि विषम है तो प्रथम अक्षर गुरु लिखते हैं। द्वितीय अक्षर का स्वरूप जानने के लिये इष्ट वृत्त की सख्या को आधा करते हैं और यदि बराबर–बराबर भाग नहीं जा सकता, तो एक जोड़कर आधा करते हैं। इसे गणितीय रूप मे इस प्रकार लिख सकते हैं–

५ + १ = ६ – २ = ३ + १ = ४ – २ = २

अब यदि आधा किया गया भाग सम हो तो द्वितीय अक्षर को लघु और यदि विषम हो तो गुरु लिखते हैं। इस प्रकार यह प्रक्रिया तब तक करते जाते हैं, जब तक अपेक्षित वृत्त की सख्या पूर्ण न हो जाये।[1] हम उदाहरण के माध्यम से इसे स्पष्ट कर सकते हैं–

उदाहरणार्थ – षडक्षरा गायत्री जाति का बासठवाँ भेद क्या होगा ? हमें यह जानना है। यह सम होने के कारण सबसे पहले लघु, फिर आधा करने पर विषम सख्या मिलती है, अतएव द्वितीय अक्षर गुरु तत्पश्चात् एक सख्या मिलाकर आधा करने पर सम सख्या प्राप्त होती है, अत तीसरा अक्षर लघु। इसी प्रकार शेष आगे सम सख्या मिलने के कारण शेष तीनो अक्षर लघु होगे। इस प्रकार पूरी प्रक्रिया के बाद बासठवाँ रूप प्राप्त हुआ– "। ऽ । । । ।" यही इष्टभेद होगा।

यहाँ ध्यातव्य है कि एक की सख्या आ जाने पर एक में एक जोड़कर दो आयेगा और दो का आधार करने पर एक ही आता रहेगा, जिसके लिए गुरु ही रखा

---

[1] पिङ्गलकृत छन्द शास्त्र लर्द्धे ८/२४, सैके गृ ८/२५

जायेगा। अत जब आधा करते–करते एक आ जाये, तो उसके आगे के सारे अपेक्षित अक्षर गुरु ही होगे।

३ <u>उदि्दष्ट</u> – 'उदि्दष्ट' का अर्थ है – "उदि्दष्ट तु स्वरूपेण ज्ञात न सख्यया"[1] अर्थात् जिस वृत्त का स्वरूप ज्ञात है किन्तु सख्या का ज्ञान नहीं है, वह उदि्दष्ट है तथा 'उदि्दष्ट जानने की विधि 'उदि्दष्टविधि कहलाती है। उदि्दष्ट के सम्बन्ध में यह भी जानना आवश्यक है कि जहाँ इसके लिए उदि्दष्ट रूप का ज्ञान होता है, वहीं नष्ट के द्वारा सिद्ध किये गये रूप की शुद्धता का निर्णय भी होता है।

उदि्दष्टविधि इस प्रकार है–

सर्वप्रथम जिस वृत्त की सख्या जानना हो, उस वृत्त का स्वरूप लिखते हैं। तत्पश्चात् प्रथम अक्षर से लेकर अन्तिम अक्षर तक ऊपर–ऊपर क्रमश एक से लेकर दुगुनी सख्या लिखते चले जाते हैं। तदनन्तर लघु अक्षरो के ऊपर के अङ्कों को जोड लेते हैं और प्राप्त योग में एक जोड़ देते हैं, फलस्वरूप प्राप्त सख्या ही उदि्दष्ट सख्या होगी।[2]

उदाहरणार्थ– षडक्षरा गायत्री जाति के इस वृत्त के स्वरूप '। ऽ।।।।' की सख्या जाननी हो, तो उदि्दष्ट विधि को अपनाते हुए इस प्रकार लिखते हैं–

१ २ ४ ८ १६ ३२
। ऽ । । । ।

लघु अक्षरों की सख्याओं का योग = १+४+८+१६+३२ = ६१

प्राप्त योग में एक जोड देने के बाद प्राप्त सख्या = ६१ + १ = ६२

---

[1] अभिनवभारती १४/११३

[2] पिङ्गलकृत छन्द शास्त्र, प्रतिलामगण द्विर्ताद्यम् ८/२६

४ <u>एकद्वयादिलगक्रिया</u> – इस क्रिया के द्वारा लघु–गुरु सख्या वाले भेदो की सख्या का ज्ञान होता है, अतएव इसे 'एकद्वयादिलगक्रिया' कहते हैं। अन्य शब्दो में, किसी भी जाति के प्रस्तारगत रूपो मे कितने वृत्तों मे एक लघु है, कितने वृत्तों मे दो लघु हैं, कितने वृत्तों में तीन लघु हैं, कितने वृत्तों में चार लघु हैं तथा कितने वृत्तों में सारे लघु हैं? इसी प्रकार कितने वृत्तों मे कितने कितने गुरु हैं? आदि समस्त प्रश्नों के उत्तर जानने की क्रिया ही 'एकद्वयादिलगक्रिया' है। इस क्रिया को ही पिङ्गल, छन्दकौस्तुभकार आदिको ने 'मेरु' कहा है, क्योंकि क्रिया की प्रक्रिया के दौरान अङ्को का एक पहाड सा बन जाता है।

एकद्वयादिलगक्रिया को जानने की विधि यह है कि सर्वप्रथम जितने अक्षरों की लगक्रिया करनी हो उससे एक सख्या बढाकर पङ्क्तिबद्ध करके उतने ही 'एक' सख्या लिख लेते हैं, तत्पश्चात् पहले 'एक' के नीचे भी उसी तरह नीचे की ओर पङ्क्तिबद्ध सारिणी बना लेते हैं। अब हम देखते हैं कि दोनों ऊपर तथा बाँयी ओर पङ्क्तियों में छन्द के कुल अक्षरों की सख्या से एक सख्या अधिक है। इसके बाद आगे के रिक्त स्थानों में तिर्यक् योग करके भरते जाते हैं तथा अन्त में एक अङ्क को छोड देते हैं अर्थात् प्रत्येक पङ्क्ति के अन्त में एक–एक अङ्क पिछली पङ्क्ति के अन्तिम अक को एकत्र लिख लेते हैं। ये ही अङ्क क्रमश· सर्वगुरु, एक गुरु, द्विगुरु आदि सख्या होगी और यही उनके सर्वलघु, एकलघु, द्विलघु आदि की सख्या भी होगी।

ध्यातव्य है कि इन सभी प्राप्त सख्याओं का योग, वृत्त की कुल सख्याओं के योग के बराबर होगा। उदाहरणार्थ हमें षडक्षरा गायत्री जाति की लगक्रिया करनी हो तो सर्वप्रथम प्रथम पङ्क्ति में ६+१ = ७, सात बार एक–एक अङ्कों को सारिणीबद्ध करते हैं, तत्पश्चात् बॉयी ओर भी पहले एकाङ्क के क्रम से सात एकाङ्क भरते हैं।

इस प्रकार दोनों ओर कुल सात–सात एकाङ्क की श्रेणी प्राप्त होती है। उसके बाद दूसरी पङ्क्ति हेतु क्रमश तिर्यक योग करते हुए प्राप्त योगाङ्क को दूसरी पङ्क्ति मे भर देते हैं। इसी प्रकार छठवीं पङ्क्ति तक भरते चले जाते हैं। फलत प्राप्त सारिणी इस प्रकार होगी–

<u>एकद्वयालिदलगक्रियाबोधक सारिणी</u> –

१	१	१	१	१	१	१
१	२	३	४	५	६	
१	३	६	१०	१५		
१	४	१०	२०			
१	५	१५				
१	६					
१						

उपर्युक्त सारिणी की प्रत्येक पङ्क्ति की अन्तिम सख्यायें क्रमश १, ६, १५, २०, १५, ६, १ तथा १ हैं। इस सारिणी में प्रथम अन्तिम सख्या तथा अन्त की अन्तिम सख्या दोनों १ है, जिसमें प्रथम अक १ सर्वगुरु भेद का सूचक है तथा अन्तिम अङ्क १ सर्वलघु का सूचक। इससे यह स्पष्ट होता है कि लघु तथा गुरु की सख्या के आधार पर वृत्तों की सख्या बराबर होती है। अत हम इसे इस प्रकार लिख सकतें है कि षडक्षरा गायत्री जाति में –

सर्वगुरु– १
एकगुरु या एक लघु –६
द्विगुरु या द्विलघु – १५
त्रिगुरु या त्रि लघु – २०
चतुर्गुरु या चतुर्लघु – १५
पञ्चगुरु या पञ्चलघु – ६
सर्व लघु – १

ध्यातव्य है कि प्रस्तारगत प्रक्रिया में भी प्रथम भेद सर्वगुरु तथा अन्तिम भेद सर्वलघु का होता है।

५ **सख्या** – 'सख्या' नाम प्रत्यय के द्वारा यह ज्ञात होता है कि इतने वर्ण वाले कुल इतने छन्द होते हैं अर्थात् यह प्रस्तारगत रूपों की सम्पूर्ण सख्या को सूचित करता है, जिस कारण इसे 'सूची' भी कहा जाता है। कहीं–कहीं इसे 'सख्यान' भी कहते हैं। 'सख्या' और 'सख्यान का तात्पर्य एक ही है। 'सख्या' के माध्यम से किसी जाति के सम्पूर्ण रूपो या भेदों की सख्या जानने की विधि यह है कि–

यदि एकद्वयादिलगक्रिया के अङ्कों को परस्पर जोड देते हैं तो प्राप्त अङ्क 'सख्या' कहलाती है। पिछले उदाहरण में एकद्वयादिलगक्रिया के अङ्क क्रमश १, ६, १५, २०, १५, ६ तथा १ हैं, इन्हे जोड देने पर प्राप्त सख्या ६४ है और यही षडक्षरा गायत्री जाति के सम्पूर्ण रूपो या वृत्तो की सख्या होगी।

इसे जानने की विधि और है, वह यह कि उद्दिष्ट के अङ्कों के योगफल में 'एक' जोड देने से भी 'सख्या' का ज्ञान हो जाता है। षडक्षरा जाति के उद्दिष्टाङ्क १, २, ४, ८, १६ ३२ हैं, इन्हे जोड देने पर योगफल ६३ होता है तथा इसमें एक जोड देने पर योगफल ६४ हो जाता है। यही 'सख्या' हुई।

६ **अध्वयोग** – 'अध्वा का अर्थ है– 'प्रस्तार लेखन के योग्य स्थान।' किसी छन्द के प्रस्तार को लिखने मे कितना स्थान चाहिये, इसे जानने का प्रत्यय 'अध्वयोग' कहलाता है। जिस छन्द का अध्वयोग' जानना हो, उसकी कुल वृत्त सख्या का दुगुना करके एक घटा देने पर जो सख्या आती है, उसे ही उस छन्द का 'अध्वा' या अध्वयोग कहते हैं।

छन्द के प्रस्तार लिखते समय एक भेद के लिये एक चौथाई स्थान चाहिये तथा प्रत्येक वृत्ति की व्याप्ति एक अङ्गुल होती है तथा उसके नीचे या उपर एक

अङ्गुल रिक्त रखना चाहिये, जिससे वृत्त–भेदों का पार्थक्य बना रहे। सबसे नीचे स्थान छोडने की आवश्यकता नहीं है, इसीलिये एक घटा दिया जाता है।

उदाहरणार्थ– षडक्षरा गायत्री के प्रस्तारगत सभी रूपों के लिये 'अध्वयोग जानना है। इसके वृत्तों की कुल सख्या ६४ है। इसमें से एक घटा देने (६४–१=६३) पर प्राप्त अङ्गुल की लम्बाई ६३ अङ्गुल हुई। यही छ· अक्षरों वाले गायत्री छन्द का अध्वा या अध्वयोग होगा, अर्थात् इस छन्द के कुल वृत्तों की सख्या को लिखने के लिये लगभग एक मीटर स्थान की आवश्यकता होगी।

प्रसङ्ग प्राप्त मात्रिक प्रत्ययो की भी चर्चा की जा रही है। मात्रिक प्रत्ययों के अन्तर्गत केवल प्रस्तार का ही विवेचन किया जा रहा है, क्योंकि शेष प्रत्यय वार्णिक प्रत्ययों की तरह ही हैं।

<u>मात्रिक प्रस्तार</u> –

मात्रिक प्रस्तार भी वार्णिक प्रस्तार के समान ही है, किन्तु मात्रिक छन्द अक्षरों या वर्णों पर नहीं, अपितु मात्राओं पर आधारित हुआ करते हैं। अत एव जहाँ वार्णिक प्रस्तार का प्रथम भेद 'सर्वगुरु' वाला ही होता है, वहीं मात्रिक प्रस्तार में सम मात्रा वाले प्रस्तार का ही प्रथम भेद सर्वगुरु वाला होगा। विषम मात्रा वाले प्रस्तार के प्रथम भेद के प्रारम्भ या अन्त में एक लघु होता है और ऐसा मात्राओं को समान करने के लिये किया जाता है। उल्लेख्य है कि मात्रिक प्रस्तार करते समय हम इस बात का ध्यान रखते हैं कि प्रस्तारगत सभी रूपों मे मात्राओं की सख्या इष्टमात्रा के बराबर बनी रहे। मात्राओं की सख्या बराबर बनाये रखने के लिये हम प्रथम 'गुरु' के नीचे 'लघु' लिखते हैं, शेष दायीं ओर के चिह्नों को ज्यों का त्यों उतार देते हैं, किन्तु जब बायीं ओर 'गुरु' लिखना प्रारम्भ करते हैं, तो इस बात का ध्यान रखते हैं कि हम जितनी मात्राओं का प्रस्तार कर रहें हैं, कुल मात्रायें उससे कम या अधिक न हों। यदि गुरु लिखने से मात्रायें अधिक हो

रही हों, तो गुरु के स्थान में लघु लिख देते हैं। इस प्रकार हम जितनी मात्रा का प्रस्तारगत भेद निकालना चाहें, निकाल सकते हैं। कतिपय उदाहरणों के माध्यम से हम इस प्रक्रिया को सरल बना सकते हैं–

<u>पाँच मात्रा (पञ्चकल) का प्रस्तार</u> –

भेद	प्रस्तार
१	I S S
२	S I S
३	I I I S
४	S S I
५	I I S I
६	I S I I
७	S I I I
८	I I I I I

<u>छः मात्रा (षट्कल) का प्रस्तार</u> –

भेद	प्रस्तार
१	S S S
२	I I S S
३	I S I S
४	S I I S
५	I I I I S
६	I S S I
७	S I S I
८	I I I S I
९	S S I I
१०	I I S I I
११	I S I I I
१२	S I I I I
१३	I I I I I I

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक मात्रा का प्रस्तार भेद एक, दो मात्रा के दो, तीन मात्रा के तीन, चार मात्रा के पॉच, पाँच मात्रा के आठ तथ छ· मात्रा के प्रस्तारगत भेद तेरह होते हैं। अत· हम मात्रिक प्रस्तार भेद की यथासम्भव सूची बना सकते हैं–

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
प्रस्तार भेदो की सख्या	१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९	१४४	२३३

प्रकृत सूची को देखने से पता चलता है कि पिछली दो–दो प्रस्तार–भेदों की सख्याओं को जोडकर अगली मात्रा का प्रस्तार भेद ज्ञात किया गया है। इसी प्रवृत्ति के आधार पर जितनी मात्रा का चाहें, उतनी मात्रा का प्रस्तार–भेद निकाल सकते हैं।

उपर्युक्त वार्णिक एव मात्रिक प्रत्ययो का विश्लेषण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि छन्द के स्वरूप एव सख्यादि के ज्ञान में इन प्रत्ययों का अत्यन्त महत्त्व है। वस्तुत· गणितीय दृष्टि से छन्द के विविध स्वरूप एव सख्यादि निकालने की ये विधियाँ वैज्ञानिक हैं। इन प्रत्ययों में भी प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट एव सख्या सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो ही दृष्टियों से उपयोगी हैं। एकद्वयादिलगक्रिया तथा अध्वयोग इन छन्दों का व्यावहारिक पक्ष न के बराबर दिखायी देता है।

उपजाति छन्द का प्रस्तार –

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का मिश्रित छन्द उपजाति कहलाता है अर्थात् जिस छन्द का कोई चरण इन्द्रवज्रा का तथा कोई उपेन्द्रवज्रा का है, तो वह उपजाति छन्द कहलाता है। अन्य जातियों में इसी प्रकार दो छन्दों के मेल से जो छन्द बनेंगे वे भी उपजाति ही कहलायेगें। प्रत्येक उपजाति के अनेक प्रकार होते हैं। चार चरणों वाले उपजाति छन्द के प्रस्तार की विधि के अनुसार चौदह भेद होते हैं। इन्द्रवज्रा और

उपेन्द्रवज्रा, स्वागता एव रथोद्धता तथा वशस्थ एव इन्द्रवशा मिश्रित उपजाति प्रस्तारगत गणितीय दृष्टि से चौदह प्रकार की होती है–

एकत्र पादे चरणद्वये वा पादत्रये वान्यतर· स्थितश्चेद्।

तयोरिहान्यत्र तदोहनीयाश्चतुर्दशोक्ता उपजातिभेदा ।।

उपजाति के विविध रूपो को प्रस्तार के माध्यम से निकाल[1] सकते हैं–

इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा = उपजाति के प्रस्तारगत विविध रूप –

क्र०	जाति	प्रस्तारगत रूप	रूपो के नाम
–	त्रिष्टुप्	इ इ इ इ	इन्द्रवज्रा
१	"	उ इ इ इ	कीर्ति
२	"	इ उ इ इ	वाणी
३	"	उ उ इ इ	माला
४	"	इ इ उ इ	शाला
५	"	उ इ उ इ	हँसी
६	"	इ उ उ इ	माया
७	"	उ उ उ इ	जाया
८	"	इ इ इ उ	बाला
९	"	उ इ इ उ	आर्द्रा
१०	'	इ उ इ उ	भर्द्रा
११	"	उ उ इ इ	प्रेमा
१२	"	इ इ उ उ	रामा
१३	"	उ इ उ इ	ऋद्धि·
१४	"	इ उ उ उ	बुद्धि·
–	"	उ उ उ उ	उपेन्द्रवज्रा

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का समन्वित उपजाति छन्द महाकवियों के द्वारा बहुश प्रयुक्त किया गया है। महाकवि कालिदास को यह इतना अच्छा लगा कि

[1] पिङ्गलकृत छन्द·शास्त्र – आद्यन्तावुपजातय

उन्होने कुमारसभव के अधिकाश सर्ग उपजाति छन्द में ही उपनिबद्ध किये हैं। कुमारसभव का प्रारम्भ ही उपजाति छन्द से किया है। इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों ही छन्द अनुष्टुप् के बाद सर्वाधिक प्रचलित छन्द है। शायद इसका कारण इनकी सरलता है। एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इनकी लय अत्यन्त श्रुतिसुखद होती है।

इन्द्रवज्रा एव उपेन्द्रवज्रा से मिश्रित उपजाति के कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं–

१ ।S।S S।।S।SS SS। SS।।S।SS
स मानसीं मेरुसख पितृणा कन्या कुलस्य स्थितये स्थितज्ञ।
SS।SS।।S।SSSS।SS।।S।SS
मेना मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपा विधिनोपयेमे।।[1]

प्रकृत छन्द में प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का है, शेष तीनो चरण इन्द्रवज्रा के हैं, अत यह स्थल इन्द्रवज्रा एव उपेन्द्रवज्रा का समन्वित रूप 'उपजाति' का प्रथम भेद 'कीर्ति' का है।

२ S S।S S।।S।SS।S।SS।।S।SS
य· पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
SS।S S।। S। SS SS।SS।।S। SS
उद्गास्यातामिच्छति किन्नराणा तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम्।।[2]

इस उपजाति छन्द में द्वितीय चरण उपेन्द्रवज्रा का है, शेष इन्द्रवज्रा के, अत यह 'वाणी' नामक उपजाति का द्वितीय रूप का स्थल है।

इसी प्रकार कुमारसम्भव में ही सभी रूपों के प्रयोग देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी उपजाति के प्रयोग बहुलता से प्राप्त होते हैं, यथा–

---

[1] महाकवि कालिदास–कुमारसम्भव सर्ग–१ पद्य–१८
[2] ' वही पद्य–८

उपजाति के प्रयोग के विषय में यह ध्यातव्य है कि समान जाति के ही दो वृत्तों के मेल या सङ्कर को उपजाति कहा जाना चाहिए।

'इत्थ किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेद नाम' इस पङ्क्ति में आचार्यो ने यह सङ्केत किया है कि उपजाति केवल इन्द्रवज्रा एव उपेन्द्रवज्रा के ही मिश्र को नहीं कहते, अपितु अन्य जातियों के छन्दों के मिश्रण को भी उपजाति सञ्ज्ञा दी जा सकती है। यह भी उल्लेख्य है कि एक ही जाति मे भी सभी वृत्तों का सङ्कर या मेल नहीं होता, अपितु जो सुनने में श्रुति सुखद एव मधुर हों या जिनका महाकवियों ने प्रयोग किया हो, उन्हीं वृत्तों का सङ्कर होता है। इस दृष्टि से त्रिष्टुप् जाति के इन्द्रवज्रा एव उपेन्द्रवज्रा तथा स्वागता एव रथोद्धता श्रुति सुखद एव महाकवियों के द्वारा प्रयुक्त हैं। जगती जाति के वशस्थ एव इन्द्रवशा के मिश्रण से बनी उपजाति भी महाकवियों के द्वारा प्रयुक्त है। त्रिष्टुप् जाति की वातोर्मी एव शालिनी के सङ्कर से निर्मित उपजाति भी महाकाव्यों में देखी जाती है।

त्रिष्टुप् जाति के स्वागता एव रथोद्धता के मेल से बनी उपजाति के भी वही नाम है, जो इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा की उपजाति के हैं। यथा –

SIS I IIS ISIS S ISI I IS I ISS
ब्रह्मनिष्ठ मकनिष्ठचेष्टित विष्टपत्रितयशिष्ट वरिष्ठम्।
S ISIII S ISIS S IS I IISIISS
ब्रह्मसूनुरथ विष्टरश्रवा विष्टरे समुपविष्टमयष्ट।।[1]

त्रिष्टुप् जाति के इस छन्द में प्रथम एव तृतीय चरण रथोद्धता तथा द्वितीय एव चतुर्थ स्वागता के लक्षण से युक्त है, अत यह रथोद्धता एव स्वागता मिश्रित उपजाति का पञ्चम रूप 'हसी' है। इसके अन्य भेद भी प्रकृत काव्य या अन्य महाकाव्यों मे गवेषणीय हैं। इसी जाति की वातोर्मी एव शालिनी मिश्रित उपजाति भी महाकाव्यों में उपलब्ध होती है।

---

[1] शेषकृष्णपण्डितकृत – परिजातहरणचम्पूकाव्य –१/५१

जगती जाति की वशस्थ एव इन्द्रवशा की भी उपजाति के प्रस्तारगत चौदह ही रूप बनते हैं, किन्तु उनके नाम भिन्न हैं।

वशस्थ एव इन्द्रवशा मिश्रित उपजाति के विविध रूप –

क्रमाक	जाति	प्रस्तारगत रूप	रूपों के नाम
	जगती	व० व० व० व०	वशस्थ
१	"	इ० व० व० व०	कुमारी
२	"	व० ई० व० व०	रमणा
३	"	इ० इ० व० व०	शङ्खचूडा
४	"	व० व० ई० व०	वैधात्री
५	"	इ० व० इ० व०	शिशिरा
६	"	व० इ० इ० व०	मन्दहासा
७	"	इ० इ० इ० व०	वासान्तिका
८	"	व० व० व० इ०	शीलातुरा
६	"	इ० व० व० इ०	सौरभेयी
१०	"	व० इ० व० इ०	उपमेया (रामणीयकम्)
११	"	इ० इ० व० इ०	पुष्टिदा
१२	"	व० व० इ० इ०	इन्दुभा
१३	"	इ० व० इ० ई०	रताख्यानकी
१४	"	व० इ० ई० इ	वैरासिकी
	"	इ० इ० इ० इ०	इन्द्रवशा

वशस्थ और इन्द्रवशा की उपजाति के सभी रूप कुमारसम्भव एव शिशुपालवध में प्राप्त होते हैं। कुमारसम्भव के चौदहवाँ एव पन्द्रहवाँ सर्ग तथा शिशुपालवध का बारहवाँ सर्ग इसी उपजाति मे प्रणीत है। उदाहरणार्थ कुछ रूप दिये जा रहे हैं–

१   ऽ ऽ । ऽ ऽ। । ऽ । ऽ। ऽ   । ऽ। ऽ ऽ।। ऽ। ऽ। ऽ

कि ब्रूथ रे व्योमचरा । महासुरा· स्मरारिसूनुप्रतिपक्षवर्तिन ।

। ऽ। ऽ ऽ। । ऽ। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ। ऽ

मदीय बाणव्रणवेदना हि साऽधुना कथ विस्मृतिगोचरीकृता ।।[1]

---

[1] कालिदास –कुमारसम्भव सर्ग– १५, पद्य–४०

प्रकृत उपजाति के प्रथम चरण इन्द्रवशा का है, शेष तीनों चरण वशस्थ के हैं, अत यह उपजाति का प्रथम भेद 'कुमारी' का उदाहरण है।

२   S S I S S I I S I S I S I S I S S I I S I S I S
इत्थ रथाश्वेभनिषादिना प्रगे, गणो नृपाणामथ तोरणाद्बहि ।
S S I S S I I S I S I S I S I S S I I S I S I S
प्रस्थानकालक्षमवेषकल्पना कृतक्षणक्षेपमुदैक्षताच्युतम् ।।[1]

प्रथम तथा तृतीय चरण इन्द्रवशा का तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण वशस्थ का है, अत एव यह उपजाति का पञ्चम रूप 'शिशिरा' का है।

इसके सभी रूप उपलब्ध होते हैं, किन्तु अनावश्यक विस्तार के भय से सभी रूप नहीं दिये जा रहे हैं।

प्रश्न उठता है कि जिस प्रकार इन्द्रवज्रा– उपेन्द्रवज्रा, वशस्थ– इन्द्रवशा मिश्रित उपजाति हो सकती है, उसी प्रकार इन्द्रवज्रा–वशस्थ आदि अन्य विषमाक्षर के साथ मिलकर उपजाति बन सकती है तथा त्रिष्टुपत्व एव जगतीत्व का मेल या सङ्कर हो सकता है? उपजाति के सन्दर्भ में ये दोनों ही सम्भव नहीं है, क्योंकि उपजाति को सभी छन्दःशास्त्रीय आचार्यों ने समवृत्त के अधिकार में पढा है। यदि एकादशाक्षरात्मक त्रिष्टुप् तथा द्वादशाक्षरात्मक जगती का मिश्रण उपजाति होगी, तो वह समवृत्त नहीं रह जायेगा, अपितु वह विषम वृत्त कहा जायेगा। दूसरी बात यह है कि यदि इन्द्रवज्रा और वशस्थ के मिश्रण को उपजाति मानें, तो विषम और अर्द्धसम का उच्छेद हो जायेगा। फलस्वरूप पिङ्गलादि आचार्यों के द्वारा सम, अर्द्धसम तथा विषमवृत्त का विभाजन व्यर्थ हो जायेगा और 'अत्रानुक्त गाथा'' आदि सूत्र के सन्दर्भ मे सूत्रवैयर्थ्य का प्रसङ्ग आ पडेगा। साथ ही साथ छन्दोभङ्ग दोष निर्विषय हो

---

[1] महाकवि माघ, शिशुपाल वध सर्ग–१२, पद्य–१

जायेगा। अतएव समान या एक ही जाति के दो छन्दो के मिश्रण का स्थल ही उपजाति का स्थल होगा, असमान जाति के नहीं।

प्रश्न उठता है कि क्या सस्कृत काव्यो (पद्यों) मे सभी जातियों के प्रस्तारगत सभी रूपों का प्रयोग हुआ है? इसका उत्तर कुछ इस तरह से दिया जा सकता है कि समवृत्त के उक्तादि से लेकर उष्णिक् तक तो केवल सैद्धान्तिक रूप ही है, उनकी गणना भेद प्रदर्शन के लिये ही की गयी है। वस्तुत व्यवहार मे या काव्यग्रन्थों मे प्रयोग के छन्द नहीं बन सके। अष्टाक्षर अनुष्टुप् जाति से लेकर इक्कीस अक्षर वाले पाद की जाति 'प्रकृति' तक के रूपों का ही प्रयोग महाकाव्य आदि ग्रन्थो में हुआ है। इनमें भी एक–एक जाति के बहुत कम रूपो का प्रयोग हुआ है।

प्रसङ्गप्राप्त अर्द्धसमवृत्त की भी चर्चा अपेक्षित है। अर्द्धसमवृत्त की तीन प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है।

प्रथम प्रवृति यह है कि सभी चरण हैं तो एक ही जाति के किन्तु प्रथम एव तृतीय तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण के लक्षण समान होने के कारण अर्द्धसमवृत्त कहलाते हैं, यथा – उपचित्रा।

इसे हम उदाहरण के द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं–

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

उपचित्रकमत्रविराजते चूतवन कुसुमैर्विकसद्भि ।

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

परपुष्टविघुष्टमनोहर मन्मथकेलिनिकेतनमेतत् ।।

प्रकृत छन्द है तो त्रिष्टुप् जाति का ही, किन्तु प्रथम एव तृतीय तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण मे लक्षण समान हैं, अत यह एक ही जाति का अर्द्धसमवृत्त है।

दूसरी प्रवृत्ति यह है कि यह छन्द समवृत्त की ही दो जातियों का सङ्कर या मेल है, यथा द्रुतमध्या, हरिणप्लुता, अपरवक्त्र, वेगवती, भद्रविराट् तथा केतुमती । यथा–

द्रुतमध्या –

S || S| |S| |S S ||||S| | S||S S
यद्यपि शीघ्रगतिर्मृदुगामी बहुधनवानपि दु खमुपैति।

S ||S ||S | | SS ||| |S | |S ||S S
नातिशयत्वरिता न च मृद्वी नृपतिगति कथिता द्रुतमध्या

इस छन्द का प्रथम एव तृतीय चरण त्रिष्टुप् जाति का ४३६ वाँ रूप'दोधक' का है तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण जगती जातिका ८८७वाँ रूप 'अभिनवतामरस (तामरस) का है, अत यह दो असमान जाति त्रिष्टुप् एव जगती का सङ्कर 'द्रुतमध्या' नामक अर्द्धसम वृत्त है।

हरिणप्लुता –

||S ||S ||S |S| | |S||S ||S |S
स्फुटफेनचया हरिणप्लुता बलिमनोज्ञतटा तरणे सुता।

||S| |S ||S |S | | |S ||S | |S| S
कलहसकुलारवशालिनी विहरतो हरति स्म हरेर्मन ।।

इस छन्द का प्रथम एव द्वितीय चरण त्रिष्टुप् जाति का तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण जगती जाति का १४६४ वाँ रूप 'द्रुतविलम्बित' का है, अत यह दो भिन्न भिन्न जातियो का सङ्कर है।

अपरवक्त्र –

| || || |S |S |S |||| S | |S |S |S
सकृदपि कृपणेन चक्षुषा नरवर पश्यति यस्तवाननम्।

न पुनरपरवक्त्रमीक्षते स हि सुखितोऽर्थिजनस्तथाविध ।।

यह 'त्रिष्टुप् एव जगती जातियों का मिश्रण रूप अपरवक्त्र छन्द है। इसे वैतालीय प्रकरण मे पढा गया है। यहाँ भद्रिका और श्येनिका का सङ्कर है।

३ तीसरी प्रवृत्ति यह है कि कतिपय अर्द्धसमवृत्त समवृत्त के अधिकार मे पढे गये हैं, किन्तु विशेष सञ्ज्ञा विधान (यह स्पष्ट नहीं है) के लिये अर्द्धसमवृत्त मे कथन कर दिया गया है, यथा—

<u>आख्यानकी का उदाहरण</u>—

ऽ ऽ। ऽ ऽ । । ऽ। ऽ ऽ । ऽ। ऽ ऽ ।। ऽ। ऽ ऽ
भृङ्गावलीमङ्गलगीतनादैर्जनस्यचित्ते मुदमादधाति।

ऽ ऽ। ऽ ऽ।। ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ। । ऽ । ऽ ऽ
आख्यानकीवस्मरजन्मवार्ता महोत्सवस्याप्रवणे क्वणन्ती।।

इस छन्द में प्रथम एव तृतीय चरण इन्द्रवज्रा तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण उपेन्द्रवज्रा के हैं, अत· यह अर्द्धसमवृत्त त्रिष्टुप् जाति के ही प्रस्तारगत ३७५ वाँ रूप 'इन्द्रवज्रा' तथा ३५८ वाँ रूप 'उपेन्द्रवज्रा' मिश्रित उपजाति का दशम रूप 'भद्रा' ही है। यहाँ विशेष सञ्ज्ञा विधान के लिए अर्द्धसमवृत्त के अन्तर्गत इसकी गणना हुई है। इसी को उलट देने पर 'विपरीताख्यानकी' नामक अर्द्धसमवृत्त हो जायेगा। जो उपर्युक्त उप जाति का ही पञ्चम रूप 'हसी' है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि 'आख्यानकी' आदि को आचार्यों ने अर्द्धसमवृत्त मे क्यों परिगणित किया? इसका कारण आचार्यों ने 'विशेष सञ्ज्ञा विधान' कहा है, किन्तु विशेष सञ्ज्ञा विधान को स्पष्ट नहीं किया गया है। अगर उपजाति के उपर्युक्त 'भद्रा' आदि के दो नाम का कथन हो जाता तो अर्द्धसमवृत्त में इसकी परिगणना करने की आवश्यकता ही न पडती। 'पुष्पिताग्रा' छन्द भी दो भिन्न जातियों का सङ्कर है—

क्षणमपि विरह पुरा न सेहे नयननिमीलनखिन्नया यथा ते।

श्वसिति कथमसौ रसालशाखा चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम्।।

इस छन्द की भी गणना अर्द्धसमवृत्त मे 'विशेष सञ्ज्ञा विधान' के लिये की गयी है। इसे आचार्यो ने 'औपच्छन्दसिक' का अपर नाम माना है। 'औपच्छन्दसिक' छन्द मात्रिक छन्द है तथा 'पुष्पिताग्रा अर्द्धसमवृत्त। दोनों ही छन्दों के पूर्वार्द्ध एव उत्तरार्द्ध में चौंतीस–चौंतीस मात्रायें होती हैं। यहाँ उपर्युक्त प्रश्न के अतिरिक्त एक प्रश्न और उपस्थित होता है कि जब 'पुष्पिताग्रा को 'औपच्छन्दसिक' माना तो अर्द्धसमवृत्त में परिगणित 'उपचित्रम् को 'उपचित्रा' नामक मात्रिक छन्द क्यों नही माना ? यह बात सङ्गत नहीं प्रतीत होती।

विषमवृत्त –

क्रमप्राप्त विषमवृत्त का भी विवेचन अपेक्षित है। विषम वृत्त के चारों पादों के लक्षण भिन्न भिन्न हुआ करते हैं सस्कृत छन्दःशास्त्रीय आचार्यों के द्वारा निरूपित विषम वृत्त में भी दो प्रवृत्तियाँ गोचर होती हैं–

प्रथम प्रवृत्ति यह है कि समवृत्त में गुरु–लघु का क्रमशः सन्निवेश है, वह विषम वृत्त में नहीं पाया जाता। इनमे अक्षरों का ही प्राधान्य है, यथा–पदचतुरूर्ध्वप्रकरण के प्रस्तारगत समस्त रूप इसी प्रवृत्ति के पोषक हैं। पदचतुरूर्ध्व विषम वृत्त का उदाहरण –

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
तस्या कटाक्षविक्षेपै

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
कम्पिततनु कुटिलैरतिदीर्घ ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
तक्षकदष्ट इवेन्द्रियशून्य क्षतचैतन्य,

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
पद चतुरूर्ध्व न चलति पुरुष पतति सहसैव ।[1]

---

[1] छन्दः शास्त्र की हलायुधवृत्ति से

प्रकृत छन्द 'पदचतुरूर्ध्व' नामक विषम वृत्त है। इस छन्द को देखने पर ऐसा ज्ञात होता है कि इसके प्रत्येक चरण में अक्षरों का ही उपसख्यान है, लघु–गुरु के क्रम का विशेष सन्निवेश नहीं है। इस छन्द की सञ्ज्ञा अन्वर्थक है। पदचतुरूर्ध्व के प्रस्तारगत २४ रूप बनते हैं–

क्रमाङ्क	प्रथम चरण अ० स०	द्वितीय चरण अ० स०	तृतीय चरण अ० स०	चतुर्थ चरण अ० स०	
१	८	१२	१६	२०	पदचतु
२	८	१६	१२	२०	–रूर्ध्व
३	८	२०	१६	१२	
४	८	१२	१६	२०	
५	८	१६	२०	१२	
६	८	२०	१२	१६	
७	१२	८	१६	२०	
८	१२	१६	८	२०	
९	१२	२०	१६	८	
१०	१२	८	२०	१६	
११	१२	१६	२०	८	
१२	१२	२०	८	१६	
१३	१६	१२	८	२०	
१४	१६	८	१२	२०	
१५	१६	२०	८	१२	
१६	१६	१२	२०	८	
१७	१६	८	२०	१२	
१८	१६	२०	१२	८	
१९	२०	१२	१६	८	
२०	२०	८	१६	१२	
२१	२०	१२	८	१६	
२२	२०				
२३	२०	१६	१२	८	
२४	२०	८	१२	१६	

उपर्युक्त प्रस्तारगत रूपों की तालिका वृत्त रत्नाकर की भट्टीय व्याख्या में दी गयी है। तालिका को देखने से पता चलता है कि प्रत्येक चरण के अक्षरो की सख्या का प्रथम चरण मे अवस्थित होने से प्रत्येक के छ–छ रूप बनते हैं। अतएव चार चरणो वाले इस 'पदचतुरूर्ध्व' छन्द के चौबीस रूप निर्मित होते हैं। प्रकृत प्रकरण में वर्णित मञ्जरी, लवली तथा अमृतधारा पदचतुरूर्ध्व के ही प्रस्तारगत कमश ७वें, ८वे तथा ११वे रूप हैं।

दूसरी प्रवृत्ति विषमवृत्त छन्दों में गुरुलघु के विशेष सयोजन की है। यह प्रवृत्ति समवृत्त से मिलती है, यथा—उद्‌गता आदि विषमवृत्त, उदाहरण—

| | S | S | | | S | | | | | | | S | S | S
अथ वासवस्य वचनेन रुचिरवदनस्त्रिलोचनम्।[1]

S | | | | | | S S | S | | S | S | | | S | S | S
क्लान्तिरहितमभिराधायितु विधिवत्तपासि विदधे धनञ्जय ।।

इस उद्‌गता छन्द के प्रथम चरण में स, ज, स तथा लघु, द्वितीय चरण मे न, स, ज तथा गुरु, तृतीय चरण में भ, न, ज, ल, ग तथा चतुर्थ चरण में स, ज, स, ज तथा गुरु हैं। यहाँ पर लघु–गुरु के क्रमश सन्निवेश का विधान है। इसी तरह अन्य विषम वृत्तों मे भी है। उद्‌गता छन्द का यह उदाहरण भारविकृत 'किरातार्जुनीयम के बारहवे सर्ग का प्रथम पद्य है। महाकवि भारवि ने पूरा का पूरा द्वादश सर्ग 'उद्‌गता' छन्द में ही रचा है। उद्‌गता विषमवृत्त का प्रयोग बृहद् रूप से पहली बार उपलब्ध होता है।

---

[1] भारविकृत किरातार्जुनीयम्, सर्ग—१२ पद्य—१

मात्रिक एव वार्णिक छन्दो मे भेद—

दोनो प्रकार के छन्दों के निरूपण के पश्चात् मात्रिक एव वार्णिक छन्दों मे भेद की चर्चा अपेक्षित जान पड़ती है। मात्रिक छन्दों का सङ्गीत वार्णिक छन्द की तरह लघु–गुरु वर्णों के उच्चारण भेद पर निर्भर नहीं करता। मात्रिक छन्द लय–प्रधान हैं। मात्रिक छन्दो में वार्णिक छन्द की तरह न तो वर्णों की पादगत स्थूलत गिनती होती है और न ही लघु–गुरु वर्णों के एक समान पादगत वार्णिक गणो का प्रयोग आवश्यक है। मात्रिक छन्दों की इकाई गण न होकर मात्रा है। यह मात्रा, ताल और लय से सम्बद्ध है। इसमें त्रिकात्मक गणो का प्रयोग नहीं होता, वरन् चतुर्मात्रिक गणों का ही उपसख्यान होता है।

निष्कर्ष —

इस प्रकार छन्दों के भेद–विवेचन में हमने देखा कि किस प्रकार वैदिक छन्दों का प्रभाव लौकिक छन्दो पर पडा तथा लौकिक छन्दों के मात्रिक के समवृत्त, अर्द्धसमवृत्त तथा विषमवृत्त एव वार्णिक के सम, अर्द्धसम व विषम वृत्त के विविध रूप प्रस्तार आदि के माध्यम से निर्मित हुए। ये रूप छन्द के उदय के साथ अनेक परिवर्तन के दौर से गुजर कर विकसित हुए हैं। सभ्यता के विकास के साथ–साथ जो नयी–नयी समस्यायें आयीं और तदनुकूल वर्ण्य विषयों ने उनके कण्ठ–स्वरों को जिस तरह प्रभावित किया, उनकी परिणति वैदिक छन्द के रूप में हुई। पुनश्च छन्दो की कृत्रिमता से ऊबकर जन–साधारण के स्वरो का विलास साम (गीतों) के रूप में सामवेद में प्रस्फुटित हुआ। तत्पश्चात् क्रौञ्चद्वन्द्व के वियोग से मर्माहत करुणार्द्रचेता महर्षि वाल्मीकि के स्वर में जो नया विकार पैदा हुआ, उससे लौकिक छन्दों का प्रारम्भ हुआ जो आज तक अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है। परवर्ती महाकवियो ने समय और परिस्थितियो के अनुसार वर्ण्य विषयों के परिवर्तनों को बहुत अधिक महत्त्व

नहीं दिया, जिस कारण समवृत्त के प्रस्तारगत रूपो मे अत्यन्त कम रूप ही विकसित हो सके। मात्रिक छन्दों का अवलम्बन लेकर गोवर्धनाचार्य ने एक प्रयास शुरू भी किया था। गोवर्धनाचार्य ने आर्या नामक मात्रिक छन्द में 'आर्यासप्तशती' लिखी। ऐसी सुन्दर आर्याये न तो इसके पहले किसी कवि ने लिखी और न बाद मे ही। उनकी आर्या में प्रवाहमयता है एव वह ललितपद योजना से सुपूरित है। गोवर्धनाचार्य ने स्वय कहा है–

मसृणपदरीतिगतय सज्जनहृदयानि सारिका सुरसा।
मदनाद्वयोपनिषदो विशदा गोवर्धनस्यार्या॥[1]

जो प्रयास गोवर्धनाचार्य ने शुरू किया था, उसका फल जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' मे प्रकट भी होने लगा था, लेकिन प्राचीनता के वाहक उसे स्वीकार नहीं कर सके। परिणामस्वरूप मध्यकाल (जयदेव के बाद से लेकर १६वीं शती तक) में यह प्रयास बिलकुल रुका हुआ दिखायी पडता है, यद्यपि इस बीच महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि का लेखन होता रहा, किन्तु पूर्व प्रचलित छन्दों में ही। सस्कृत–कवियों की अपेक्षा प्राकृत–कवियों ने बृहद् रूप से छन्दों के विविध रूपों का अपनी रचनाओं में प्रयोग किया। यदि सस्कृत–कवियों ने भी उन कण्ठस्वरों को पहचाना होता और नवनवोद्भूत छन्दो का प्रयोग किया होता, तो सस्कृत जनसाधारण से बहुत दूर न होती। आज सस्कृत–कवियों के द्वारा विविध छन्दों का प्रयोग किया जा रहा है, (जिसका विवेचन प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय में 'आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्य एव छन्द' शीर्षक में किया जायेगा) यह प्रसन्नता की बात है। वस्तुत सस्कृत में गम्भीरता की कमी तो है नहीं, हाँ नवीनता का अभाव है, जिसे दूर करने के लिए आधुनिक सस्कृत–कवियों ने कमर कस ली है।

---

[1] आर्यासप्तशती, पद्य–५१

चतुर्थ अध्याय

छन्दों का नामकरण

चतुर्थ अध्याय

छन्दों का नामकरण

छन्दोविधान के प्रायोगिक विश्लेषण के सन्दर्भ में जब हम कुछ चर्चा करने चलते हैं, तो सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि सस्कृत–काव्यों में प्रयुक्त छन्दों के नामों की सार्थकता कहाँ तक सिद्ध होती है ? प्रश्न उठना स्वाभाविक है, क्योंकि ससार में जितने भी मूर्त, अमूर्त, जड, चेतन आदि पदार्थ हैं, उनके नाम में प्राय उनके स्वरूप व्यक्तित्व आदि कतिपय विशेषतायें निहित या परिलक्षित हुआ करती हैं।

नामो का वैशिष्ट्य –

प्रस्तारगत वार्णिक छन्दों के विकसित विविध रूपों की सख्या असीमित है। इनमें से सभी रूपों का न तो कभी प्रयोग हो सकता था और न ही लक्षण–निरूपण। इनमें थोडे से छन्द, जिनकी ओर महाकवियों का मन आकर्षित हुआ, वे ही काव्य–प्रयोग में प्रचलित हुए और इन प्रयुक्त छन्दों में से, जो छन्द आचार्यों को अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय तथा महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए, उनको उन्होंने अपने छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में लक्षण–निरूपण का विषय बनाया।

आचार्य पिङ्गल, भरत, जयदेव, केदारभट्ट, हेमचन्द्र तथा गङ्गादास आदि छन्द शास्त्रीय आचार्यों ने वार्णिक छन्दों के जिन नामों का कथन किये हैं, उन्हें नाम–वैशिष्ट्य के आधार पर तीन समूहों मे बाँट सकते हैं–

१ प्रथम समूह में उन नामों को रखा जा सकता है, जो स्त्रियोचित विशेषताओं के व्यञ्जक तथा कामिनी के अङ्गों के उपमान के रूप में भी व्याख्येय हैं, यथा– तनुमध्या, शशिवदना, रुक्मवती, मनोरमा, शालिनी, मञ्जुभाषिणी, सुन्दरी तथा प्रियम्वदा आदि। छन्दों के नामों में स्त्रीपरक नामों की अधिकता है। इस समूह में

छन्दों के उन नामों का भी अन्तर्भाव हो जाता है, जिनके बोधक शब्द प्राकृतिक दृश्य–व्यापारों से सम्बद्ध तथा शृङ्गारिक वातावरण के व्यञ्जक या उसके पोषक हैं, यथा– मत्ताक्रीडा, अनङ्गक्रीडा, कुसुमितलतावेल्लिता, पुष्पिताग्रा आदि। इन नामो के विषय में डॉ० शिवनन्दन प्रसाद का मन्तव्य है कि "इस प्रकार के छन्दो के नामकरण शायद उन शृङ्गारिक कवियो की देन है, जो अनुमानत पिङ्गलाचार्य के युग में तथा कुछ पूर्व से नव–नव छन्दों के विविध प्रयोग कर रहे थे। किसी विशेष छन्द के नाम का सूचक शब्द, हो सकता है उसी छन्द में रचित काव्यानुच्छेद या पद्य में प्रेम या शृङ्गार वर्णन के प्रसङ्ग में प्रमुख रूप से आया है और बाद में लक्षणकार द्वारा उस छन्दो–विशेष के नाम के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।"[1]

२ छन्दों के नामकरण के दूसरे समूह में वे छन्द परिगणित किये जा सकते हैं, जिनका सम्बन्ध शृङ्गारेतर प्रकृति–व्यापार एव पशु–पक्षियों से है, यथा– जलोद्धतगति, मत्तमयूर, भुजङ्गप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, वशपत्रपतित तथा चण्डवृष्टिप्रपात आदि। इस समूह में जिन–जिन छन्दों का परिगणन किया जाता है, वे जहाँ एक ओर प्राकृतिक दृश्य–व्यापारों के सूचक हैं, वहीं दूसरी ओर उन छन्दों की विशेष गति–भङ्गिमा या लक्ष्य–वैशिष्ट्य के व्यञ्जक भी। इसके अन्तर्गत छन्दों के नामकरण में छन्दों की गति–लय से तुलनीय प्राकृतिक उपकरणों तथा पशु–पक्षियों आदि के नाम के आधार पर छन्दों के नाम से ही उनकी गति–लय की यथासम्भव अभिव्यञ्जना होती है।

३ तीसरा समूह उन छन्दों के नामों का है, जिनका सम्बन्ध न तो शृङ्गारिक कामिनी के अङ्ग–विच्छित्ति से है और न ही शृङ्गारेतर प्राकृतिक दृश्य–व्यापार आदि से,

---

[1] 'मात्रिक छन्दों का विकास' पृष्ठ सख्या – १३८

अपितु छनदोगत साङ्गीतिकता, गति–लय तथा रचना–वैशिष्ट्य की व्यञ्जकता से है, यथा– द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा तथा पदचतुरूर्ध्व आदि। छन्दशास्त्रीय ग्रन्थो में ऐसे छन्द बहुत कम हैं, जिनके नाम का अन्तर्भाव उपर्युक्त तीनों समूहो में न हो सके, यथा– असम्बाधा आदि।

नामो की अर्थवत्ता –

यद्यपि छन्दशास्त्रीय आचार्यों ने छन्दों के नामकरण में कोई आयास नहीं किया, अपितु कल्पना का ही आश्रय लिया है, किन्तु महाकवियों के प्रयोग–विषय, नामों की व्युत्पत्ति एव उच्चारण ध्वनि के आधार पर छन्दों के नामों की अर्थवत्ता सिद्ध की जा सकती है। इसके लिये हम सबसे पहले अनुष्टुप् छन्द को लेते हैं ।

अनुष्टुप् का अर्थ है– सरस्वती या विद्यारूपिणी शक्ति[1] अर्थात् वह ज्ञान जिसके उदय होने पर भव–बन्धन छूट जाता है। सस्कृत के महाकवि भी अपनी रचना या कविकर्म को मोक्ष–प्राप्ति का साधन मानते हैं। यही कारण है कि अनेक ग्रन्थो चाहे वे पुराण हों या रामायण, चाहे महाभारत या अन्य कोई पद्य–ग्रन्थ, सर्वत्र अनुष्टुप् छन्द की बहुलता है। उपदेश–वाक्य भी अप्रत्यक्ष रूप से मोक्ष–प्राप्ति का माध्यम बन सकते हैं, इसीलिए तो क्षेमेन्द्र अपने छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ 'सुवृत्ततिलक' में अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग–विषय की चर्चा करते हुए कहते हैं कि सर्गबन्ध के आदि में, कथाप्रारम्भ करने के प्रसङ्ग मे तथा वैराग्यजनक उपदेश के लिए प्रयुक्त विभिन्न छन्दो के अन्त में अनुष्टुप् छन्द के ही प्रयोग की अनुमति विद्वान् लोग देते हैं–

> आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तारसङ्ग्रहे।
> समोपदेशवृत्तान्ते सन्त शसन्त्यनुष्टुभम्।।[2]

---

[1] वामन शिवराम आप्टे –सस्कृत हिन्दीकोश पृष्ठ –४३

[2] सुवृत्ततिलक विन्यास–३ पद्य–१६

सस्कृत—काव्यग्रन्थो में अनुष्टुप् छन्द का सर्वाधिक प्रयोग देखा जाता है। महाकवि कालिदास ने रघुवश का प्रारम्भ ही अनुष्टुप् छन्द से किया है तथा सम्पूर्ण प्रथम सर्ग इसी छन्द में निबद्ध है।

भवभूति ने अपनी नाट्यकृति उत्तररामचरित मे मङ्गलाचरण अनुष्टुप् छन्द मे ही किया है। इसके अतिरिक्त विविध शास्त्रीय ग्रन्थों तथा अन्य स्थलों पर जितना अधिक अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है, उतना किसी अन्य छन्द का नहीं। अनुष्टुप् छन्द की लघुता, सुगमता, एव सुग्राह्यता इसके अपनाने मे बहुत बड़े कारण हैं। यदि अनुष्टुप् की व्युत्पत्ति अनु उपसर्गपूर्वक स्तुभ् धातु से मानें, तब इसका अर्थ होगा— स्तब्ध हो जाना या स्थिर हो जाना अर्थात् अनुष्टुप् का ज्ञान हो जाने पर अन्य विषयो से उपरम की प्राप्ति हो जाती है। अन्य शब्दों में, जब कवि अनुष्टुप् छन्द में रचना करने लगता है, तब कवि स्तब्ध या शान्त मन वाला होकर अपने कर्म की ओर अर्थात् अनुष्टुप् छन्द में रचना हेतु प्रवृत्त हो जाता है। अत अनुष्टुप् छन्द की अर्थवत्ता सिद्ध होती है।

अनुष्टुप् के बाद सस्कृत—काव्यों में जो छन्द सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ, वह है—इन्द्रवज्रा आदि। इन्द्रवज्रा का शाब्दिक अर्थ है— इन्द्र के वज्र के समान कठोर। यहाँ पर यह अर्थ सङ्गत नहीं बैठता। इसे हम इस प्रकार से कह सकते हैं कि जिस प्रकार वज्र हृदय में गहराई तक पहुँचकर उसके मर्म को बींध देता है, उसी प्रकार इन्द्रवज्रा आदि छन्द भी महाकवियों के हृदय में प्रवेश कर अपनी मधुरिम लय के द्वारा अन्तस्तल मे दृढता के साथ बैठ जाता है अर्थात् जब कवियों का ध्यान इन्द्रवज्रा आदि छन्द की ओर जाता है, तब वह कवियों को अपनी सरल शैली आदि गुणों के द्वारा आकर्षित करता है, फलस्वरूप कवि बलात् आकृष्ट होकर अपने प्रतिपाद्य विषय का अधिकाँश भाग इन्द्रवज्रा आदि छन्दों में ही प्रस्तुत करने के लिए

विवश हो जाता है। इस प्रकार इन्द्रवज्रा आदि छन्दों की अर्थवत्ता सिद्ध की जा सकती है। इन्द्रवज्रा छन्द का उदाहरण–

वध्नाति रक्तोत्पलरश्मिदन्त शोणद्युतिर्निर्झरवारिवीथी।

अथेन्द्रवज्राहतशैलकुञ्जकीलाललक्ष्मीं बहु–धातुभङ्गौ।।[1]

द्रुतविलम्बित छन्द की सञ्ज्ञा अन्वर्थक है। इस छन्द का पाठ करते समय पहले द्रुतगति से और बाद में विलम्बित अर्थात् देर से ध्वनि उच्चरित होती है। पाठ करते समय इस बात का अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिये, अन्यथा इस छन्द की सुन्दरता का उच्छेद हो जायेगा। द्रुतविलम्बित छन्द का एक उदाहरण–

तरणिजापुलिने नववल्लवी–परिषदा सह केलि–कुतूहलात्।[2]

द्रुतविलम्बित–चारुविहारिण, हरिमिह हृदयेन सदा वहे।।

इस छन्द की सबसे बडी विशेषता इसकी साङ्गीतिकता है। शास्त्रीय सङ्गीत में जिस तरह गायन करते समय द्रुत एव विलम्बित (तीव्र एव मन्द) स्वरों का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार इस छन्द की प्रस्तुति में स्वर में तीव्रता एव मन्दता आती है।

'शार्दूलविक्रीडित' एक समस्त पद है, जिसका अर्थ है– शार्दूलात् विक्रीडितम् अर्थात् सिह से डरा हुआ अथवा भाव अर्थ में 'डरना'। 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द की भी सार्थक सञ्ज्ञा है। महाकवियों के प्रयोग–विषय के आधार पर हम इसकी सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं। जिस प्रकार शार्दूल अर्थात् व्याघ्र वन के भयावने रूप का प्रतीक है, उसी प्रकार छन्दों में यह छन्द भी भयावने रूप (विशेष रूप से प्रकृति के भयावने रूप) का बोध कराता है। सस्कृत काव्यों में प्राय इसी रूप को अभिव्यञ्जित कराने के लिए प्रकृत छन्द का प्रयोग किया गया है। एक अन्य प्रकार से भी हम इसकी

---

[1] बाग्भट नेमिनिर्वाणम्, सर्ग–७, पद्य–१७

[2] गङ्गादासकृत छन्दोमञ्जरी

सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं। शार्दूल का अर्थ है व्याघ्र। व्याघ्र की प्लुति (कूद) बारह हाथ की मानी जाती है। चूँकि इस छन्द में बारह अक्षरों पर यति होती है, अतएव इसका नाम 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द पडा होगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त दोनों दृष्टियों से इसका नाम उपपन्न है। उदाहरण उत्तररामचरित से –

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक–
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुल· क्रौञ्चाभिधोऽय गिरि·।
एतस्मिन्प्रचलाकिना प्रचलतामुद्वेजिता· कूजितै–
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसा ।।[1]

इस तरह प्राय इस छन्द में दीर्घसमासवत्ता होती है, परन्तु अनेक अपवाद भी उपलब्ध होते हैं और कदाचित् असमस्त पदावली का प्रयोग भी मिलता है।

शिखरिणी –

महाकवियों ने प्राय· शान्त एव भक्ति भाव को प्रकाशित करने के लिए 'शिखरिणी' को उपयुक्त छन्द माना है। 'शिखराणि सन्ति अस्यामिति शिखरिणी' अर्थात् शिखर है जिस पर ऐसी छोटी पहाडी के लिये यह शब्द प्रयुक्त होता है। जैसे कोई व्यक्ति ऊँची चोटियों वाले पर्वत पर चढता जाता है, उसी प्रकार इस छन्द के आश्रय से कवि एव पाठक दोनों भक्ति भाव की ऊँचाई पा लेता है। दूसरी दृष्टि से भी इसकी अर्थवत्ता उपपन्न हो सकती है। यदि शिखारिणी का अर्थ उच्च स्थल या पर्वत लें, तो यह कहा जा सकता है कि पर्वतीय वातावरण की अपेक्षा शान्त वातावरण कहीं नहीं मिल सकता तथा आराध्य की आराधना के लिये शान्तिमय वातावरण का होना आवश्यक है। अत प्रयोग–विषय के आधार पर 'शिखरिणी' छन्द का नाम उपपन्न हो सकता है।

---

[1] उत्तरराम चरित अङ्क–२, पद्य–२९

भुजङ्गप्रयात –

'भुजङ्गप्रयात छन्द का लक्षण है 'भुजङ्गप्रयात भवेद्यैश्चतुर्भि' अर्थात् चार यगणो वाला छन्द भुजङ्गप्रयात कहलाता है। इस छन्द का पाठ करते समय उच्चारण की ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है जैसे छन्द की गति भुजङ्ग अर्थात् सर्प की गति का अनुकरण कर रही है, अत इसे 'भुजङ्गप्रयात' छन्द कहते हैं– उदाहरण छन्दोमञ्जरी से –

सदारात्मजज्ञातिभृत्यो विहाय स्वमेत ह्रद जीवन लिप्समान।
मया क्लेशित कालियेत्थ कुरु ! त्व भुजङ्ग ! प्रयात द्रुत सागराय।।

इसी प्रकार भुजगशिशुभृता तथा भुजङ्गसङ्गता नाम भी उपपन्न हो सकते हैं।

मञ्जुभाषिणी –

मञ्जुभाषिणी का अर्थ है– मधुर बोलने वाली। इस छन्द की रचना में अत्यन्त माधुर्य एव पदलालित्य रहता है, जिस कारण इसका नाम 'मञ्जुभाषिणी रखा गया होगा। उदाहरण, भवभूति के उत्तररामचरित से –

समय स वर्तत इवैष यत्र मा,
समनन्दयत् सुमुखि गौतमार्पित।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कण,
तव मूर्तिमानिव महोत्सव कर।।[1]

मन्दाक्रान्ता .–

मन्दाक्रान्ता का अर्थ है– मन्द–मन्द क्रामन्ती गच्छन्तीति मन्दाक्रान्ता अर्थात् धीरे–धीरे गमन करने वाली। इस छन्द का रुक–रुक कर पाठ किया जाता है,

[1] उत्तररामचरित अङ्क–१ पद्य–१८

क्योंकि चार, छ एव सात अक्षरों पर यति होती है। इसी विशेषता के कारण महाकवियो ने इसे विप्रलम्भ भाव को अभिव्यञ्जित करने वाले छन्द के रूप मे मान्यता दी, यथा–

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त· स कामी,
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रशरिक्तप्रकोष्ठ·।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु,
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीय ददर्श।।[1]

वशपत्रपतित –

'वशपत्रपतित' के दो अर्थ हो सकते हैं – बाँस के पत्ते पर गिरी हुई या गिरते हुए बाँस के पत्ते। दोनो ही अर्थ उपपन्न हो सकते हैं। इस छन्द का पाठ करते समय उच्चारण ध्वनि उसी तरह से निकलती है, मानों कोई वस्तु बाँस के पत्ते पर गिर रही हो या बाँस का पत्ता टूटकर गिर रहा हो। उदाहरण –

नूतनवशपत्रपतित रजनिजललव,
पश्य मुकुन्द ! मौक्तिकमिवोत्तममरकतगतम्।
एषा च त चकोरनिकर· प्रपिबति मुदितो,
वान्तमवेत्य चन्द्रकिरणैरमृत कणमिव।।[2]

स्रग्धरा –

स्रग्धरा का अर्थ है– माला को धारण करने वाली। इस छन्द मे कवि अपनी बात को स्रक् अर्थात् माला–रूप में विस्तार के साथ कहता है। यह एक ऐसा विशिष्ट छन्द है, जिसके इक्कीस अक्षरो का विभाजन यति की दृष्टि से सात–सात अक्षरों मे

---

[1] कालिदास, मेघदूत, पूर्वमेघ, पद्य–२
[2] गङ्गादास–छन्दोमञ्जरी

बराबर किया गया है और इस तरह सात–सात अक्षरों की समानाकार वाली तीन मालाए बन जाती हैं। नामग्रहण पूर्वक स्रग्धरा छन्द में ही जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' से एक पद्य दृष्टव्य है–

'व्यालोल केशपाशस्तरलितमलकै स्वेनलोलौ कपोलो,
स्पष्ट–द्रष्टाधरश्री कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टि।
काञ्ची काञ्चिद्गताशा स्तनजघनपाद पाणिनाच्छाद्य सद्य,
पश्यन्ती चात्मरूप तदपि विलुलित स्रग्धरेय धुनोति।।'[1]

चण्डवृष्टिप्रपात –

चण्डवृष्टिप्रपात नामक दण्डक छन्द की भी सार्थकता सिद्ध होती है, जिसका अर्थ है– घनघोर वृष्टि का होना अर्थात् प्रचण्ड वृष्टि के गिरने के समान ही इसके उच्चारण मे ध्वनि निकलती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रचण्ड या घनघोर वृष्टि हो रही हो, यथा–

कठिन–गवल–कज्जल–श्यामल–श्रीभृतामद्भुतैर्धातुभिर्भ्राजमाना वनौ,
रव–भर–कलिता वृहन्मर्दलाडम्बराणा ततस्तोक–पुष्पौघ–लीलातरौ।
कनक–निकष–भास्वराकार–विद्युल्लता–मण्डितानाममुष्मिन् विशाले गिरौ,
विबुधमिथुनकैर्गुहासु स्थितैर्नीयते चण्डवृष्टिर्घनाना क्वणत्तुम्बरौ।।[2]

मत्तमयूर –

'मत्तमयूर' का अर्थ है –मतवाले मोर वाला, अर्थात् मतवाले मोर के नृत्य की तरह यह सुशोभित होता है, अत एव इसे मत्तमयूर छन्द कहा जाता हैं। अन्य शब्दों

---

[1] गीतगोविन्द, सर्ग–१२ पद्य–६
[2] वाग्भट नेमिनिर्वाणम्–सर्ग–७, पद्य–४६

मे, जैसे मतवाले मोर का नर्तन सभी को अच्छा लगता है, उसी प्रकार इस छन्द को सुनकर श्रोता आनन्दित होता है। यथा–

लीलानृत्यन्मत्तमयूरध्वनिकान्त नृत्यन्नीपामोदिपयोदानिलरम्यम्।
रासक्रीडाकृष्टमनागोपवधूभि· कसध्वसी निर्जनवृन्दावनमाप।।[1]

प्रियम्वदा –

प्रियम्वदा का अर्थ है– प्रिय बोलने वाली, अर्थात् इस छन्द का पाठ करने में उच्चारण की ध्वनि अत्यन्त प्रिय निकलती है, अतएव इसका नाम प्रियम्वदा पड़ा होगा–

हसितताभरसनेत्रसारसा,
रजनिवल्लभमुखालिकुन्तला।
स्मितवती पतिहितैकमानसा,
सुकृतिनो हि दयिता प्रियम्वदा।।

मणिमध्या .–

मणिमध्या छन्द के स्वरूप में मध्य में मगण स्थित होता है, अत· इसी कारण से इसका नाम 'मणिमध्या' पडा होगा–

कालियभोगाभोगगतस्तन्मणिमध्यस्फीत रुचा।
चित्रपदाभो नन्दसुतश्चारु ननर्त स्मेरमुख·।।

तनुमध्या –

इस छन्द के ठीक मध्य में दो अक्षर लघु होते हैं। अत· मध्य में लघु अर्थात् क्षीणकटि वाली नायिका के समान कृश होने के कारण इसे तनुमध्या कहा गया होगा–

---

[1] गङ्गादास – छन्दोमञ्जरी

मूर्तिर्मुरशत्रोरत्यद्भुतरूपा।

आस्ता ममचित्ते नित्य तनुमध्या।।

जलोद्धतगति –

इस छन्द के नाम की अर्थवत्ता हम इस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं कि – जलाशय से जल के उठने में जैसी गति होती है, वैसी ही स्थिति इस छन्द के पाठ मे होती है। इसीलिए इसे यह सञ्ज्ञा दी गयी होगी, उदाहरण–

यदीयहलतो विलोक्य विपद कालिन्दतनया जलोद्धतगति ।

विलासविपिन विवेश सहसा करोतु कुशल हली स जगताम्।।[1]

पदचतुरूर्ध्व –

'पदचतुरूर्ध्व नामक छन्द की सञ्ज्ञा स्वरूप की दृष्टि से अन्वर्थक है, क्योंकि इसके प्रत्येक पाद मे क्रमश चार–चार वर्ण अधिक होते जाते हैं–

कुसुमित सहकारे,

हतहिममहिमशशाङ्के।

विकसितकमलसरसि मधुसमयेऽस्मिन्,

प्रवससि पथिकहतक ! यदि भवति तव विपत्ति ।।

मात्रासमक –

मात्रासमक नामक मात्रिक छन्द की भी सज्ञा अन्वर्थक है। इसका अर्थ है– समान मात्राओं वाला। इस छन्द के प्रत्येक चरण में समान मात्रायें हुआ करती हैं। इसीलिए इस छन्द का नाम 'मात्रासमक' रखा गया होगा।

---

[1] छन्दोमञ्जरी

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम देखते हैं कि कतिपय छन्दों के नामकरण की सार्थकता स्वरूप, पाठ की गति तथा व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की दृष्टि से सिद्ध की जा सकती है, किन्तु अधिकाश छन्दो के नाम किस आधार पर रखे गये हैं, यह स्पष्ट नहीं होता। जहॉ तक छन्दो के नामकरण का प्रश्न है, छन्द शास्त्रीय आचार्यों ने सुन्दरता को ही ध्यान मे रखकर नामकरण किया होगा। यह सयोग की ही बात कही जा सकती है कि नाम एव उसकी अर्थवत्ता दोनों एक साथ छन्द में घटित हो गये हों। छन्दों के नामो को देखे तो उनमें दो प्रकार के नामो की बहुलता परिलक्षित होती है– पहला स्त्रीपरक नाम तथा दूसरा प्राकृतिक वस्तुपरक नाम। इन दोनों के नामों में सौन्दर्य एव लालित्य ही दिखायी देता है। ऐसे छन्द बहुत कम हैं जिनके नामों में कठोरता की गूँज सुनायी पडे। अत हम यह कह सकते हैं कि आचार्यों ने जब भी छन्द का नामकरण किया होगा, उन्होंने सौन्दर्य एव लालित्य को ही ध्यान में रखकर किया होगा, न कि उसकी अर्थवत्ता को।

पञ्चम अध्याय

छन्द

एवं

भाव

पंचम अध्याय

छन्द एवं भाव

छन्द एव भाव मे अन्त सम्बन्ध –

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत 'छन्दस् शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ' इस उपशीर्षक में छन्द के विविध अर्थों का विवेचन हुआ। उन विविध अर्थों में से छन्द का एक अर्थ है– 'आच्छादन करना।' यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि किसका आच्छादन ? इसका उत्तर इसकी व्युत्पत्ति में ही निहित है– 'छन्दयति सवृणोति भावानिति छन्द' अर्थात् छन्द भावो या नाना वर्ण्य विषयो को अपने में आच्छादित किये रहता है। छन्द का दूसरा अर्थ है– 'आह्लादित होना। पद्यबन्ध की जाति भी 'छन्द' कहलाती है। पद्य की विभिन्न आकृति छन्द द्वारा ही प्रकट होती है और उसके द्वारा मन का भी आह्लादन होता है। भाषा में आनन्द या रसोद्‌बोध न हो, तो वह कविता न होगी। मन के विभिन्न भावो को व्यक्त करते समय कवि विभिन्न छन्दों में वाक्य–रचना करते हैं। उस समय छन्द के ताल–ताल पर ऐसा स्पन्दन होता है, जिससे हमारी तदनुकूल मनोवृत्तियाँ भी स्पन्दित होने लगती हैं। जो मन में सुषुप्ति की अवस्था या बीज की अवस्था में रहता है, वह जब प्रकाशोन्मुख होता है, तभी उसकी गति (भाव) का हम अनुभव करते हैं, वह गति ही छन्द का रूप धारण करती है। हम स्वेच्छानुसार प्राय काव्य (पद्य) रचना किया करते हैं, परन्तु कभी–कभी उनमें भाव–शुद्धि का अभाव हो जाता है और तब आकार में कविता होने पर भी वह यथार्थ कविता नहीं होती। कविता तभी सत्य होती है, जब हम एक विशेष भाव से अनुप्राणित हुआ करते हैं और जब उस अनुप्राणन क्रिया को हम भावों में व्यक्त करना चाहते हैं, तब तदनुकूल छन्द भी अपने आप स्फुटित हो उठते हैं। छन्द

वस्तुत एक अद्भुत शक्ति है। युद्ध के समय रणभेरी आदि बाजे भी छन्द मे बजते हैं और उसके श्रवण मात्र से योद्धाओं के सोये हुए मनोवेग जाग उठते हैं। फलत· अनका हृदय युद्ध के लिए नाच उठता है। युद्ध में मृत्यु हो सकती है, यह भय उस समय उनके हृदय से दूर हो जाता है। अत· हमारे अन्तकरण में अनेक भाव सुषुप्तावस्था मे पडे रहते हैं, उन्हें सुर, तान व राग के द्वारा प्रबुद्ध किया जाता हैं। जिस प्रकार सङ्गीत के सुर, ताल और लय के द्वारा अन्तकरण की सोयी हुई मनोवृत्तियाँ जग जाती हैं, उसी प्रकार छन्द भी एक निश्चित वर्णों की सख्या में लय आदि के द्वारा भावो को उद्बुद्ध करते हैं। अगर हम यह कहें कि भावों के प्रस्फुटन के एक मात्र साधन 'छन्द' ही हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अवश्य ही छन्द बाहर से तो कुछ अक्षरों या वर्णों की योजना मात्र होते हैं, किन्तु ये गागर में सागर की तरह भावों को भरने की क्षमता रखते हैं। अन्य शब्दों में, छन्दों का अन्तस्तल भावों से आच्छादित रहा करता है। उदाहरणार्थ लौकिक छन्द में तो नहीं, किन्तु वैदिक छन्द में हम 'गायत्री' छन्द को लेते हैं। बाहर से देखने पर तो छ· अक्षरों वाला वैदिक छन्द विशेष है, परन्तु इसमें आध्यात्मिक शक्ति का भाव निहित है– 'गायन्त त्रायते यस्मात् गायत्री त्व तत· स्मृता' अर्थात् जो गान या अन्त·स्फुरित शक्ति उपासक को भवबन्धन से मुक्त करती है, वह गायत्री छन्द है। हाँ, लौकिक छन्द के रूप में 'गायत्री' छन्द भावों के प्रकाशन में समर्थ नहीं हुआ। एक दूसरे छन्द 'अनुष्टुप्' को लेते हैं। अनुष्टुप् का अर्थ है – सरस्वती या विद्यारूपिणी शक्ति[1] अर्थात् वह ज्ञान जिसके उदय होने पर भवबन्धन छूट जाता है। लौकिक सस्कृत छन्द का "मा निषाद ! " उदय भी इसी भाव का लेकर हुआ। महर्षि वाल्मीकि के मुख से अकस्मात् जो छन्द निकला, वह अनुष्टुप् छन्द ही है, जिसमें करुणा का भाव

---

[1] वामन शिवराम आप्टे– सस्कृत–हिन्दी कोश

स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, जो ससार से विरक्ति का एक कारण भी है। विरक्ति ही भवबन्धन से छूटने की शर्त है। यही कारण है कि छन्द अनादि काल से नाना वर्ण्य विषयो एव भावों को अपने मे आच्छादित किये हुए अबाध गति से बहती हुई कल–कल निनादिनी ह्रादिनी के समान मानवो के अन्तस्तल को उर्वर बनाता आ रहा है।

रसभावानुसारी छन्दों का प्रयोग –

सस्कृत–छन्दो का सघटन निश्चित रूप से रसों और भावों के अनुकूल होता है। कतिपय विशेष प्रकार के छन्द विशेष प्रकार के रसों और भावों को व्यक्त करने मे समर्थ होते हैं, जिनका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है–

सर्वप्रथम हम 'आर्या' नामक मात्रिक छन्द को लेते हैं। महाकवियों ने सामान्य रूप से 'प्रेम' भाव के प्रकाशन में 'आर्या' छन्द को उपयुक्त माना। आगे चलकर 'आर्या' लोक सस्कृति का छन्द बना, जिसमें प्रेम सम्बन्धी भावनाओं का प्रकाशन दिखायी देता है। महाकवि कालिदास ने प्रेम सम्बन्धी भावनाओं को प्रकाशित करने के लिए 'आर्या' का ही आश्रय लिया हैं।[1]

मन्दाक्रान्ता नामक वर्णवृत्त को यदि हम विरह का छन्द कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योकि छन्द का स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है, जो वियोगावस्था के चित्र को प्रस्तुत करता है। कालिदास, भवभूति, भट्टनारायण आदि महाकवियों ने इस छन्द का प्रयोग शृङ्गार रस, विशेष रूप से वियोग शृङ्गार रस के भाव को प्रकाशित करने के लिए किया है। महाकवि कालिदास ने इस छन्द का प्रयोग जिस सुन्दरता एव प्रचुरता से किया है, उतना सस्कृत का कोई दूसरा कवि नहीं कर सका। कालिदास ने अपने सम्पूर्ण 'मेघदूत' नामक खण्ड काव्य (गीतिकाव्य) की रचना

---

[1] अभिज्ञान शाकुन्तल प्रारम्भ के तीन अङ्क

केवल इसी एक ही छन्द में की है। उन्होंने 'मन्दाक्रान्ता' नामक एक ही छन्द मे 'मेघदूत' की रचना कर सस्कृत–कवियों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है। विरह भाव को व्यक्त करने वाले मन्दाक्रान्ता छन्द की रचना इतनी भावमयी, चित्ताकर्षक एव आह्लादक है कि एक दो उदाहरण देने का लोभ हम सवरण नहीं कर सकते –

'शब्दाख्येय यदपि किल ते य· सखीना पुरस्ता–

त्कर्णे लोल कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।

सोऽतिक्रान्त श्रवणविषय लोचनाभ्यामदृश्य–

स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपद मन्मुखेनेदमाह।।[1]

इस श्लोक में यक्ष की वर्तमान दशा की पूर्वदशा से तुलना करके उसकी विवशता प्रकट की गयी है। जो यक्ष सखियों के समक्ष स्पष्ट शब्दों में कहने योग्य बात को भी अपनी प्रिया के मुख के स्पर्श–लोभ से उनके कान में कहने के लिए उत्सुक रहा करता था, अब वही यक्ष, जब वह इतनी दूर है कि न तो वह प्रिया की बात को कानों से सुन ही सकता है और न उसे अपने नेत्रो से देख ही सकता है, प्रिया से अपना सदेश मेघ द्वारा कहलवाने के लिए विवश है।

दूसरा उदाहरण –

त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागै· शिलाया–

मात्मान ते चरणपतित यावदिच्छामि कर्तुम्।

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे,

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गम नौ कृतान्त·।।[2]

---

[1] मेघूदत, उत्तरमेघ पद्य– ४३

[2] मेघदूत उत्तरमेघ पद्य–४५

यहाँ पर यक्ष ने मेघ से कहलवाया है कि वह चित्र में बनायी गयी मान में रूठी हुई प्रिया के चरणो मे गिरकर मनाने की चेष्टा द्वारा मनोविनोद करना चाहता है, परन्तु दैव को वह भी स्वीकार्य नहीं है।

महाकवि कालिदास की तरह अन्य महाकवियों ने भी अनेक सदेश काव्य तथा दूतकाव्य लिखे हैं। हिन्दी में अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध ने भी 'पवनदूतिका' (प्रियप्रवास) मन्दाक्रान्ता छन्द मे ही लिखा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्दाक्रान्ता विरही प्रेमियों के हृदय की बात को कहने वाला छन्द बन गया है। यह विप्रलम्भ श्रृङ्गार रस के कथानकों, वर्षाऋतु के वर्णन, प्रवास, परदेशगमन तथा वासनादिकों के भाव को प्रकट करने मे समर्थ दिखलायी पडता है। मन्दक्रान्ता के प्रयोग के विषय में क्षेमेन्द्र का भी कथन है कि वर्षा और प्रवास के व्यसन में मन्दाक्रान्ता अच्छी लगती है– "प्रावृट्–प्रवास–व्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते।"[1]

आन्तरिक भावों को साधारण ढग से अभिव्यक्त करने के लिए 'मालिनी' छन्द महाकवियों की दृष्टि में सर्वाधिक उपयुक्त है। मालिनी छन्द के आरम्भ मे दो नगणों का आना और उसके बाद का सयोजन भी बडा भावपूर्ण है। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अङ्क में राजा दुष्यन्त को कोमल मृग पर बाण छोडने के लिये जो "न खलु न खलु" कहकर तापस द्वारा निषेध किया गया है, उसमें उनका त्वरायुक्त चिन्ता–भाव अच्छी तरह व्यक्त होता है। यह आन्तरिक भाव प्राय श्रृङ्गार से ही सम्बद्ध हुआ करता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अङ्क में जब पहली बार दुष्यन्त शकुन्तला को देखता है, तब शकुन्तला के सौन्दर्य के प्रति उसके जो आन्तरिक भाव उमड़ते हैं, उन्हें वह 'मालिनी' छन्द में ही प्रकट करता है, यथा–

---

[1] सुवृत्ततिलक विन्यास–३ पद्य–

सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्य,

मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्।।[1]

आन्तरिक भावो के प्रकाशन में भवभूति के उत्तररामचरित में 'मालिनी' वृत्त का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है। प्रथम अङ्क में चित्रदर्शन के दौरान जब राम विन्ध्य–वन मे गोदावरी नदी के किनारे पहुँचते हैं, तब वे सीता से कहते हैं कि समीप होने के कारण कपोलों से कपोल मिलाये हुए धीरे–धीरे, असम्बद्ध बातें करते हुए रात व्यतीत हो जाया करती थी, इस बात को भवभूति ने मालिनी वृत्त में आच्छादित किया है–

किमपि किमपि मन्द मन्दमासत्तियोगा–

दविरलितकपोल जल्पतोरक्रमेण।

अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो–

रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरसीत्।।[2]

एक स्थल और देखिये जब राम चन्द्रकेतु और लव के मध्य युद्ध के बाद लव को देखकर राम के अन्दर अन्तर्निहित भाव मालिनी वृत्त मे ही प्रकट होता है, यद्यपि यह भाव शृङ्गार से सम्बद्ध नहीं है, फिर भी अन्यन्त सुन्दर प्रयोग है–

'व्यतिषजति पदार्थानान्तर कोऽपि हेतु–

र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतय· सश्रयन्ते।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीक

द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्त।।[3]

---

[1] अभिज्ञान शाकुन्तल, अङ्क–प्रथम पद्य–

[2] उत्तररामचरितम्, अङ्क–१, पद्य–२७

[3] वही अङ्क– ६,पद्य–१२

इसके अतिरिक्त वियोग में प्रेम–भाव क चित्रण में भी 'मालिनी' वृत्त उपयुक्त पाया जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण का वह प्रसिद्ध उपाख्यान, जिसमें गोपियाँ श्रीकृष्ण के सखादूत उद्धव को 'भ्रमर' कहकर सम्बोधित करती हैं, 'मालिनी' वृत्त में ही है। 'भ्रमर' के कारण इस उपाख्यान को साहित्य में 'भ्रमरगीत' के नाम से जाना जाता है[1], यथा–

मधुप कितवबन्धो ! मा स्पृशाङ्घ्रि सपत्न्या

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्न ।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीना प्रसाद,

यदुसदसि विडम्ब्य यस्य दूतस्त्वमीदृक् ।।

सकृदधरसुधा स्वा मोहिनीं पाययित्वा,

सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।

परिचरति कथ तत्पादपद्म तु पद्मा,

ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पै ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्तरिक भावों के कोमल पक्ष को चित्रित करने मे 'मालिनी' वृत्त ही उपयुक्त है, चाहे वह शृङ्गार सम्बद्ध, हो चाहे सामान्य आन्तरिक भाव।

दीर्घ छन्दो में ओजभाव को प्रकाशित करने वाला छन्द है– स्रग्धरा। यह यद्यपि मन्दाक्रान्ता और मालिनी की भाँति अन्तस्तल की मार्मिक भावनाओं को प्रकाशित नहीं कर सकता, तो भी जहाँ पर ओजभाव तथा भयङ्कर झञ्झावातो का भाव अभिप्रेत हो, वहाँ यह सबसे उपयुक्त छन्द है। साथ ही स्रग्धरा छन्द में किसी के विस्तृत स्वरूप को व्यक्त किया जा सकता है। कालिदास ने तो भट्ट नारायण और भवभूति की अपेक्षा इस छन्द का प्रयोग कम किया है, किन्तु महाकवि बाण ने

---

[1] श्रीमद्भागवत पुराण स्कन्द–१०, अध्याय–४७ पद्य–१२ तथा १३

'चण्डीशतक' नामक ग्रन्थ में भगवती चण्डी की स्तुति पूरे सौ श्लोकों में केवल इसी स्रग्धरा छन्द मे की है। इस छन्द में ओजमयी कविता को पढकर चित्त फडक उठता है। 'चण्डीशतक' का एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

विद्राणे रुद्रवृन्द्रे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे,

जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति व्यक्तवैरे कुबेरे।

वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुष पौरुषोपघ्ननिघ्न,

निर्विघ्न निघ्नती व शमयतु दुरित भूरिभावा भवानी।।[1]

भट्ट नारायण ने स्रग्धरा छन्द का बहुश प्रयोग किया है। झञ्झावात (प्रचण्ड तूफान) को अभिव्यक्त करने वाले स्रग्धरा छन्द में दुर्योधन की वाणी सहज ही मुखरित हो गयी है। नेपथ्य की ओर कोलाहल को सुनकर भानुमती डर जाती है, तब दुर्योधन कहता है कि इसमें डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह प्रचण्ड वायु चारो दिशाओं में प्रवाहित हो रही है। वायु के प्रवेग से वृक्ष उखड रहे हैं और पेडो की शाखायें इधर—उधर गिर रही हैं। उडे हुए तिनके और धूलि से आकाश में चक्र बन गये हैं। तेज वायु के कारण झाँ—झाँ की ध्वनि हो रही है और छोटी—छोटी ककडियाँ उडकर गिर रही हैं—

'दिक्षुव्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पाशुदण्डोऽन्तरिक्षे,

झाङ्कारी शर्कराल पथिषु विटपिना स्कन्धकार्थै सधूम।

प्रासादाना निकुञ्जेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर—

श्चण्डारम्भ समीरो वहति परिदिश भीरु कि सम्भ्रमेण।।[2]

---

[1] चण्डीशतक पद्य—६६

[2] वेणीसहार — अक—२, पद्य—१६

कालिदासीय स्रग्धरा छन्द भी विस्तृत एव स्वाभाविक वर्णन के भाव प्रकाशित करने में सफल हुए हैं। उदाहरणार्थ अभिज्ञानशाकुन्तल का मङ्गलाचरण स्रग्धरा छन्द मे है। यह शिव के आठ रूपो का विस्तृत वर्णन करता है। एक अन्य स्थल पर वीर एव भयानक रस का सञ्चार करता हुआ स्रग्धरा छन्द डरे हुए मृग के स्वाभाविक वर्णन में थोडा भी न्यून नहीं होता–

ग्रीवाभङ्गाभिराम मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टि,
पश्चार्द्धेन प्रविष्ट शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढै श्रमविवृतमुखभ्रंशिभि कीर्णवर्त्मा,
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतर स्तोक मुर्व्यां प्रयाति।।[1]

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि स्रग्धरा छन्द प्रचण्ड रूप, चाहे वह झञ्झावात हो या स्तुति, को ही अभिव्यञ्जित करने में उपयुक्त है। क्षेमेन्द्र का कथन है कि वेग से चलते हुए पवन आदि के वर्णन मे स्रग्धरा अधिक चमत्कारी होता है।[2]

सामान्यत वीररस का सञ्चार कराने वाला छन्द 'शार्दूलविक्रीडित' सस्कृत–साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रकृति चित्रण में भी यह अपना सानी नहीं रखता, विशेष रूप से प्रकृति के भयावने रूप के प्रकाशन में तो यह अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त जहाँ लडाई का वर्णन करना होता है, किसी निराश आदमी में आशा का सञ्चार करना होता है, जहाँ कवि को समासगर्भा समस्त पदावली अभीष्ट हो, वहाँ कवि शार्दूलविक्रीडित छन्द का ही सहारा लेते हुए प्रतीत होते हैं। सस्कृत महाकवियो मे कालिदास, भवभूति, भट्टनारायण, श्रीहर्ष आदिकों ने 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द के भावानुसार भूरिश प्रयोग किये हैं। युद्ध के वर्णन के प्रसङ्ग में वेणीसहार

---

[1] अभिज्ञानशाकुन्तल, अङ्क–१, पद्य–७

[2] "सावेगपवनादीना वर्णने स्रग्धरा मता।'
— सुवृत्ततिलक, तृतीय विन्यास/२२

नाटक मे भट्टनारायण ने शार्दूलविक्रीडित छन्द का बडा ही सुन्दर प्रयोग किया है, जहॉ दुर्योधन का मित्र चार्वाक् कपटवेषधारी राक्षस आकर द्रौपदी से दुर्योधन और भीम के युद्ध का वर्णन करता है–

तस्मिन् कौरवभीमयोर्गुरुगदाघोरध्वनौ सयुगे,
सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रत सङ्गर ।
आलम्ब्य प्रियशिष्यता तु हलिना सञ्ज्ञा रहस्याहिता,
यामासाद्य कुरुत्तम प्रतिकृति दु शासनारौ गत ।।[1]

महाकवि भवभूति प्रकृति के भयावने रूप को प्रकाशित करने के लिए 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द का आश्रय लेते हैं। उत्तररामचरित के द्वितीय अङ्क में प्रकृति के इसी रूप का स्थल द्रष्टव्य है, जहाँ शम्बूक राम से मदोन्मत्त तथा उग्रक्रोधवाले हिंसक पशुओं से युक्त जनस्थान का वर्णन करते हुए कहता है कि कहीं तो पक्षियों के कलरव से शून्य तथा शान्त भू–भाग है, तो कहीं हिंसक जन्तुओं के प्रति डरावने शब्द हो रहे हैं, फिर अपनी इच्छा से सोये हुए बडे तथा भयङ्कर साँपों की श्वासों से सुलगी आग वाली बिलों के बीच के भाग में थोडे जलों वाली प्रान्त भूमि हैं, जहाँ पर प्यासे हुए गिरगिट अजगरो के पसीने का जल पी रहे हैं–

निष्कूजस्तिमिता क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्वस्वना,
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नय ।
सीमान प्रदरोदरेषु विरलस्वाल्पाम्भसो यास्वय,
तृष्यद्भि प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रव पीयते।।[2]

---

[1] वेणीसहार अङ्क–६, पद्य–१६

[2] उत्तररामचरित अङ्क–२ पद्य–१६

महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित में प्रकृति चित्रण को अभिव्यञ्जित करने मे सक्षम शार्दूलविक्रीडित छन्द अन्य स्थलों पर भी देखे जा सकते हैं। महाकवि कालिदास ने भी प्रकृति चित्रण या प्रकृति से अतिसामीप्य वाले वातावरण के वर्णन में प्रकृत छन्द का प्रयोग किया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रसिद्ध चार श्लोक 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में ही हैं, जो प्रकृति से अत्यन्त सन्निकटता से सम्बद्ध हैं। क्षेमेन्द्र का कथन है कि राजाओं की वीरता की प्रशसा में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।[1] विशाखदत्त की मुद्राराक्षस मे राजस्तुति का छन्द शार्दूलविक्रीडित ही है।

शान्त, भक्ति, श्रद्धा, देवस्तुति आदि भावों को आच्छादित किये हुए जो वृत्त महाकवियो को प्रिय लगा, वह है– शिखरिणी। इसके प्रयोग विषय के सन्दर्भ मे क्षेमेन्द्र का विचार है कि किसी वस्तु की सीमा–निर्धारण में शिखरिणी छन्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।[2] सीमा–निर्धारण में प्रयुक्त शिखारिणी छन्द का उदाहरण उन्होंने भर्तृहरि के सुभाषित सङ्ग्रह से दिया है–

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामत्र गुरवो,
विचित्रालापाना वयमपि कवीनामनुचर।
तथाप्येव ब्रूमो न हि परिहितात्पुण्यमपर,
न चास्मिन् संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम्।।

प्रकृत स्थल में परोपकार में पुण्य की तथा कामिनी में रम्यता की सीमा–निर्धारण के प्रसङ्ग मे शिखरिणी छन्द का प्रयोग उपपन्न है। शिखरिणी इससे कहीं अधिक शान्त एव आराध्य देव एव देवियों की स्तुति के भावों को अभिव्यञ्जित

---

[1] सुवृत्ततिलक विन्यास–३, पद्य–२२

[2] वहीं उपपन्न परिच्छेककाले शिखरिणी मता, ३/२०

करने में अधिक सफल हुई है। भक्त अपने इष्टदेव की स्तुति मे शिखरिणी छन्द को ही उपयुक्त मानता है। शङ्कराचार्य अपने किये हुए अपराधों के लिए क्षमा–याचना शिखरिणी छन्द मे ही करते हैं, यथा–

न मन्त्र नो यन्त्र तदपि च न जाने स्तुतिमहो,

न चाह्वान ध्यान तदपि च न जाने स्तुतिकथा ।

न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपन,

पर जाने मातस्त्वदनुशरण क्लेशहरणम्।।[1]

इसके अतिरिक्त शङ्कराचार्य ने लहरी काव्यो 'आनन्द लहरी' एव 'सौन्दर्य लहरी' की भी शिखारिणी छन्द में ही रचना की, जिसमें देवस्तुति का कार्य उच्च शिखर पर पहुँच गया। एक उदाहरण देने का लोभ सवरण नहीं कर सकते –

भवानि स्तोतु त्वा प्रभवति चतुर्भिर्न वदनै,

प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथन पञ्चभिरपि।

न षड्भि· सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति–

स्तदान्येषा केषा कथय कथमस्मिन्नवसर·।।[2]

पण्डितराज जगन्नाथ को स्तुतिभाव (भक्तिभाव) को प्रकाशित करने में शिखरिणी इतनी उपयुक्त लगी कि उन्होंने लहरीपञ्चक में से 'गङ्गालहरी' एव 'लक्ष्मीलहरी' को केवल शिखरिणी छन्द में ही रचा। अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये की गयी पवित्र गङ्गा की स्तुतिपरक लहरी 'गङ्गालहरी' से एक उदाहरण–

समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया किमपि तन्,

महैश्वर्यं लीलाजनितजगत खण्डपरशो ।

---

[1] स्तोत्ररत्नावली शङ्कराचार्य 'देव्यापराधक्षमापानस्तोत्र' पद्य–१

[2] " आनन्दलहरी, पद्य–१

हैं।[1] कोमलकान्त पदावली के विधाता कविकुलगुरु कालिदास की शिखरिणी कितनी ललित पदावली से युक्त है, एक उदाहरण–

यदालोके सूक्ष्म व्रजति सहसा तद्विपुलता,
यदद्धा विच्छिन्न भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद् वक्र तदपि समरेख नयनयो–
र्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्।।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिखरिणी छन्द का स्वरूप कुछ इस प्रकार का है, जिसका पाठ करते समय ही शान्त भाव आदि की अभिव्यक्ति होने लगती है।

वीर रस का भाव प्रकाशित करने वाले छन्दों में एक छन्द का नाम और आता है और वह है –'पृथ्वी'। पृथ्वी छन्द के प्रयोग के विषय में क्षेमेन्द्र का कथन है कि क्रोध, धिक्कार एव आक्षेप आदि मे पृथ्वी छन्द का सन्निवेश करना चाहिये,[3] किन्तु वीररस के भाव को भी अभिव्यञ्जित करने में 'पृथ्वी' छन्द पूर्णतया सफल हुआ है। 'उत्तररामचरितम्' के छठे अङ्क के प्रारम्भ में रामपुत्र लव तथा लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु के बीच युद्ध का वर्णन करते हुए विद्याधर कहता है कि कँगनो की झनझनाहट जैसा शब्द करती घटियों और गुञ्जित होती विशाल प्रत्यञ्चा तथा बाणों के द्वारा होते भीषण कोलाहल से युक्त धनुष को तानकर निरन्तर बाण वर्षा करते इन दो वीरों का अनूठा और भयङ्कर युद्ध अभी हो रहा है–

---

[1] भवभूते शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति।।
– सुवृत्ततिलक विन्यास–३, पद्य–३३

[2] अभिज्ञान शाकुन्तल अङ्क –१, पद्य– ६

[3] साक्षेपक्रोधधिक्कारे पर पृथ्वी भरक्षमा
– सुवृत्ततिलक विन्यास– ३ पद्य–२१

झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीक धनु–

ध्‍र्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्।

वितत्य किरतो शरानविरत पुन शूरयो–

र्विचित्रमभिर्वर्तते भुवनभीममायोधनम्।।[1]

यहाँ तदनुकूल पदावली का प्रयोग होने के कारण 'पृथ्वी' छन्द को पढते ही पाठक या श्रोता दोनों के हृदय मे वीररस का सञ्चार होने लगता है। ऐसा लगता है कि अभी भी युद्ध हो रहा है या धनुष की टङ्कार सुनायी दे रही है।

वसन्ततिलका छन्द प्राय· वीरभाव को व्यक्त करने के लिए महाकवियों के द्वारा प्रयुक्त किया गया है। क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में वसन्ततिलका के विषय में लिखा है कि वीर एव क्रोध दोनों भावो के एक साथ प्रकाशन मे वसन्ततिलका छन्द सुशोभित हुआ करता है।[2] भट्टनारायण के वेणीसहार नाटक से एक उदाहरण दर्शनीय है। द्रौपदी की सेविका चेटी के द्वारा उकसाये जाने पर भीम क्रोधित होकर द्रौपदी से कहते हैं–

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात–

सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।

स्त्यानापविद्धघनशोणितशोणपाणि–

रुत्तसयिष्यति कचास्तव देवि भीम·।।[3]

अर्थात् हे देवि ! यह भीम शीघ्र ही अपनी फड़कती भुजा से घुमायी गयी अपनी भीषण गदा के प्रहार से दुर्योधन के जङ्घों को चूर–चूर कर उससे निकलते हुए गाढे रक्त से रञ्जित हाथों द्वारा स्वय तुम्हारे केश कलापों को बाँधेगा।

---

[1] उत्तररामचरित अङ्क – ६, पद्य– १

[2] वसन्ततिलका भाति सङ्करे वीररौद्रयो विन्यास –३, पद्य–१६

[3] वेणीसहार अङ्क–६, पद्य–१

उत्तररामचरित के चतुर्थ अङ्क में वसन्ततिलका का प्रयोग द्रष्टव्य है, जहाँ लव वटुओं से कहता है कि प्रत्यञ्चा रूपी जीभ से आवेष्टित ऊँचे उठे दोनों सिरे रूपी दाढो से युक्त घोरघनों के घर्घर जैसा घोष करता यह धनुष ग्रास निकालने में तत्पर हसते यमराज के मुख की जँभाई की विडम्बना करता विकटमध्य–भाग वाला हो जाये–

'ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र–

मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।

ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र,

जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्।।'[1]

यहाँ वीर रस का सञ्चार करने में वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त है, क्योंकि छन्द का पाठ करते समय ही पाठक के अन्दर वीररस प्रवाहित होने लगता है। कहीं–कहीं पर वसन्ततिलका सामान्य भाव को व्यक्त करने मे सक्षम दिखायी पडता है। महाकवि कालिदास ने रघुवश के पञ्चम सर्ग के अन्तिम दस–पन्द्रह श्लोको मे वसन्ततिलका छन्द का बडा ही सुन्दर प्रयोग किया है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा–

तत्र स्वयवरसमाहृतराजलोक,

कन्याललामकमनीयमजस्य लिप्सो'।

भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ,

निद्राचिरेण नयनाभिमुखी बभूव।।[2]

यहाँ वसन्ततिलका रमणीय एव मर्मस्पर्शी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वसन्ततिलका विशेष रूप से वीर एव क्रोध भाव को अभिव्यक्त करने वाला छन्द है, किन्तु

---

[1] उत्तररामचरित, अङ्क–४ पद्य–२९

[2] रघुवश सर्ग–५, पद्य–६४

अन्य सामान्य भावों को अभिव्यक्त करने में भी सफल सिद्ध हुआ है। भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदिकों ने भी उपर्युक्त भावों को प्रकट करने के लिए वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया है।

भावों को अभिव्यञ्जित करने में कतिपय छोटे छन्द भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं एक छन्द है, जिसका नाम है– प्रमाणिका, जो उत्साह भाव की अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल है। इस छन्द से सेना के रणप्रयाण (March past) अर्थात् युद्ध के पूर्व युद्ध करने के लिए उद्यत सैनिकों मे जो उत्साह दिखायी पड़ता है, उसका अभिव्यञ्जन इस आठ अक्षर वाले छोटे से छन्द प्रमाणिका में पूर्ण रूप से होता है। जैसे– वीरों के उद्बोधन से भरा डॉ० हरिदत्त शर्मा का यह गीत दर्शनीय है–

चलन्तु वीरसैनिका, प्रयान्तु वीरसैनिका।
सगौरव सडिण्डिम, व्रजन्तु वीरसैनिका।।
करे सुशस्त्रमण्डन, स्वरे च सिहगर्जनम्।
जने जने व्रत दृढ, स्वमातृभूमिरक्षणम्।
स्वदेश–पुण्यगौरव, स्मरन्तु वीरसैनिका।।[1]

प्रमाणिका छन्द का जहाँ सबसे सुन्दर प्रयोग दिखायी पड़ता है, वह है–रावणकृत 'शिवताण्डवस्तोत्र' इसमें 'ताण्डव' (प्रचण्ड नाच) को आधार मानकर शिव की स्तुति की गयी है। दूसरे शब्दों में शिव के नृत्य 'ताण्डव' अर्थात् भयावने रूप का वर्णन किया गया है। इसी भयावने रूप के अनुसार अक्षरों का सन्निवेश भी प्रमाणिका छन्द मे किया गया है। यह शिव के नृत्य 'ताण्डव' की भयङ्करता का परिपोषक हुआ है। एक–दो पद्य उदाहरण के रूप में दिये जा रहे हैं–

जटाटवीगलज्जल–प्रवाहपावितस्थले,
गलेऽवलम्ब्य लम्बिता – भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन् – निनादवड्डमर्पय,

---

[1] गीत कन्दलिका– प्रयाणगीतम्, गीत–४

चकार चण्डताण्डव – तनोतु न· शिव· शिवम्।।

जटाकटाहसम्भ्रम – भ्रमन्निलिम्पनिर्झरी,

विलोलवीचिवल्लरी – विराजमानमूर्द्धनि।

धगद्धगद्धगज्ज्वलल् – ललाटपट्टपावके,

किशोरचन्द्रशेखरे – रति प्रतिक्षण मम।।[1]

छन्द तथा अलङ्कार में अन्त:सम्बन्ध –

जिस प्रकार छन्द–विशेष भाव–विशेष को अभिव्यञ्जित कर कविकर्म में चमत्कार उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अलङ्कार–विशेष की छन्द–विशेष में योजना की जाती है, तो एक अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। साथ ही छन्द सङ्गीतमयी प्रस्तुति में भी खरे सिद्ध होते हैं। विविध अलङ्कारों में अनुप्रास और यमक दो ही अलङ्कार ऐसे हैं जिनकी छन्द के साथ योजना करने पर अलङ्कार एव छन्द दोनों की शोभा मे चमत्कारिक रूप से वृद्धि हो जाती है। भावानुसारी अक्षरों का प्रयोग ही अनुप्रास है। आचार्य मम्मट ने 'वर्णसाम्यमनुप्रास' की व्याख्या करते हुए वृत्ति में लिखा है– "रसाद्यनुगत प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रास·।"[2] अर्थात् रसभावादि के अनुकूल वर्णों की योजना करना ही अनुप्रास है। चूँकि भावों का छन्दों से घनिष्ठ सम्बन्ध है और भाव तदनुकूल वर्णों के द्वारा ही अभिव्यञ्जित होते हैं, इसलिए परम्परया छन्द और अनुप्रास का परस्पर सम्बन्ध है, यथा– भट्टनारायण के वेणीसहार नाटक में भीमसेन क्रोधित होकर कहते हैं–

मन्थायास्तार्णवाम्भ· प्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीर·,

कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसघट्टचण्ड·।

कृष्णाक्रोधाग्रदूत कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवात·,

---

[1] स्तोत्ररत्नावली– शिवताण्डवस्तोत्र पद्य–१ तथा २

[2] काव्यप्रकाश की वृत्ति – ९/७९

केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम्।।[1]

वीरभावाभिव्यञ्जक स्रग्धरा वृत्त में इस प्रकार के वर्णों की योजना हुई है, जो सुनने में ही कठोर हैं। अत छन्द के कान में पडते ही ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थल वीर रस का है।

इसी प्रकार कोमल भाव को प्रकाशित करने वाले छन्दों में कोमल वर्णों का प्रयोग होता है, तभी तदनुकूल भाव प्रस्फुरित हुआ करते हैं। जैसे–गीतगोविन्द के मात्रिक छन्दों से निष्पन्न गीतों में यह स्वर माधुरी श्रवणीय है–

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे,

मधुकरनिकटकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे।

विहरति हरिरिह सरसवसन्ते,

नृत्यति युवतिजनेन समं सखि ! विरहिजनस्य दुरन्ते।[2]

छन्द एव अलङ्कार के अन्तःसम्बन्ध का सुमञ्जुल सम्न्वय यमक अलङ्कार और द्रुतविलम्बित छन्द में देखने को मिलता है, जहाँ प्रकृति के सौन्दर्य (ऋतुओ के अनुसार) का चित्रण हुआ करता है। जहाँ पर कविगण अपने पद्यों में प्रकृति के सौन्दर्य के वर्णन में यमक अलङ्कार की छटा दिखलाना चाहते हैं, वहाँ इसी छन्द का प्राय प्रयोग किया करते हैं, क्योकि वे यमक अलङ्कार के माध्यम से इस छन्द में अपने प्रेममय सौन्दर्य के चित्रण को उच्चतम शिखर पर ले जाने में सफल होते हुए रस के अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हैं। साथ ही इस छन्द में यमक अलङ्कार सुगम रीति से बैठाया जा सकता है अर्थात् इन दोनों के मिश्रण से रचना सरल हो जाती है। द्रुतविलम्बित छन्द के साथ यमक अलङ्कार का समन्वय सबसे

---

[1] वेणीसंहार अङ्क–१, पद्य–२२

[2] गीतगोविन्द सर्ग–१, गीत–३

पहले हम महाकवि कालिदास के रघुवश महाकाव्य में देखते हैं। महाकवि ने रघुवश के नवे सर्ग मे यमक और द्रुतविलम्बित का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है। उदाहरण—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवा—

स्तदनु षट्कोकिल कूजितम्।

इति यथा क्रममाविरभून्मधु—

र्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।।

श्रुति सुख—भ्रमरस्वनगीतय,

कुसुमकोमलदन्तरुचो बभु।

उपवन्तान्तलता पवनाहतै,

किसलयै सलयैरिव पाणिभि।।[1]

उपर्युक्त दोनों पद्यों में वसन्त ऋतु का सुन्दर चित्रण है। यद्यपि क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ सुवृत्ततिलक में द्रुतविलम्बित छन्द के प्रयोग विषयों की ओर सङ्केत नहीं किया है, किन्तु संस्कृत महाकवियों की प्रयोग परम्परा को देखें तो षडऋतु वर्णन, विशेष रूप से वसन्त ऋतु का वर्णन इसी छन्द मे और यमक के साथ अत्यन्त समीचीन होता है। अत हम कह सकते हैं कि यमक के साथ द्रुतविलम्बित छन्द ऋतुकालिक सौन्दर्य के भावों को अभिव्यञ्जित करने में सफल सिद्ध हुआ है। कालिदास के बाद अनेक महाकवियो माघ, भारवि, भट्टि, रत्नाकर आदिकों ने इसी तरह के प्रयोग किये हैं। यमक के साथ इस छन्द के प्रयोग का सूत्रपात महाकवि कालिदास ने किया, उसका चरमोत्कर्ष महाकवि माघ के शिशुपालवध में पाया जाता है। वसन्त ऋतु के वर्णन में ही निम्न स्थल दर्शनीय हैं—

---

[1] रघुवश सग –९ पद्य–२६ तथा ३५

'नवपलाशपलाशवन पुर·

स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।

मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्–

स सुरभि सुरभिं सुमनोभरै·।

मधुरया मधुबोधितमाधवी,

मधु–समृद्धिसमेधितमेधया।

मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद–

ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।'[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि कालिदास के प्रयोग में सामान्यत चतुर्थ पाद में यमक का प्रयोग है, किन्तु यह विस्तृत रूप के साथ माघ के प्रयोग मे चारो चरणो में पाया जाता है। अत एव स्पष्ट है कि प्रकृति प्रेमियो मे यह प्रयोग रुचिकर सिद्ध हुआ। यह प्रयोग अर्थात् यमक और द्रुतविलम्बित छन्द की युगपत् प्रवृत्ति माघ से आगे भी पायी जाती है। भट्टिकाव्य एव हरविजय महाकाव्य में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। आधुनिक सस्कृत–कवि पण्डित रामावतार शर्मा (जिनके विषय में 'आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्य एव छन्द नामक शीर्षक मे चर्चा की जायेगी) ने वसन्त ऋतु के वर्णन में इसी विधा को अपनाया है। वस्तुत· सस्कृत–कविता में यह अनूठा प्रयोग है। इसी प्रवृत्ति को माघ से आगे बढाते हुए महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य भट्टिकाव्य (रावणवध) में हनुमान् के द्वारा लङ्का जला दी जाने पर लङ्का की दुरवस्था का चित्रण यमक के साथ 'तोटक' छन्द में किया है। वस्तुत तोटक छन्द भी यमक के साथ द्रुतविलम्बित की तरह ताल एव लय की शीघ्रता के कारण

---

[1] शिशुपालवध सर्ग–६ पद्य २ तथा २०

साङ्गीतिक आनन्द देने मे खरा उतरता है। एक दो उदाहरण भट्टिकाव्य से दिये जा रहे हैं–

सरसा सरसा परिमुच्य तनु पतता पतता ककुभो बहुश।
सकलै सकलै परित करुणैरुदितैरुदितैरिव ख निचितम्।।
न गजा नगजा दयिता दयिता विगत विगत ललित ललितम्।
प्रमदा प्रमदाऽमहता महता मरण मरण समयात् समयात्।।[1]

छन्द एव अलङ्कार की योजना के अनुशीलन के पश्चात् हम देखते हैं कि यमक का द्रुतविलम्बित और तोटक छन्द से सयोग होने पर एक अद्भुत साङ्गीतिक वातावरण तैयार होता है, जो सस्कृत–कविता की एक अनूठी देन है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छन्दो–विधान काव्य–शिल्प का आवश्यक उपकरण है। काव्य के आत्मभूत तत्त्व रस का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध मानव अन्तस् की भाव तरङ्ग से है। मनोवेग काव्य में प्रयुक्त शब्दों की स्वर–लहरी से उद्वेलित हुआ करते हैं। यह स्वरलहरी प्रसङ्गानुसारिणी होती है और यही लय ही छन्द का आत्मतत्त्व है। अत काव्य के व्यङ्ग्य रस और छन्द का औचित्यपूर्ण सम्बन्ध कुशल कवि की काव्यकला का परिचायक है। इस विषय में कालिदास राय का कथन है– "छन्द शिल्पी रूपे वैचित्य सृष्टि करने नर्द। ताहार कवि मनेर आवैगेर सुरइ छनदे रचना वैचित्य करियारवे।[2] वस्तुतः कवि मधुर, ललित एव परुष भाव की व्यञ्जना भिन्न–भिन्न वर्णों के सयोजन से करता है। कवि प्रयास पूर्वक नव–नव छन्दों का निर्माण नहीं करता, अपितु भाव ही स्वत उससे छन्द की सृष्टि करवाते हैं।

---

[1] भट्टिकाव्य, सर्ग–१० पद्य – ४ तथा ९

[2] साहित्य–प्रसङ्ग पृष्ठ–१६२

वस्तुत छन्द एव भाव के अन्त सम्बन्ध का निर्धारण महाकवियों या सस्कृत–कवियो के प्रयोग बाहुल्य के आधार पर ही होता है। एतद्विषयक उपर्युक्त विवेचनो से यह स्पष्ट होता है कि छन्दों का प्रयोग यदि भावानुसारी होता है, तभी छन्द अपने सौन्दर्य की पराकाष्ठा को प्राप्त होता है। भावानुसारी छन्दो के प्रयोग के अपवाद भी देखने को मिलते हैं। अन्य शब्दों में, कहीं–कहीं पर अन्य भावों के सम्प्रेषण में भी छन्दो का प्रयोग समुलब्ध होता है। यथा– शृङ्गार–रस–प्रधान रत्नावली नाटिका मे सर्वाधिक जो छन्द प्रयुक्त हुआ है, वह है– शार्दूलविक्रीडित। एक–दो स्थलों को छोडकर सर्वत्र शार्दूलविक्रीडित छन्द शृङ्गार के प्रसङ्ग में ही प्रयुक्त हुआ है तथा ललितपदावली से युक्त भी है। उन स्थलों में एक स्थल दर्शनीय है, जहाँ कोमल पदावली के साथ–साथ शृङ्गार–रस की छटा दिखायी दे रही है। राजा विदूषक से कहता है कि निरन्तर वायु के आघात से अपना आयास प्रकट करती हुई, मदन नामक वृक्ष से युक्त इस उद्यान लता को अत्यधिक उत्कण्ठा वाली, जँभाई लेती हुई निरन्तर गहरे श्वासों से अपनी खिन्नता प्रकट करने वाली सुन्दरी के समान देखता हुआ मैं आज निश्चय ही महारानी के मुख को क्रोध से लाल कान्ति वाला कर दूँगा–

"उद्दामोत्कलिका विपाण्डुररूच प्रारब्धजृम्भा क्षणा–
दायासं श्वसनोद्गमैरविरतैरातन्वतीमात्मन ।
अद्योद्यानलतामिमा समदना नारीमिवान्या ध्रुव,
पश्यन्कोपविपाटलद्युति मुख देव्या करिष्याम्यहम्।।[1]

इसी प्रकार वसन्ततिलका छन्द महाकवियों के द्वारा प्राय वीर एव रौद्र भाव को अभिव्यञ्जित करने मे प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अपवाद के रूप में शृङ्गार के

[1] श्री हर्षदेव, रत्नावली–नाटिका अङ्क–२, पद्य–४

प्रसङ्ग में भी इस छन्द का प्रयोग मिलता है। श्रीमद्भागवत पुराण का 'वेणुगीत' वसन्ततिलका छन्द में ही है। जहाँ गोपियाँ वशीध्वनि को सुनकर उसकी मधुरता का वर्णन करने में गोपियाँ इतना तन्मय हो गयी, जैसे श्रीकृष्ण को पाकर आलिङ्गन करने लगी हों। इस विषय को लेकर ही गोपियाँ परस्पर एक–दूसरे से कहती हैं–

अक्षण्वता फलमिद न पर विदाम',

सख्य पशूननुविवेशयतोर्वयस्यै।

वक्त्र व्रजेश–सुतयोरनुवेणुजुष्ट

यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्।।

चूतप्रवालवर्हस्तबकोत्पलाब्ज

मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ।

मध्ये विरेजतुरल पशुपालगोष्ठ्या,

रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ।।[1]

वस्तुत 'वसन्ततिलका' छन्द का शाब्दिक अर्थ है– 'वसन्त ऋतु में शोभा को धारण करने वाली या वसन्त ऋतु का अलङ्कार। चूँकि वसन्त ऋतु में शृङ्गारिक विलासों की प्रधानता पायी जाती है, अत एव नामों की अर्थवत्ता की दृष्टि से वियोग का भाव वसन्ततिलका छन्द में अधिक शोभा को प्राप्त होता है तथा 'वेणुगीत' का छन्द वसन्ततिलका उपयुक्त है। किन्तु इस भाव के प्रकाशनार्थ प्रकृत छन्द का प्रयोग अपवाद स्वरूप ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य छन्दों का प्रयोग भी अपवादों से मुक्त नहीं है।

---

[1] स्कन्ध–१० अध्याय–२१ पद्य–७ तथा ८

निष्कर्ष –

छन्द एव भावों के अन्त‌सम्बन्ध के विषय में उपर्युक्त विवेचनों से हम देखते हैं कि छन्द में भाव को प्रेषित करने में अद्‌भुत शक्ति रहती है, किन्तु यह प्रश्न उठता है कि छन्द विशेष भाव विशेष को ही अभिव्यञ्जित करने मे क्यों उपयुक्त है? या महाकवियों ने एक भाव विशेष को प्रकाशित करने के लिए छन्द विशेष को ही क्यों चुना ? इसका उत्तर देना बडा ही दुष्कर प्रतीत होता है, क्योंकि यह कवि की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह अमुक भाव का प्रकाशन अमुक छन्द के माध्यम से करे। इसका उत्तर कुछ इस प्रकार से दिया जा सकता है कि छन्द विशेष का स्वरूप एव आकार ही इस विषय में कारण हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि प्रकृति के भयावने रूप का चित्रण विस्तार के साथ करना हो तो स्पष्ट है कि यह छोटे छन्दों के द्वारा नहीं, अपितु बडे छन्दो के द्वारा ही सम्भव है और उस छन्द मे तदनुकूल वर्णों के सयोग से ही । अत इसके लिए बडे आकार वाला शार्दूल–विक्रीडित ही उपयुक्त है। शिखरिणी भक्ति भाव को प्रकाशित करने वाला छन्द इस लिये माना गया क्योंकि यह भक्ति की विस्तृत विषयवस्तु को समाहित कर सकता है तथा साथ ही उसकी लय इतनी मधुर है कि उस लय के माध्यम से अपने आराध्य देव को प्रसन्न कर सकता है। अत स्पष्ट है कि निश्चित रूप से भाव विशेष का प्रकाशन छन्द विशेष के आकार एव स्वरूप पर निर्भर करता है।

षष्ठ अध्याय

संस्कृत-छन्द एवं अन्त्यानुप्रास

षष्ठ अध्याय

संस्कृत–छन्द एवं अन्त्यानुप्रास

काव्यशास्त्र एव काव्य मे अन्त्यानुप्रास –

सस्कृत–छन्दोविधान के प्रायोगिक विश्लेषण के सन्दर्भ में अन्त्यानुप्रास का विवेचन अपेक्षित है, जो काव्यशास्त्र में सबसे पहले आचार्य विश्वनाथ कविराज के द्वारा अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ साहित्यदर्पण में विवेचित हुआ। अनुप्रास अलङ्कार के भेद–विवेचन के सन्दर्भ मे आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि पहले स्वर के साथ ही यदि यथावस्थ व्यञ्जन की आवृत्ति हो, तो वह अन्त्यानुप्रास कहलाता है। इसका प्रयोग पद अथवा पाद आदि के अन्त मे ही होता है, इसी कारण इसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं–

> 'व्यञ्जन चेद्यथावस्थ सहाद्येन स्वरेण तु।
> आवर्त्यतेऽन्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्।।'[1]

यहाँ 'यथावस्थ' कहने का तात्पर्य यह है कि यथासम्भव अनुस्वार, विसर्ग तथा स्वर आदि पूर्ववत् ही रहने चाहिये। इस प्रकार हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पदान्त एव पादान्त में एक नियत क्रम से विसर्ग, स्वर एव व्यञ्जनमूलक ध्वनि समूह के साम्य–सयोग या आवृत्ति को अन्त्यानुप्रास कहते हैं।

आचार्य मम्मट ने भी वर्णानुप्रास के अन्तर्गत वर्णों के साम्य की चर्चा की है, किन्तु वहाँ केवल व्यञ्जन की समानता कही गयी है, साथ ही पद्य एव पाद के अन्त में नहीं, प्रत्युय पद्य के किसी भी भाग में हो सकता है, अत वह अन्त्यानुप्रास नहीं हो सकता।

---

[1] साहित्यदर्पण – परिच्छेद–१०, कारिका–७

सस्कृत–साहित्य में अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द–रचना अन्य साहित्य की अपेक्षा कम प्राप्त होती है। वस्तुत सस्कृत में यह प्रयोग बहुत अधिक नहीं प्रचलित था। अग्रेजी काव्य मे अन्त्यानुप्रासात्मक रचना सस्कृत की अपेक्षा अधिक उपलब्ध होती है। अग्रेजी छन्दों में सस्कृत के सम और अर्द्धसम छन्दों के समान वर्णों की एक समानता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता और जब भी कभी ऐसे छन्द प्रयोग में आते हैं जिनके पादों की वर्ण सख्या भी लगभग एक समान होती है और अन्त्यानुप्रास भी, तो इस स्थिति को 'Perfect Rhyme' कहा जाता है। यथा–

I wıll tune thy elegıes to trumpt sounds,
And wrıte thy epıtaph ın blood and wounds

हिन्दी साहित्य की रचनाओं में तो अन्त्यानुप्रास का प्रयोग बहुश देखने को मिलता है। यही कारण है कि वहाँ इसे एक अनिवार्य अङ्ग के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। भक्तिकाल एव रीतिकाल की लगभग सभी रचनायें अन्त्यानुप्रासमय ही दिखलायी पड़ती है। तुलसीदास की लगभग सभी कृतियाँ, उनमें भी रामचरितमानस पूरी की पूरी अन्त्यानुप्रासात्मक रचना है, या यह कहें कि हिन्दी का 'चौपाई छन्द' अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द है। यही प्रवृत्ति छायावादी कवियों की रचनाओं में बहुश देखने को मिलती है।

सस्कृत–काव्यों में अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द हम सबसे पहले वाल्मीकीय रामायण में पाते हैं–

मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्राः,
वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्रा ।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः,
प्रक्रीडितो वारिधरै सुरेन्द्र ।।[1]

---

[1] किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग–२८, पद्य–४३

सुन्दरकाण्ड का एक सर्ग पूरा का पूरा अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द रचना में उपनिबद्ध है, यथा–

"तत स मध्य गतमशुमन्त,
ज्योत्स्ना–वितान मुहुरुद्वमन्तम्।
ददर्श धीमान् भुवि भानुमन्त,
गोष्ठे वृष मत्तमिव भ्रमन्तम्।।"[1]

"लोकस्य पापानि विनाशयन्त,
महोदधि चापि समेधयन्तम्।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्त,
ददर्श शीताशुमथाभियन्तम्।।"[2]

एक उदाहरण और वहीं से –

"हसो यथा राजत–पञ्जरस्थ,
सिहो यथा मन्दरकन्दरस्थ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ,
चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थ।।[3]

उपर्युक्त सभी अन्त्यानुप्रासात्मक प्रयोग इन्द्रवज्रादि छन्दों मे हैं। ये प्रयोग काव्य में एक अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। छन्द के पाठ को सुनने वाले का मन काव्य की ओर सहज ही आकर्षित हो जाता है। ऐसे प्रयोग गीत्यात्मकता एव सङ्गीतमयी प्रस्तुति की कसौटी पर खरे सिद्ध होते हैं। यदि सस्कृत–काव्यो का अनुशीलन करें, तो रामायण के बाद स्तोत्र–काव्यों में इस शैली को बहुश अपनाया

---

[1] वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड सर्ग–५, पद्य–१
[2] वहीं " पद्य–२
[3] वहीं " " " पद्य–४

गया है, किन्तु इसके अतिरिक्त अनेक महाकवियो की कृतियों में भी अत्यन्त सुन्दर प्रयोग देख सकते हैं, यथा–आचार्य भरत के मालती वृत्त के उदाहरण में अन्त्यानुप्रास का कितना सुन्दर प्रयोग मिलता है–

शोभते बद्धया षट्पदाविद्धया।
मालती मालया मानिनी लीलया।।[1]

परवर्ती महाकवियों के काव्य में भी कहीं–कहीं पर इसका किञ्चित प्रयोग देखा जा सकता है, यथा–

'अजस्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखाशुभिन्नया।[2]
पुर प्रवालैरिव पूरितार्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया।।

'नैषधीयचरितम्' जैसे पाण्डित्यपूर्ण काव्य में भी यह दिखायी देता है, यथा–

निपीय तत्कीर्तिकथामथानया,
चिरायतस्थे विमनायमानया।[3]

दूसरा प्रयोग–

'रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा
शिलीमुखस्तोमसखेन शार्ङ्गिणा।[4]

एक और उदाहरण वहीं से–

'धिगस्तु तृष्णातरल भवन्मन:,
समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मन:।[5]

---

[1] नाटयशास्त्र अध्याय– १६ पद्य–
[2] शिशुपालवध सर्ग–१ पद्य–६
[3] नैषधीयचरित सर्ग–१ प–३७
[4] वहीं सर्ग–१, प–१११
[5] वहीं सर्ग–१ प–१३०

भवभूति के 'उत्तररामचरित' में भी अन्त्यानुप्रास का एक प्रयोग दर्शनीय है—

"म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि।
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।[1]

इनमें यद्यपि गीत्यात्मकता का अभाव है, फिर भी अन्त्यानुप्रास का प्रयोग द्रष्टव्य है।

अन्त्यानुप्रास के विषय में यह ध्यातव्य है कि इसका प्राण तत्त्व है— सङ्गीतमयी प्रस्तुति के साथ प्रभावपूर्णता। सस्कृत—भक्तिकाव्यों में या गीतों में यह शैली बृहद्रूप में अपनायी गयी। इसका कारण यह था कि सङ्गीतमयी प्रस्तुति के साथ—साथ अपने आराध्य देव को प्रभावित करना और यह क्षमता केवल गीतिकाव्यों मे देखने को मिलती है। स्तोत्रकाव्यो में अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द के प्रभूत उदाहरण देखे जा सकते हैं। उनमें भी कृष्णसम्बन्धी स्तोत्र में तो यह प्रयोग बडा ही सुन्दर बन पडा है, यथा शङ्कराचार्य द्वारा विरचित 'श्रीकृष्णाष्टकम्' से—

"भजे व्रजैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं,
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम्।
सुपिच्छगुच्छमस्तकं सुनादवेणुहस्तकं,
अनङ्गरङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम्।[2]

यह उल्लेख्य है कि भक्तिगीतो मे इस प्रकार की अन्त्यानुप्रासात्मक छन्दो—योजना भक्त इसलिये करता है, ताकि वह अपने आराध्य के समक्ष लय एव ताल के साथ गीत को गाकर उसे प्रसन्न कर सके, साथ ही स्वय को भी सन्तुष्टि

---

[1] अङ्क प्रथम पद्य—३६
[2] स्तोत्ररत्नावली

मिले। शङ्कराचार्य द्वारा विरचित चर्पटपञ्जरिका का प्रसिद्ध गीत 'भज गोविन्दम्' भक्त की आराध्य के समक्ष की गयी स्तुत्यात्मक प्रस्तुति एक अच्छा चित्र प्रस्तुत करती है—

"दिनमपि रजनी साय प्रात शिशिरवसन्तौ पुनरायात ।
काल क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायु ।।
भज गोविन्द भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते तव मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे।।
अग्रे वह्नि पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानु ।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाश ।
भज गोविन्द भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते।।[1]

भावानाप्रधान अन्त्यानुप्रासात्मक गीत का एक और उदाहरण—

"एहि मुरारे कुञ्जविहारे, एहि प्रणतजनबन्धो,
हे माधव मधुमथन वरेण्य केशव करुणासिन्धो।
रासनिकुञ्जे गुञ्जति नियत भ्रमरशत किल कान्त,
त्वामिह याचे दर्शनदान हे मधुसूदन शान्त।।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्तोत्रकाव्यों मे अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द अनेकश मिलते हैं, या दूसरे शब्दों में यह कहें कि स्तोत्रकाव्य का छन्द अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द ही है। कहीं—कहीं पर एक ही पद बार—बार आकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है।

---

[1] स्तोत्ररत्नावली, चर्पटपञ्जरिका गीत—१ तथा २

[2] वही, गोपिकाविरहगीतम्, गीत—१

स्तोत्रकाव्यों में जिस अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द के प्रयोग की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हुई थी, वह अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई 'गीतगोविन्दम्' में, जो जयदेव द्वारा विरचित है। यह पूर्णत· छान्दस सङ्गीत मे उपनिबद्ध है। यह काव्य अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द के प्रयोग का चूडान्त निदर्शन है। इसके सब गीत भक्तिपूर्ण हैं, जिनमें शास्त्रीय सङ्गीतमयी प्रस्तुति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसके गीतो मे कोमल वर्णों का प्रयोग बहुश· हुआ है। अन्त्यानुप्रासात्मक गीतों को सुनते ही श्रोता बिना अर्थ समझे ही आनन्द से भर उठता है, यथा–

"ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे।।
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते।
नृत्यति युवतिजनेन सम सखि विरहिजनस्य दुरन्ते।।[1]

एक अत्यन्त सुन्दर गेय अन्त्यानुप्रासात्मक छन्द का उदाहरण–

"चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली।
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली।।
हरिरिह मुग्धवधूनिकरे।
विलासिनि विलसति केलिपरे।।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'गीतगोविन्द' में सङ्गीतमयी प्रस्तुति से साथ अन्त्यानुप्रासात्मक छन्दोविधान अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गया। इनके अतिरिक्त सुवृत्ततिलक में अन्त्यानुप्रासात्मक रचनाये देखने को मिलती है, यथा– स्वागता छन्द में अन्त्यानुप्रासात्मक का प्रयोग–

---

[1] गीतगोविन्दम्, सर्ग–१, गीत–३

[2] वही सर्ग–१, गीत–४

व्यालवन्ति तरला जलधारा· पान्थसङ्गमधृते परिहारा·।

प्रान्तरत्ननिभविद्युद्दारा· प्रावृष· पृथुपयोधरहारा·।।[1]

वहीं तोटक छन्द में निबद्ध यह पद्य है–

मदघूणितलोचनषड्चरण,

घनरागमनङ्गकराभरणम्।

कमलद्युतिमुग्धवधूवदन,

सुकृती पिबतीह सुधासदनम्।।[2]

प्रकृत प्रयोग में कितना सुन्दर सयोजन हुआ है– तोटक और अन्त्यानुप्रास का। इसे लय, ताल के साथ गाये जाने पर श्रोता का चित्त नाच उठता है।

प्रहरणकलिता छन्द मे –

सुरमुनिमनुजरूपचितचरणा

रिपुभयचकितत्रिभुवन शरणाम्।

प्रणमत महिषासुवधकुपिता,

प्रहरणकलिता पशुपतिदयिताम्।।[3]

यह पद्य 'देवी' 'दुर्गा' की स्तुति से सम्बद्ध किसी स्तोत्र काव्य का है।

'वितान' छन्द में –

कङ्कालमालधारिणं

कन्दर्पदर्पहारिणम्।

ससारबन्धमोचन

वन्दामहे त्रिलोचनम्।।

---

[1] सुवृत्ततिलक विन्यास–२

[2] वही

[3] वृत्तरत्नाकर

त्रिलोचन भगवान् शिव की वन्दना होने के कारण यह छन्द भी किसी स्तोत्रकाव्य का ही जान पडता है।

छन्द:शास्त्रीय ग्रन्थो में भी अन्त्यानुप्रासात्मक पद्य प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध होते हैं। लोक मे प्रचलित छन्दों का सस्कृतीकरण करते हुये श्रीकृष्ण भट्ट ने 'झुल्लन' छन्द के उदाहरण मे अन्त्यानुप्रासात्मक पद्य दिया है–

'शेषपतगेशविबुधेशभुवनेशभूतेशसविशेषसुनिदेशधरणी,
कन्दलितसुन्दरानन्दमकरन्दरसमज्जनमिलिन्दभवसिन्धुतरणी।
ज्ञानमण्डनपरा कर्मखण्डनधरा शमनदण्डनपराभूतिहरणी,
नित्यमिह वक्ति मुनिवृन्दमनुरक्तिमज्जयति हरिभक्ति रासक्तिकरणी।।[1]

'खञ्जविशाल' छन्द में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग दर्शनीय है–

'वृन्दारण्यचारिणी कदम्बपुष्पभारिणी मिलिन्दवृन्दहारिणी सुगन्धिपुरगामिनी,
भक्तलोकपालिनी दयालुतानिभालिनी रमेशसगलालिनी महाघशैलदामिनी।
पारिजातपुष्पतारकौघमण्डिता रमेशचन्द्रसङ्गिनीव कापि नीलयामिनी,
भूरिभङ्गरङ्गिणी तरङ्गिणीषु निस्तुला करोतु मे शुभानि सा कलिन्दजेतिनामिनी।।[2]

दु:खभञ्जन कवि के द्वारा प्रदत्त 'आन्दोलिता' छन्द का लक्षण जो अपने आप में उदाहरण भी है, में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग द्रष्टव्य है–

'यत्र दशदशकला अनुविरतिरुज्ज्वला तदनुमुनिमितकला यर्हि जाता।
सप्तगुणसम्मिता: पादमात्रा: स्थिता ललितपदराजिता याऽवदाता।।
रसिकजनमानिता सपदि मुदमाहिता वितरति विगाहिता लोकजाता।
भुजगपतिनोदिता कविकुलविनोदिता छन्द आन्दोलिता यातपाता।।[3]

---

[1] वृत्तमुक्तावली २/६१
[2] वही ३/२६३
[3] वाग्वल्लभ मात्रासम–६

अन्त्यानुप्रास :– प्रयोग की प्रवृत्ति–

अन्त्यानुप्रास के प्रयोग की प्रवृत्ति के विषय में साहित्यदर्पणकार का कथन है कि यह पद के अन्त में या पाद के अन्त मे प्रयुक्त होता है। अत इसके प्रयोग की प्रवृत्ति पादान्त मे, पदान्त में तथा पादान्त–पदान्त आदि रूपों में देखने को मिलती है। उदाहरण के माध्यम से हम इस प्रवृत्ति को स्पष्ट कर सकते हैं, यथा–

पादान्त प्रयोग की प्रवृत्ति–

सस्कृत–काव्यो में पादान्तात्मक प्रयोग की प्रवृत्ति बहुश समुपलब्ध होती है–

सोऽय मुनीन्द्रजनमानसतापहारी,

सोऽय मदव्रजवधूवसनापहारी।

सोऽय तृतीयभुवनेश्वरदर्पहारी,

सोऽय मदीयहृदयाम्बुरुहापहारी।।[1]

पादान्त का एक उदाहरण और–

केश काशस्तबकविकास, कायाप्रकटितकरभविलास।[2]

चक्षुर्दग्धविराटककल्प, त्यजति न चेत काममनल्पम्।।

पदान्तात्मक प्रवृत्ति–

सुन्दरगोपाल उरवनमाल नयनविशाल दु:खहरम्।

वृन्दावनचन्द्रमानन्दकन्द परमानन्द धरणिधरम्।।

वल्लभघनश्याम पूर्णकाम अत्यभिराम प्रीतिकरम्।

भज नन्दकुमार सर्वसुखसार तत्त्वविचार ब्रह्मपरम्।।[3]

---

[1] श्रीकृष्णकर्णामृतम्, शतक–१, श्लोक–८१
(Sanskrit Poetry- from Vidyakara's treasury-by Denial H H Ingals, Harward University - Cambrige Massachusets, 1968

[2] साहित्यदर्पण (१०/६ की वृत्ति)

[3] स्तोत्ररत्नावली, नन्दकुमाराष्टक

उपर्युक्त उदाहरण में प्रत्येक पद के अन्त में स्वर, व्यञ्जन एव अनुस्वार का साम्य है, अत यहाँ पदान्त अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है।

पदान्त–पादान्तात्मक प्रवृत्ति–

प्रथम समागमलज्जितया, पटुचाटुशतैरनुकूलम्।

मृदुमधुरस्मितभाषितया, शिथिलीकृतजघनदुकूलम्।।[1]

प्रकृत प्रयोग पदान्त होने के साथ पादान्त भी है, अत यहाँ अन्त्यानुप्रास की पदान्त–पादान्तात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सस्कृत–छन्दों में अन्त्यानुप्रास की त्रिविध प्रवृत्तियाँ दिखायी पडती है और यह 'अन्त्यानुप्रास' नाम की दृष्टि से भी सङ्गत है, क्योंकि छन्द में 'अन्त' की दो ही स्थितियाँ हैं– एक पद का अन्त और दूसरा पाद का अन्त, किन्तु इसके अतिरिक्त कहीं–कहीं एक ही शब्द बार–बार प्रयुक्त होकर लयात्मक सुमधुर गीत की मधुरिमा को बनाये रखता है। ध्यातव्य है कि इस स्थल पर यमक अलङ्कार का प्रसङ्ग नहीं प्रसक्त होता। वल्लभाचार्य द्वारा विरचित 'मधुराष्टक' इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है, यथा–

"अधर मधुर वदन मधुर नयन मधुर हसित मधुरम्।[2]

हृदय मधुर गमन मधुर मधुराधिराधिपतेरखिल मधुरम्।।

यहाँ द्रष्टव्य है कि 'मधुर' शब्द बार–बार प्रयुक्त होता हुआ गीत की मधुरिमा में चार चाँद लगा देता है। उल्लेख्य है कि यहाँ पर अन्त्यानुप्रास की स्थिति लयबद्धता (जो कि अन्त्यानुप्रास का प्राण है) के कारण मानी जा सकती है। ऐसे प्रयोग रामायण, महाभारत आदि मे भी अनेकश प्रयुक्त हुये हैं।

---

[1] गीतगोविन्दम्, सर्ग–२ गीत–६

[2] स्तोत्ररत्नावली 'मधुराष्टकम्'

निष्कर्ष –

उपुर्यक्त विवरणों एव उद्धरणो से हम यह सहज रूप से कह सकते हैं कि अन्त्यानुप्रासात्मक प्रयोग छन्दोबद्ध रचना के सौन्दर्याधायक एव हृदयावर्जक तत्त्व सिद्ध होते हैं। अलङ्कार वैसे भी काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं, लेकिन सङ्गीतमयी प्रस्तुति की दृष्टि से अन्त्यानुप्रास अन्य अलङ्कारों से बढकर है।

प्रश्न उठता है कि 'अन्त्यानुप्रासात्मक प्रयोग' सस्कृत–छन्द को सङ्गीत की डोरी मे बाँध देते हैं, जिस कारण सुश्राव्य तो होते ही हैं, साथ ही सुग्राह्य भी होते हैं, तो क्या कारण रहा कि कालिदास, भवभूति आदि महाकवियों ने इस शैली को नहीं स्वीकार किया? साथ ही स्तोत्रकाव्य तथा जयदेव के बीच इस शैली का क्यों अभाव रहा ? इन प्रश्नों का उत्तर देना बड़ा ही दुष्कर कार्य प्रतीत होता है। इस विषय में जहाँ तक यह कहा जा सकता है कि सस्कृत–छन्दों में रामायण के अतिरिक्त प्रकृत स्वर व्यञ्जन की समता का सयोजन गीतिकाव्यों में ही देखने को मिलता है, भक्तिकाव्यों में भी, महाकाव्यों एव चरितकाव्यों तथा नाट्यकाव्यों में नहीं। वार्णिक वृत्त में भी अन्त्यानुप्रास के सयोजन से गीत्यात्मकता आ ही जाती है। अत यह भी नहीं कहा जा सकता कि वार्णिक वृत्त में यह सयोजन उपयुक्त न होने के कारण इस शैली को नहीं अपनाया गया। हाँ, यह हो सकता है महाकाव्यादि में अन्त्यानुप्रास का सयोजन इतिवृत्त को कहने में समर्थ न हो। इसीलिये कालिदास प्रभृति महाकवियों ने अपने छन्दोविधान में इस शैली को नहीं स्वीकार किया होगा। स्तोत्रकाव्य (शङ्कराचार्य आदि के द्वारा विरचित) तथा जयदेव के बीच जितने भी महाकाव्य एव नाट्यकाव्य लिखे गये, वे सभी सुश्राव्यता एव सुग्राह्यता के लिए न लिखे जाकर, अपितु पाण्डित्य प्रदर्शन हेतु लिखे गये हैं, जिस कारण ललित पदावली से युक्त अन्त्यानुप्रासात्मक काव्य का अभाव सा हो गया। अत· स्पष्ट है कि

सस्कृत–छन्दोविधान में अन्त्यानुप्रासात्मक शैली गीतिकाव्यों एव भक्तिकाव्यों में ही प्रचलित हुई, महाकाव्य आदि छन्दोबद्ध ग्रन्थों में यह अपना स्थान नहीं बना पायी।

आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्यो मे अन्त्यानुप्रास –

जयदेव के बाद अन्त्यानुप्रास का प्रयोग सस्कृत–छन्दोविधान मे लगभग समाप्तप्राय सा हो गया था, किन्तु आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्यों एव भक्तिकाव्यो में इस प्रयोग की भरमार सी हो गयी है। शायद सङ्गीतात्मकता, तालबद्धता एव लयबद्धता ही इसका कारण है। श्रीधर भास्कर वर्णेकर, जानकीवल्लभ शास्त्री, हरिदत्त शर्मा, राजेन्द्र मिश्र, श्री निवासरथ, राधावल्लभ त्रिपाठी, इच्छाराम द्विवेदी आदिकों के गीतिकाव्यो मे अन्त्यानुप्रासात्मक रचनायें सप्तम अध्याय में आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्यो में प्रयुक्त छन्दो के विवेचन के अवसर पर देख सकते हैं।

सप्तम अध्याय

संस्कृत-गीतिकाव्य में छन्दोविधान

सप्तम अध्याय

संस्कृत-गीतिकाव्य में छन्दोविधान

प्रकृत अध्याय में छन्द का सङ्गीत के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए सस्कृत–गीतिकाव्यो में प्रयुक्त छन्दों के स्वरूप का विवेचन किया जा रहा है–

छन्द का सङ्गीत से सम्बन्ध –

षष्ठ अध्याय मे सस्कृत–छन्द एव अन्त्यानुप्रास की विविध प्रवृत्तियों पर शोधपरक प्रकाश डाला गया। चूँकि अन्त्यानुप्रास के माध्यम से छन्द की सङ्गीतमयी प्रस्तुति करने में हम सफल होते हैं, अत· प्रश्न उठता है कि क्या छन्द का सङ्गीत से कोई सम्बन्ध है ? इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप हम सबसे पहले 'सङ्गीत' को पारिभाषित कर रहे हैं। सङ्गीत का अर्थ है – "नृत्य वाद्यञ्च गीतञ्च त्रय सङ्गीतमुच्यते" अर्थात् जहाँ नृत्य, गीत एव वाद्य का एक साथ प्रस्तुतीकरण हो, वह सङ्गीत तत्त्व के नाम से अभिहित है, किन्तु इस परिभाषा से हमें अपने प्रश्न का उत्तर खोजने में अपेक्षित सफलता नहीं मिलती, क्योंकि कतिपय छन्द ऐसे हैं जिन्हें नृत्य एव वाद्य की सहायता के बिना ही साङ्गीतिक प्रस्तुति की उन्नत अवस्था में पहुँचाया जा सकता है। यदि हम सङ्गीत को इस तरह से पारिभाषित करें – "सम्यक् रूपेण गीयते यत् तत्सङ्गीतम्" अर्थात् जिसमें गेयता धर्म हो या यह कहें कि जिसे सम्यक् रूप से गाया जाये, वह सङ्गीत है। इस दृष्टि से छन्द का सङ्गीत (गीत) के साथ बडा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। गीतों को उनके उपकरण आरोह–अवरोह, ताल आदि से गाने पर जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, वही आनन्द यदि हम छन्द का उसके विविध अवयवों यति, गति (लय) आदि से पाठ करते हैं, तो प्राप्त होता है।

मात्रिक छन्दो मे गीत–रचना :–

सस्कृत–गीति या गीत–रचना वस्तुत मात्रिक छन्दो में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी रूप से हो सकती है। गीति का प्राण तत्त्व है– लय के साथ–साथ मधुरता। गीति में लय तत्त्व प्रधान हुआ करता है, जबकि महाकाव्यादि लय प्रधान न होकर भाव तथा अर्थगाम्भीर्य प्रधान हुआ करते हैं। गीति का विषय सर्वथा कोमल हुआ करता है, जबकि महाकाव्यादिकों का कठोर तथा कोमल दोनों। यही कारण कारण है कि गीतों की रचना मात्रिक छन्दों में ही हुई है। सस्कृत सर्जनविधा में गीति–विधा को छोडकर जितनी भी विधायें हैं, उन सभी विधाओं में प्राय· प्रसङ्गानुसार छन्दो का चयन होता है। महाकाव्यादि वार्णिक वृत्त में चमत्कृत होते हैं, किन्तु गीति विधा में केवल एक ही तत्त्व है और वह है– लयमिश्रित मधुरता तथा यह मात्रिक छन्दों के माध्यम से विशेषत आह्लादित होती है। अन्य शब्दों में, गीतिसर्जना या रचना मात्रिक छन्दों में वार्णिक छन्दो की अपेक्षा अधिक मधुर होती है।

ध्रुवाविधान के साथ मात्रिक छन्दो में गीति की परम्परा सर्वप्रथम आचार्य शङ्कर के स्तोत्र काव्यों में देखने को मिलती हैं। इससे पहले मात्रिक छन्दों में गीति–रचना देखने को नहीं मिलती । मात्रिक छन्द में गीति की एक झलक देखते हैं– आचार्य शङ्कर के 'चर्पटपञ्जरिका स्तोत्र में –

'दिनमपि रजनी साय प्रात· शिशिरवसन्तौ पुनरायात ।
काल क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायु ।।
भज गोविन्द भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते तव मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे।। (ध्रुवपदम्)

प्रकृत स्तोत्रात्मक गीति को देखने पर यह ज्ञात होता है कि इसके प्रत्येक चरण में सोलह–सोलह मात्रायें हैं, किन्तु वार्णिक छन्द की परिधि में नहीं है, क्योंकि वर्णों की सख्या बराबर नहीं है। अत यह मात्रिक छन्द है। यह एक सामान्य मात्रिक

छन्द है। हाँ, मात्राओ की सख्या समान होने के कारण इसे 'मात्रासमक' नामक मात्रिक छन्द कह सकते हैं। छन्दशास्त्रीय आचार्यों के द्वारा लक्षित 'मात्रासमक' नामक मात्रिक छन्द नहीं हैं, क्योकि उसमें नवीं मात्रा का लघु रूप होना आवश्यक है, जबकि यहाँ लघुरूप न होकर गुरु रूप है। अत इसे हम सामान्य मात्रिक छन्द ही कहेगें। आचार्य शङ्कर के द्वारा ही विरचित 'गोपिकाविरहगीत' में मात्रिक छन्द के एक दूसरे रूप का दर्शन करते हैं–

'एहि मुरारे कुञ्जविहारे एहि प्रणतजनबन्धो,

हे माधव मधुमथनवरेण्य केशव करुणासिन्धो। ध्रुवपदम्

रासनिकुञ्जे गुञ्जति नियत भ्रमरशत किल कान्त

एहि निभृतपथपान्थ।

त्वामिह याचे दर्शनदान हे मधुसूदन शान्त।।

इस गीत में मात्रा एव वर्ण दोनों की सख्यायें समान नहीं हैं। अत इस गीत में मात्रिक छन्द का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। इस प्रकार हम स्तोत्रकाव्यों में मात्रिक छन्दों के दो रूप देखते हैं जिनमें गीत के तीन तत्त्व विद्यमान हैं– अन्त्यानुप्रास, ध्रुवविधान एव साङ्गीतिकता। मात्रिक छन्दों में इन विशेषताओं को भलि–भाँति परखा जा सकता है।

गीतगोविन्द में छान्दसी योजना :–

आचार्य शङ्कर के बाद उपलब्ध गीतिकाव्यों में जो प्रथम गीतिकाव्य मिलता है, वह है– जयदेव का गीतगोविन्द। आचार्य शङ्कर और जयदेव के मध्य मात्रिक छन्दो में गीतिरचना का अभाव पाया जाता है। स्तोत्रात्मक काव्यों की तरह गीतगोविन्द में भी वार्णिक तथा मात्रिक दोनों छन्दों का प्रयोग हुआ है। गीति वाला भाग पूरा का पूरा मात्रिक छन्द में ही उपनिबद्ध है। गीतगोविन्द बारह सर्गों में विभक्त है, जिसमे पूर्व में वार्णिक छन्द तथा बाद में गीत हैं, जो मात्रिक छन्द में हैं।

स्तोत्रकाव्यो में मात्रिक छन्द का आश्रय लेकर गीति की जो धारा प्रवाहित हुई थी, उसका उफान वाला रूप गीतगोविन्द में प्रकट हुआ है। वस्तुत गीति का आत्मतत्त्व लयमिश्रित मधुरता इन्हीं मात्रिक छन्दो मे जीवन्त हो उठी है। जयदेव ने स्वय अपनी सरस्वती को 'मधुर–कोमल–कान्त–पदावली' कहा । जितनी मधुर, कोमल तथा ललित पदावली से युक्त गीत इसमें हैं, सस्कृत की अन्य कविता में बहुत कम हैं। अन्य शब्दों में, हम कह सकते हैं कि मात्रिक छन्द में गीतिविषयक यह ग्रन्थ अपूर्व है। यह रचना छन्दों में परिवर्तनीय क्रान्ति लायी, परिणामस्वरूप सस्कृत में एक नवीन रचना प्रणाली का विकसन हुआ। हाँ, गीतगोविन्दकार ने स्तोत्रात्मक गीतों को ही अपनी रचना का आधार माना होगा। इसके गीत अधिकतर आठ छन्दों वाले हैं, इसीलिये इसे 'अष्टपदी' या 'अष्टताल' कहते हैं।

गीतिभाग को छोडकर गीतगोविन्द में पारम्परिक छन्दों की सख्या बानवे है, जिनमें मालिनी, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, शिखरिणी, स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित आदि बारह वार्णिक वृत्तों का प्रयोग हुआ है। शृङ्गार वर्णन, भक्तिवर्णन तथा कोमल प्रसङ्गों में मालिनी तथा वसन्ततिलका का प्रयोग अपने नाम को भी सार्थक करता है। इन्हीं पारम्परिक छन्दों में एक मात्रिक छन्द भी है और वह है– 'आर्या', जो सख्या में तीन हैं– यथा–

'अथ ता गन्तुमशक्ता चिरमनुरक्ता लतागृहे दृष्ट्वा।[1]

तच्चरित गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह।।

शेष दो स्थल सातवें तथा नवें सर्ग में हैं।[2] आर्या सस्कृत ग्रन्थों में सबसे अधिक प्रयुक्त किया गया है। यह 'हाल' की गाथा सप्तशती की गाथा से बिलकुल मिलता–जुलता

---

[1] सर्ग– ६ पद्य–१

[2] सर्ग–६ पद्य–२ सर्ग–६ पद्य–१

है। यद्यपि पारम्परिक या शास्त्रों में लक्षित आर्या मात्रा एव गणों में व्यवस्थित की गयी है। गीतगोविन्द के गीतो के समान इसके तदनुकूल स्पष्ट उच्चारण गणात्मक छन्दों तथा साङ्गीतिक मात्रिक छन्दों मे भेद करते हैं। परस्पर मिश्रित तीन पङ्क्तियों की सरचनात्मक प्रवृत्ति और अनुकूल पङ्क्ति सम्पूर्ण चौबीस गीतो में प्रस्तुत की गयी है। प्रत्येक गीत मे निश्चित पङ्क्ति 'ध्रुवपद' कहलाती है, जो दो पङ्क्तियों के बाद दुहरायी जाती है। यह गीत के बोल की एक निश्चित तथा सार्थक पङ्क्ति है। यह पूर्व में दो पङ्क्तियों के विस्तृत विवरण के लिए सन्दर्भ में सहायता करता है तथा उसके अर्थ को भी तीव्रता प्रदान करता है।

प्रत्येक गीत में विविध रूपों वाली पङ्क्तियाँ पाद कहलाती हैं। विशेष रूप से मात्रिक छन्दों की प्रवृत्ति में अन्त्यानुप्रासात्मक कविता के जोडों की शृङ्खला है। इस कारण इसे 'छन्दमाला' (Stanza-series) की पदावली से अभिहित किया जाता है। जयदेव के गीतगोविन्द में मात्रिक छन्दों का यही स्वरूप प्रकट हुआ है।

गीतगोविन्द मे मात्रिक छन्दों की व्यवस्था गीतों में अन्त्यानुप्रासात्मक कविता की रचना करते ही एक विशेष छन्द गीतों में एक जोड़े से सम्बन्धित है और छादसिक व्यवस्था एक–दूसरे गीतों से सम्बद्ध है। जयदेव के गीतों में प्रयुक्त छादसिक प्रवृत्ति के उपर्युक्त तीन वैविध्य जयदेव की कविता की श्रुति–सुखदता को सिद्ध करते हैं।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि गीत के मात्रिक छन्द और आर्या जैसे पारम्परिक मात्रिक छन्दों में पर्याप्त मतभेद हैं। गुरु अक्षरों का प्रयोग प्रकृत गीत के मात्रिक छन्दों में विरल रूप से मिलता है। वे चतुर्मात्रिक गणों में, पादों तथा पडक्ति के अन्त में प्रारम्भिक स्थिति के लिये ही मुख्यत प्रयुक्त दिखायी देते हैं। यह

गीत को उनके लयात्मकता तथा एक निश्चित अन्त्यानुप्रासात्मक मात्राये प्रदान करता है। गीतगोविन्द में इसके अतिरिक्त और कहीं भी आग्रह नहीं है।

गीतों के छन्द और उसके उच्चारण का माध्यम स्पष्ट रूप से अपभ्रश जैसी प्राकृत भाषा मे मध्यकालिक कविता के छन्दों से साम्य रखते हैं। गीत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण छादसिक प्रवृत्ति अपभ्रश जैसी सस्कृतेतर भाषा की मध्यकालिक कविता की मूल कविता के आकार के साथ सम्बन्ध रखती है, जो उनके गीतों में सम्बोधनबोधक शब्द 'ए' के प्रयोग से परिलक्षित होती है।

गीत गोविन्द के गीतों के महत्त्वपूर्ण छन्द की प्रवृत्ति अट्ठाईस मात्रा वाली दो पङ्क्तियों को दुहराती है। उदाहरणार्थ तृतीय गीत की प्रारम्भिक पङ्क्तियाँ दर्शनीय है–

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।

मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे।।

विहरति हरिरिह सरसवसन्ते।

नृत्यति युवति जनेन सम सखि विरहिजनस्य दुरन्ते।। ध्रुवापद

यहाँ मात्रिक छन्द में चतुर्मात्रिक गणों की व्यवस्था बनी हुयी है। चौबीस में से उन्नीस गीतों में यही क्रम है अर्थात् चतुर्मात्रिक गणों के सात–सात गण प्रत्येक पङ्क्ति में बनते हैं। अब तक लक्षित किसी भी मात्रिक छन्द में पूरे–पूरे सात–सात गणों की व्यवस्था नहीं है। अत इसे हम केवल मात्रिक छन्द ही कहते हैं। गीत का छन्द गीतों के सङ्गीत के लय, ताल आदि सघटकों की व्यवस्था करता दिखायी देता है।

गीतगोविन्द की छादसी प्रवृत्ति को उनकी परम्परा का अनुकरण करने वाले अनेक कवियों ने अपने काव्यो मे अपनाया है। इस विधा के प्रमुख काव्य हैं–

गीतगोपाल, अभिनवगीतगोविन्द, गीतराघव, गीतगङ्गाधर, गीतपीतवसनम्, गीतगिरीशम्, गीतगौरीशम् आदि। इस श्रेणी के सभी रागकाव्यो में छान्दस सङ्गीत अथवा साङ्गीतिक छन्द का बहुलता से प्रयोग हुआ है। छन्द की इस प्रवृत्ति का परवर्ती सस्कृत–काव्य, विशेष रूप से अर्वाचीन सस्कृत काव्यों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इसी क्रम मे आगे हम आधुनिक सस्कृत गीतिकाव्य मे छन्दोविधान का पर्यालोचन करेंगे।

आधुनिक संस्कृत–गीतिकाव्य एवं छन्द

सस्कृत–छन्दोविधान के प्रायोगिक विश्लेषण के प्रसङ्ग में छन्द एव सङ्गीत के सम्बन्धो का प्रतिपादन करते हुए मात्रिक छन्दों में गीतिरचना के विषय में आचार्य शङ्कर के स्तोत्रात्मक पद्यो एव जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' में प्रयुक्त छन्दों की चर्चा की गयी। मात्रिक छन्दो में गीति–रचना की जो धारा 'गीतगोविन्दम्' में प्रवाहित हुई, उसी का सहारा लेते हुए आधुनिक सस्कृत गीतिपद्यो का स्वरूप भी मात्रिक छन्दों पर अवलम्बित हुआ, आजकल लिखी जा रही गीति–रचनाओं को देखते हुए यदि हम यह कहें कि गीति का छन्द मात्रिक छन्द ही है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। आधुनिक सस्कृत–गीति की जो विशेषता उभर कर आयी है, वह है–ध्रुवा–विधान। रागार्णव में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है – "न गान ध्रुवक विना" अर्थात् ध्रुवक या टेक के बिना गान या गीत कुछ भी नहीं है। गीतिकाव्य का यथार्थ स्वरूप इस ध्रुवक–युक्त कविता में ही है। इसीलिए आधुनिक संस्कृत–गीतिकार ने चतुष्पाद छन्दों–रचना की प्रवृत्ति को छोडकर दो, चार, छह अथवा आठ पङ्क्तियों की छान्दस रचना के पश्चात् ध्रुवक मे पौन: पुन्येन प्रयोग की प्रवृत्ति को अपनाया है। इस प्रवृत्ति का अनुकरण आधुनिक सस्कृत–गीतिकारों ने आचार्य शङ्कर के स्तोत्र काव्यों तथा जयदेव के गीतगोविन्द आदि से किया होगा।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। समयवेग के साथ–साथ परिभाषायें बदल जाती हैं, प्रयोग बदल जाते हैं। आधुनिक सस्कृत कविता भी प्रकृति के इस शाश्वत नियम से अछूती न रही। यह अपने प्राचीन कलेवर को छोडकर नये रूप मे सस्कृत गीतिगगन में अवतरित हुई है। छन्दोविधान की दृष्टि से सस्कृत–पद्य–विधा में दो प्रकार के छन्दों का प्रयोग देखा जाता है– पहला पारम्परिक छन्दो का प्रयोग तथा दूसरा गीति–विधा में नवोद्भावित छन्दों का प्रयोग। पारम्परिक छन्दो में वार्णिक छन्दो की प्रधानता है, जिसमे महाकाव्य आदि लिखे जा रहे हैं। गीतिकाव्य में छन्दोविधान की दो धारायें प्रवाहित होती है– पहली छन्दोयुक्त कविता तथा दूसरी छन्दोमुक्त कविता। छन्दोयुक्त कविता में भी दो उपधारायें दिखलायी पडती है– पारम्परिक छन्दों में उपनिबद्ध तथा दूसरी अलक्षित मात्रिक छन्दों में उपनिबद्ध। सस्कृत–गीतिकाव्यकारो मे पारम्परिक वार्णिक एव मात्रिक छन्दो को बहुत कम अपनाया है। आज की सस्कृत–कविता, जिसे डॉ० हरिदत्त शर्मा 'नयी कविता' का नाम देते हैं, में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ। सर्जन–विधा में छन्दोविधान की परीक्षा करने से यह ज्ञात होता है कि आधुनिक युगीन कविता में छन्दों का वैविध्य परिलक्षित होता है। वस्तुत परम्परागत छन्दो से मुक्त होने की इच्छा तथा उसकी अराजकता के आतङ्क के कारण नये छन्दों का अन्वेषण भी हुआ।

<u>सस्कृतीकृत छन्द</u> –

सस्कृत–कविता में छन्दों का परिवर्तन हिन्दी आदि सस्कृतेतर भाषाओं तथा कवियो की समसामयिक बोलियों के छन्दों के प्रयोगात्मक अवतरणों पर हुआ। यह परिवर्तन पिङ्गल के उत्तरकालिक छन्दशास्त्रीय आचार्य जनाश्रय कृत 'जनाश्रयी छन्दोविचिति' में तात्कालिक लोकभाषा के कतिपय छन्दों के सस्कृत में लक्षण तथा

उदाहरण रूप मे स्वीकृति द्वारा परिलक्षित होती है।[1] इसका सम्यक् प्रयोग दामोदरमिश्रकृत 'वाणीभूषण' तथा भट्टचन्द्रशेखरकृत 'वृत्तमौक्तिक' में प्राप्त होता है, जिसमे सामयिक भाषा के छन्दों को सस्कृत भाषा में उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे वे छन्द अपनी मूलभाषा के न होकर सस्कृत भाषा के ही जान पड़ते हैं। यह परिवर्तन परवर्ती छन्दोग्रन्थो मे दिखलायी पडता है। एक उदाहरण वाणीभूषण से दर्शनीय है। दामोदर मिश्र के अनुसार दोहा छन्द वह मात्रिक छन्द है, जिसके विषम पादों में षट्कल (छ' मात्राये) + तुरगकल (चार मात्राये) + त्रिकल (तीन मात्रायें) = १३ मात्राये और सम पादों में षट्कल + तुरगकल + एककल = ११ मात्रायें होती हैं—

> 'षट्कलतुरगौ त्रिकलमपि विषमपदे विनिधेहि।
> समपादान्ते चैककलमिति दोहामवधेहि।।[2]

उदाहरण –

> चरणसरोरुहमस्तु हृदि, मे वदने तव नाम।
> चक्षुषि रूप यावदसु, रमय मनो मम राम।।[3]

प० ब्रह्मानन्द शुक्ल ने अपने काव्य में दोहे का सटीक प्रयोग किया है, यथा—

> 'यानि कुत्र करुणाकर, दीनबन्धुमपहाय।
> याति न जलधारा क्वचित् जलनाथ परिहाय।।[4]

चन्द्रशेखर भट्ट ने अपने छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ 'वृत्तमौक्तिक' में लोक प्रचलित दो सौ छन्दो का सस्कृतीकरण किया है। हिन्दी भाषा में प्रयुक्त सवैया छन्द का

---

[1] इदानीमन्याश्च काश्चिज्जातयो लोकप्रचरन्त्यो वक्ष्यन्ते (५/४४–४५ का वृत्ति भाग)

[2] १/५५

[3] १/५६

[4] पर्यनुयोग–२, विश्वसस्कृतम्, १९९३, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान, होशियारपुर।

सस्कृतीकृत रूप वृत्तमौक्तिक में 'मागधी सवया'। सवैया नाम से मात्रासम चतुष्पदी छन्दो के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है—

माधव विद्युदिय गगने तव कलयति पीतवसनमपिराम,

जलधरनीलगगनपद्धतिरपि तव तनुरुचिमनुसरति निकामम्।

इन्द्रशरासनमपि तव वक्षसि मासितवरवनमालाशोभ,

कुरु मम वचन सफलमहृदय राधाधरमधुविरचित लोभम्।।[1]

प्रकृत मागधी सवया छन्द का लक्षण करते हुए चन्द्रशेखर भट्ट कहते हैं कि— जिस छन्द के प्रत्येक पाद में बत्तीस मात्रायें चतुर्मात्रिक गणों से नियमित हों और पादान्त मे दो गुरु वर्ण हो, तो वह मागधी सवया (सवैया) छन्द है—

'अन्यदिन मुनिनायकभाषितमन्त्यलघु गुरुयुग्मसुयुक्त,

योगचतुष्कलपूजितमन्यमिद युगवहनिकलाभिरमुक्तम्।

पण्डितमण्डलनायकभूपतिमानसरञ्जनमद्भुतवृत्त,

सर्वमिद सवयाभिधुमुक्तमशेषकवीन्द्रविमोहतचित्तम्।।[2]

सम्भवत हिन्दी भाषा की अनुकृति पर यह प्रयोग किया गया होगा। इसके अतिरिक्त निर्धायिका, शीर्षक, चौपैया, कुण्डलिका, सोरठा, हरिगीत, पज्झटिका, चौबोला, सवया (सवैया), घनाक्षर तथा विरुदावली छन्दों में द्विगाकलिका, द्विमङ्गीकलिका, उत्पलचण्डवृत्त, झुल्लन, आन्दोलिता आदि छन्दों का सस्कृतीकरण मिलता है। छन्दोमञ्जरी के पञ्चम स्तबक के अन्त में दोहा का 'दोहडिका' नाम से लक्षणोदाहरण सहित सस्कृतीकरण किया गया है।

---

[1] वृत्तमौक्तिक — १/५/३

[2] वही — १/५/२

'खेलन्त्य सम्पतन्त्यस्तिमिरतमतमीकुञ्जरोत्फालकेलि

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी ने अपने गीतिकाव्य-सङ्ग्रह 'राष्ट्रगीताञ्जलि' में राष्ट्रभक्तिपरक गीतों को वार्णिक एव मात्रिक छन्द में ही उपनिबद्ध किया है। एक दो उदाहरण दर्शनीय हैं। ' राष्ट्रप्रहरी' शीर्षक से –

'अये राष्ट्रयोधा । अये वीरवर्या ।
अये छात्र–सघर्ष–सेनाऽधिनाथा ।
सदा सावधाना सदादत्तचित्ता,
स्वदेशस्य रक्षाकृतौ जागरूका ।। अये० ।।
इमे स्वार्थलीना नरा वित्तलुब्धा,
निजा स्वार्थसिद्धि वर मन्यमाना ।
जनाना सदा शोषणे लीनचित्ता,
नरा पामरास्ते सदा ताड़नीया ।।

प्रकृत गीत में 'भुजङ्गप्रयात' नामक वार्णिक छन्द है। मात्रासमक नामक मात्रिक छन्द मे उपनिबद्ध एक दूसरा गीत, 'कृषक' शीर्षक से–

'जयतु कर्षको भारत–त्राता,
अन्न–धान्य–धन–जीवन–दाता।
शान्त–साधक प्रतिपल योद्धा,
कृत्ति–तत्ति–रक्त–दोष–सशोद्धा।।

पण्डित रामावतार शर्मा ने 'मयूरशतक' नामक गीतिकाव्य को स्रग्धरा छन्दो में गीतिबद्ध किया है। यह गीतिग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक सस्कृत–कवियों ने पारम्परिक छन्द के माध्यम से गेयता धर्म को उन्नत बिन्दु पर पहुँचाने का प्रयास किया है। आधुनिक सस्कृत–जगत् में राष्ट्रभक्तिपरक कविता लिखने के लिये प्रसिद्ध डॉ० रामकान्त शुक्ल ने अपना प्रसिद्ध काव्य 'भाति मे भारतम्' यद्यपि पारम्परिक स्रग्विणी छन्द में बद्ध किया है, फिर भी पूरी तरह गीत्यात्मक काव्य के रूप मे प्रसिद्ध हो चुका है और डॉ० शुक्ल गीत–रूप में ही पूर्ण

प्रभाव के साथ इसे प्रस्तुत भी करते हैं। देखने पर यह साधारण छन्द ही प्रतीत होता है, पर इसकी व्यावहारिक प्रस्तुति इसे गीत्यात्मक रूप में ला देती है, उदाहरणार्थ–

यत्र सत्य शिव सुन्दर राजते,

रामराज्य च यत्राभवत्पावनम्।

यस्य ताटस्थ्यनीति प्रसिद्धि गता,

भूतले भाति तन्मामक भारतम्।।[1]

पारम्परिक वार्णिक छन्दो में गीत्यात्मक सर्जना की एक दूसरी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है और वह है– एक ही शीर्षक की कविता में भावानुसार विविध छन्दों का समावेश। प्राय अपनी कविता मे या कविता सङ्ग्रह में कवियों का किसी एक ही परम्परागत छन्दों में गीत्यात्मक अभिनिवेश होता है, किन्तु कभी–कभी कवि एक ही कविता में भावानुकूल विविध छन्दों का सन्निवेश करता हुआ दिखायी देता है। इस विशेषता को लिये हुये डॉ० हरिदत्त शर्मा की यह कविता बडी ही हृदयावर्जक है। इसमें पन्द्रह पद्य हैं तथा वशस्थ, द्रुतविलम्बित, उपजाति, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा इन दस छन्दों का प्रयोग किया है। कविता में ये सभी छन्द भावों का परिपोष करने में समर्थ दिखायी देते हैं। एक पद्य दर्शनीय है–

'खल वद तव किं रे नाम ! दण्डाधिकारी,

ह्यवददिति स ऊचे भो ममाजाद सञ्ज्ञा।

पुनरपि जनक क , सोऽस्ति नाम्ना स्वतन्त्र–

स्तव वसतिरित क्व सास्ति कारागृह मे।।[2]

---

[1] भाति में भारतम्, पद्य सख्या–६८

[2] स्वातन्त्र्यस्वर्णसौरभम्, आजादश्चन्द्रशेखर', पद्य सख्या–६, पृ०–१८

मालिनी छन्द में उपनिपद्ध यह उस समय का प्रसङ्ग है, जब अँग्रेज अधिकारी बालक चन्द्रशेखर से डपटकर उसका परिचय पूछता है और बालक निर्भीकता से उसका उत्तर देता है। इस छन्द के माध्यम से कवि अपने भाव को स्पष्ट करने में सफल हुआ है साथ ही मालिनी छन्द में बडा ही रोचक बन गया है।

२ दूसरी विधा वह है, जिसमें भारत के विभिन्न अञ्चलों में प्रचलित लोकगीत की धुनो या लयो पर लिखे गये छन्दोबद्ध काव्य हैं तथा दूसरी भाषाओं के छन्दों का सस्कृत रूप परिलक्षित होता है। लोकगीतों मे व्रज के रसिया गीत, अवधी भाषा में प्रचलित गीत (कजरी, सोहर, कँहरवा, होलीगीत) चैता गीत आदि प्रमुख रूप से सस्कृत–गीतिकाव्यो में प्रयुक्त हो रहे हैं। सस्कृत–कविता में नवीन छन्द सस्कार की दृष्टि से भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का योगदान अमूल्य है। अब तक अप्रयुक्त छन्दों में लिखते हुए भी शास्त्री जी ने कहीं भी आयास का अनुभव नहीं होने दिया। लय और अन्त्यानुप्रास का निर्वाह उनमें आधुनिक भारतीय भाषाओं के समान मिलता है। शास्त्री जी ने कुण्डलिका छन्द का कितना सुन्दर सस्कृत–छन्द के रूप में प्रयोग किया है, यथा– एक उदाहरण पर्याप्त होगा–

'सज्जनमैत्री सन्तत स्नेहभर पुष्णाति। क्रमशो वृद्धिमुपागता दोषनपि मुष्णाति।
दोषानपि मुष्णाति निर्गुणे गुणमाधत्ते। निर्वेद निर्वास्य मनसि सम्मोद दत्ते।।
सत्कार्येषूत्साहवर्द्धिनी जडता जेत्री। स्नेहसार विश्रम्भसन्तता सज्जनमैत्री।।'[1]

कमलेश मिश्र ने अपने 'कमलेश विलास' नामक काव्य में सोहर, दादराताल में भैरवी राग से गेय हरिगीतिका, गजल, दोहा, दिक्पाल छन्द, रेखता, कौव्वाली, ठुमरी, होली, चैता, कजरी, झूलनामलार, बिहाग, खेमटा, टोडी, लावनी, झूमर, नहदू

[1] प्रकृति पर्यवेक्षणम्–११ सस्कृत प्रतिभा, अप्रैल १६५६

आदि लोकगीतात्मक छन्दो का सस्कृत–छन्द के रूप में प्रयोग करने का एक सार्थक एव सफल प्रयास किया है। दोहा की तरह एक छन्द दर्शनीय है–

चम–चम–चमत्कृदाचञ्चन्ती चपला मुहुरुदरे सम्भाति।

प्रिय क्व हे ! ति च चातकी, पिकी कुहूरति कौति।।

'श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मनहरणभवभयदारुणम्' की तर्ज पर कमलेश जी ने अपने काव्यसङ्ग्रह के अन्त में कितना सुन्दर प्रयोग किया है–

कमलेशगीतमिद मुदा स्वरतालमञ्जिममञ्जुलम्।

शृणु तस्य तत्र पदे मनोऽपि समाविधेहि सुपावने।।

नयी कविता मे छन्द की दृष्टि से लोकगीतों पर आधारित गीतशैली का विकासमान रूप दृष्टिगत हो रहा है। इसमें प्रमुख रूप से लोकगीतों के माध्यम से लोकसस्कृति की ओर इनकी दृष्टि प्रत्यावर्तित है। लोकगीतों के छन्दो को सस्कृत गीति–काव्य के छन्दो का रूप देने वाले कवियों में अग्रिम पङ्क्ति के कवि हैं– डॉ० राजेन्द्र मिश्र, जिन्होने अपनी कविता में कजरी, सोहर, गजल, चैतागीत, होलीगीत, बुन्देलखण्डी गीत तथा व्रज के रसिया गीतों का अपने काव्यों मे सस्कृत–छन्द का रूप देकर प्रशसनीय कार्य किया है। उत्तरप्रदेश के ग्राम्य अञ्चलों में गाये जाने वाले 'कँहरवा' को 'स्कन्धहारीयम्' गीत के रूप में, उर्दू गजल को 'गलज्जलिका' के रूप में तथा कजरी को विविध रागमयी गीतियों के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके स्पष्टीकरण के अनुसार व्रजप्रदेश में विद्यमान 'रसिया' के समान तथा बुन्देलखण्ड प्रदेश के 'लॉगुरिया' की भाँति ही पूर्वी उत्तरप्रदेश में (विशेष रूप से मिर्जापुर में) वर्षाकाल में कजरी गायी जाती है, उसी कजरी छन्द का सस्कृत–छन्द में रूपान्तरण का एक गीत प्रस्तुत है–

रौति कोकिला मदालसा रसालतरौ,

गोपिता तमालतरौ रे।।

क्षण पल्लवे निलीय

मञ्जरीरस निपीय

स्तौति सम्मुख वसन्तक रसालतरौ,

गोपिता तमालतरौ रे ।।

नन्दनन्दन विहाय

कीर्तिनन्दनी सुखाय

वेत्ति नेषदप्यनामय रसालतरौ

गोपिता तमालतरौ रे ।।

मन्दमन्दगर्जनेन

भूमिभूरिवर्षणेन

मेघमालिका महीयते रसालतरौ

गोपिता तमालतरौ रे।।

रौतिकोकिला ... [1]

उर्दू के गजल छन्द सस्कृत में 'गलज्जलिका' छन्द का रूप डॉ० मिश्र जी ने कितना सटीक दिया है–

'श्रृणोति कोऽपि न मे वाचिक ददे कस्मै ?

वृणोति कोऽपि न मे वाचिक ददे कस्मै ?

व्यथाकथेयमहो मामकी पुरावृत्ता,

अनिर्व्यथे हि भवे वाचिक ददे कस्मै ? [2]

---

[1] वाग्वधूटी – पृष्ठ सख्या – ६३

[2] वही पृष्ठ सख्या – ७५

इसी प्राकर सोहर, कँहरवा, चैता, होलीगीत आदि इनकी 'मृद्वीका' तथा 'वाग्वधूटी' आदि कृतियो मे देखने को मिलते हैं। डॉ०मिश्र की वाणी ने लोकभाषाओं मे प्रचलित गेय छन्द को सस्कृत–छन्द का रूप देकर यह सिद्ध कर दिया है कि सस्कृत भाषा लोकभावनाओं को अभिव्यक्त करने में पूर्णत समर्थ है।

इसी प्रवृत्ति को और अधिक समृद्ध बनाने वाले कवियों में डॉ० हरिदत्त शर्मा का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने अपनी कविता को व्रज के गीतों, कौव्वाली आदि लोकगीतात्मक छन्दो से सजाया है। वर्षाकाल में (विशेष रूप से श्रावण मास में) व्रज की युवतियों के द्वारा झूले पर झूलते हुए गाये जाने वाले 'मल्हार' गीत की लय पर सस्कृत–कविता 'गोपवधूटीप्रेरणम्' में कितना सुन्दर प्रयोग है, एक उदाहरण दर्शनीय है–

'यमुनापुलिने विहरति माधवो रे ।
चल सखि कुञ्ज, काननकुञ्जम्,
चल सुकुमारि । ।। यमुनापुलिने० ।।
श्यामलमेघैरावृतमम्बर रे ।
प्रियसखि मन्द जनितानन्द,
वर्षति वारि । ।। यमुनापुलिने० ।।'[1]

ठेठ ग्रामीण परिवेश में गाये जाने वाले लोकगीत पर आधारित डॉ० शर्मा का वर्षागीत 'वर्षति पानीये' शीर्षक से–

'रिमझिमझिम् वर्षति घनमाला
घनपयसा स्विन्ना [illegible]
पूरोत्प्लवनमहो समन्तत·

---

[1]गीतकन्दलिका, गीत सख्या–२

सरित्सरोनदपानीये।

चल ललने! मज्जाव ससुख

यथा सुमीनौ पानीये।।[1]

ओगोट्टिट परीक्षित् शर्मा ने अपनी रचना 'ललितगीतलहरी' में मॉझीगीत, डिस्को गीत आदि लिखकर सस्कृत–कविता में लोकगीतात्मक छन्दो की परम्परा को आगे बढाया। यद्यपि डिस्को गीत सस्कृत भाषा में सङ्गत नहीं बैठता।

आधुनिक सस्कृत–कविता में छन्दोविधान की तीसरी विधा है– नवगीत विधा में प्रयुक्त छन्द। कतिपय प्रसिद्ध कवियों के द्वारा स्वोद्भावित लयात्मक छन्दों का अविष्कार देखा जाता है। इस प्रकार के छन्दों का सस्कृत कविता में बहुश आविष्कार करने वाले कवियों में प्रमुख हैं– श्रीधर भास्कर वर्णेकर, जानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीनिवास रथ, बच्चूलाल अवस्थी, जगन्नाथ पाठक, राजेन्द्रमिश्र, हरिदत्त शर्मा, रमाकान्त शुक्ल, इच्छाराम द्विवेदी, पुष्पा दीक्षित, नलिनी शुक्ला, भास्कराचार्य, राधावल्लभ त्रिपाठी, अमरनाथ पाण्डेय, जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि', ओमप्रकाश ठाकुर, दीपक घोष, उमाकान्त शुक्ल, हरीराम आचार्य, श्रीभाष्यम् विजय सारथि, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, ओगोट्टिट परीक्षित शर्मा, प्रफुल्ल कुमार मिश्र आदि। इनमें कुछ प्रमुख कवियो के स्वय उद्भावित छन्दों को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत कर रहे हैं–

छन्दोविधान के इस रूप को गति देने वाले आचार्यों में प्रतिनिधिभूत कवि हैं– श्रीधर भास्कर वर्णेकर, जिन्होंने नवोद्भावित छन्द का आविष्कार कर अन्य कवियों को अपने–अपने लयात्मक छन्दों में कविता लिखने के लिये प्रेरित किया। वर्णेकर ने 'रामसङ्गीतिका' तथा 'कृष्णसङ्गीतिका' में स्वाविष्कृत छन्दों का ही प्रयोग किया है। एक उदाहरण 'रामसङ्गीतिका से अवलोकनीय है–

[1] गीतकन्दलिका, गीत सख्या–२५

'वद वद सीते ! सखि कोऽयम्

राजकुलीनो वल्कलधारी।

नवनीरद इव सुभगशरीरी।।

हरते तव हृदयम्

वद्

अपि शिवचाप तमतिगुरुतमम्।

सुकुमारोऽय सुदुर्धरतमम्।।

करोत्याततज्यम्

वद्

जानकी वल्लभ शास्त्री ने आरम्भ में ही सुमधुर सस्कृत–गीतों की अवतारणा कर इस क्षेत्र मे अपना विशिष्ट योगदान किया । साङ्गीतिकता, मधुरता और लयात्मकता उनके गीत्यात्मक छन्दों के प्रमुख गुण हैं। उनके अनेक प्रसिद्ध गीतों में से यह सुप्रसिद्ध गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है–

'निनादय–नवीनामये वाणि ! वीणाम्।

मृदु गाय गीति ललित–नीति–लीनाम्।।

मधुर–मञ्जरी–पिञ्जरीभूत–माला।

वसन्ते लसन्तीह सरसा रसाला।।

कलापा कलित–कोकिला–काकलीनाम्।

निनादय–नवीनामये वाणि ! वीणाम्।।

आधुनिक सस्कृत–कविता के क्षेत्र में उज्जयिनी के कविवर श्रीनिवास रथ ने नवगीत छन्द की परम्परा को एक नवलय विधान के साथ नये प्रयोग के रूप में उद्‌भावित किया है। कहीं–कहीं उनकी कविता में पञ्चचामर जैसे परम्परागत छन्द

का लय–विधान दिखायी पडता है, तो कहीं–कहीं सस्कृत–काव्य–सस्कार से अनुप्रेरित नव लयविधान। इनके काव्य के छन्दोविधान पर टिप्पणी करते हुये डॉ० कमलेश दत्त त्रिपाठी ने कहा है कि इनके गीतों में नियोजित लयविधान श्री शङ्कराचार्य के स्तोत्रो में और श्री जयदेव की ललित पदावलियों में सुनायी पड़ते हुये लय विधान से तुलना करता है। जैसे भगवान् शङ्कराचार्य ने अपने स्तोत्रों मे सस्कृत–काव्य का नया लय विधान पहली बार प्रकाशित किया अथवा श्री जयदेव ने गीत गोविन्द में सस्कृत–गीति की एक अभिनव पदावली की उद्भावना की, उसी प्रकार रथ के गीतियों में प्रचलित छन्दों का आश्रय लेकर ही गीति की वस्तु के अनुसार नया लयविधान विद्योतित हो रहा है। कविवर रथ के द्वारा उद्भावित उनकी गीतिशैली नितान्त नवीन एव मौलिक है। यद्यपि उसकी स्वर माधुरी का पूरा आनन्द उसकी श्रवणीयता में ही है, फिर भी उसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'जीवनगतिरनुदिनमपरा।

तदेव गगन सैव धरा।।

पापपुण्यविधुराधरणीयम्,

कर्मफल भवतादरणीयम्।

नैतद्–वयोऽधुना रमणीयम्

तथापि सदसद्–विवेचनीयम्।।

मतिरतिविकला

सीदति विफला

सकला परम्परा ! तदेव ....'[1]

---

[1] तदेव गगन सैव धरा, गीत– १

डॉ० जगन्नाथ पाठक ने सस्कृत–पद्य के क्षेत्र में पारसी साहित्य और उर्दू साहित्य के अनुसार बनने वाले मुक्तकों को नये छन्द के रूप में प्रस्तुत किया है। इन भाषाओं के विविध छन्दों में विरचित विविध पद्यों से प्रेरणा लेकर अपने काव्य का विषय बनाया है। इस पद्धति के अवलम्बन से उनकी गीतियों मे एक नया रूप आ गया, जैसे– उनकी गीतियों में विद्यमान ध्रुवा के वे ही शब्द बार–बार आवृत्त होते हैं और वे छन्दोविधान को एक नया प्रयोग देते हैं। उनकी प्रकृत गीति में 'न जाने' के प्रयोग से छन्द की नवीनता दर्शनीय है–

'विधात्रा कि कृत भाले, न जाने,
न जाने त्वा सुदृग्जाले ! न जाने।
तवच्छायाऽपि लब्धु, शक्यते किम्,
क्व दूरे त्व महाशाले, न जाने।
क्वचिद् वर्णे सुवर्णे ! लभ्यसे त्वम्,
क्व वा गौरे क्व वा काले, न जाने।[1]

सस्कृत–काव्य के क्षेत्र में प० बच्चूलाल अवस्थी ने भी गजल गीतियों का सुन्दर प्रयोग किया है। इनके गजल गीतो मे अन्त्यानुप्रास के प्रयोग के कारण एक विलक्षण श्रुतिमधुरकाव्यविच्छित्ति उत्पन्न होती है। 'किमुन्नेयम्' शीर्षक गीति का यह उदाहरण दर्शनीय है–

'तमिस्रामुद्गिरन्ती दीपमाला दीपिता केयम्।
निकाये चर्मपत्राणा प्रमाप्राणै किमास्थेयम्।।
अपि प्राणन्ति ते प्राणन्तु येषा प्राणम प्रेय।
विनैव प्रीणन जीवालवै कि नाम जीवेयम्।।[2]

---

[1] पिपासा गीत – २
[2] प्रतानिनी प्रतान–३, गीत–२०

आधुनिक सस्कृत–कविता के क्षेत्र में कुछ कवयित्रियों ने भी छन्दोविधान में अभिनव प्रयोग कर उन्हें नयी दिशा प्रदान की। इनमें डॉ० पुष्पा त्रिवेदी का नाम अग्रगण्य है, जिन्होने नवगीत विधा के माध्यम से प्रणय एव विरह के भावों को शब्द दिये हैं। उनके भी गीतों के लय नवोद्भवित हैं, गेय हैं एव हृत्तन्त्री को झङ्कृत करने वाले हैं। इस नवगीत विधा का प्रस्तुत उदाहरण नव छन्दोविधान का एक सुन्दर प्रयोग 'कोणमेक देहि मे' शीर्षक से–

'प्रीणये हृदय त्वदीय,
केन विधिना ब्रूहि मे।
प्रापण तव हृदि भवेन्नु,
तदेव वर्त्म विधेहि मे।।
प्रीणये हृदय त्वदीय केन विधिना ब्रूहि मे।।'[1]

प्रकृत गीत विधा मे कानपुर की सस्कृत–कवयित्री डॉ० नलिनी शुक्ला का भी कम योगदान नहीं है। अनेकश उनके गीतों में अन्त्यानुप्रास और छन्द का कोई न कोई स्वरूप दिखायी देता है, परन्तु उस छन्द को परम्परागत छन्द का रूप नहीं दिया जा सकता, फिर भी उसमें नये प्रकार का कोई न कोई छन्दोविधान अवश्य है। 'एत एत भारतस्य वासिन' शीर्षक से उदाहरण दिया जा रहा है–

एत एत भारतस्य वासिन।
विस्मृता विधाय क्षुद्रकामना
विस्मरेन्नु वैमनस्य भावना
एकमेव लक्ष्यमस्तु धीमताम्।
एत एत भारतस्य वासिन।।[2]

---

[1] अग्निशिखा गीत– २२
[2] निर्झरिणी गीत–३३

नवोद्भाविषत छन्दस्कारों की पङ्क्तियो में एक महत्त्वपूर्ण नाम आता है– डॉ० हरिदत्त शर्मा का, जिन्होंने गीत्यात्मक नवीन छन्द की मौलिक उद्भावना की। गीत्यात्मक नवीन छन्द मे उपनिबद्ध एक उदाहरण 'मम वेदना न याता' शीर्षक से–

'मम वेदना न याता
सवेदना न याता।
याता प्रिये ! त्वमेव
तव सस्मृतिर्न याता।।
सौरभमरा समन्तान्
मधुमासपुष्पमाला।
मृदुमञ्जरीरसाले,
रसकारिणी न जाता
याता ।[1]

आधुनिक सस्कृत–कविता की नवगीत विधा के एक मधुर रचनाकार डॉ० इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव' हैं, जिन्होंने अनेक नवोद्भूत छन्दों में सुमधुर गीत लिखकर सस्कृत के नव छन्दोविधान को अपना योगदान किया है, उन्हीं छन्दों में से एक छन्द 'गीतमन्दाकिनी' शीर्षक से उद्धृत है–

'अर्थवर्षानदीसैकते साम्प्रत
गीत मन्दाकिनी शुष्कतामुपगता
चञ्चलैश्शब्दगुच्छै–
र्युत जीवनम्
भावनागन्धहीनम्

[1] गीतकन्दलिका गीत–३०

भृश दृश्यते

सर्जने मूल्यचिन्ता

विलुप्ताऽधुना

मात्रवाणीविलासो

दरीदृश्यते

काव्यकोलाहलो मञ्चके दृश्यते

तत्त्वदृष्टि पर शून्यतामुपगता।।[1]

वारगल क्षेत्र के अभिनव कवि श्रीभाष्य विजय सारथि ने 'मन्दाकिनी' नामक काव्य लिखकर छन्द का एक अपूर्व प्रयोग किया है, जिसके विषय में श्रीधर भास्कर वर्णेकर का कहना है कि पुराण ग्रन्थों में वर्णित सर्वत्र सुप्रार्थित गङ्गावतरण कथा को श्री भाष्यम् विजय सारथि ने सस्कृत साहित्य–ससार के गीतकाव्य के दारिद्र्य का स्वल्प निवारण करने के लिये उसे पञ्चमात्रात्मक गीतों में उपनिबद्ध किया है। शब्दों के लय और गति में एक नवीनता तथा भाषा में एक अपूर्व प्रवाह है। उनके गीत–सङ्ग्रह का एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जो तेलगू भाषा के लोकप्रचलित छन्दों में से एक है–

परिवहति परिवहान्मन्दाकिनी।

आनन्दरसधुनी मन्दाकिनी।।

कल्लते मल्लते घनवियन्मण्डले

कञ्चते काञ्चते घनतमोमण्डले

[illegible] [illegible] [illegible]मण्डले

जोतते योतते ज्योतिषां मण्डले

---

[1] गीतमन्दाकिनी, गीत–१२

शिवदन्ते स्कुन्दते चन्द्रमोमण्डले

अकति

आधुनिक सस्कृत–कविता में छन्दोविधान की चतुर्थ प्रवृत्ति है– छन्दोमुक्त कविता। विगत दो दशको मे सस्कृत कविता के क्षेत्र में कुछ ऐसी रचनायें की गयीं, जिनमे पारम्परिक वार्णिक छन्दो का तो सर्वथा अभाव है ही, मात्रिक छन्दो का भी निवेश नहीं दिखायी देता है। कहने का आशय यह है कि इस काल की कविता छन्द के बन्धन से मुक्त है, तथापि उसमें अपनी तरह की एक गतिमयता विद्यमान है। छन्दोमुक्त सस्कृत–कविता की प्रवृत्ति हिन्दी आदि अन्य भाषाओं की कविता की अनुकृति पर प्रवर्तित हुई है। कलेवर की दृष्टि से इस काल की कविता छन्दोविहीन होती हुई भी गत्यात्मकता एव भावात्मकता के कारण कविता की परिधि में आ जाती है। इनमे कोई गेय छन्द नहीं है, फिर भी उनका एक विशेष प्रकार के स्वर में पाठ किया जा सकता है, जो अत्यन्त हृदयग्राही होता है और यह हृदयग्राहिता ही उसे कविता की कोटि में ला देती है। इस प्रवृत्ति के पोषक कवि एव उनकी रचनासङ्ग्रह मे प्रसिद्ध हैं– कृष्णलाल कृत 'ऊर्वीस्वन', 'सिञ्जारव' एव 'शशिकरनिकर' देवदत्त भट्टिकृत 'इरा' तथा 'सिनीवाली', केशवचन्द्रदाशकृत 'महातीर्थम्', 'भिन्नपुलिनम्', 'अलका', 'ईशा', आदि, हर्षदेव माधवकृत 'रथ्यासु जम्बुवर्णाना शिराणाम्', 'शब्दाना निर्मक्षिकेषु [illegible]' 'कालोऽस्मि,' 'मृत्युशतकम्', 'पुरा यत्र स्रोतः', 'निष्क्रान्ता सर्वे,' '[illegible] जन्मान्तरसौहृदानि' आदि, इन्द्रमोहन सिहकृत 'हिरण्यरश्मि' [illegible] 'अग्निजा' प्रवेश सक्सेनाकृत 'अनुभूति' आदि प्रमुख हैं।

कविता के कलेवर को छन्द के बन्धन से रहित रूप में प्रस्तुत करने वाले कवियों में केशवचन्द्र दाश का नाम प्रमुख है। मूलत ये उपन्यासकार एव कथाकार

---

[1] मन्दाकिनी गीत–१

हैं, किन्तु छन्दोविहीन कविता को भी इन्होंने अपने प्रतिभा से नया स्वरूप प्रदान किया है। उदाहरणार्थ 'रजनी विजनी भवति' यह छन्दविहीन कविता प्रस्तुत है–

'रजनी विजनी भवति
एकाकिनी गृहिणीव
हेमन्तस्य शिशिरबिन्दवे–
तारका करकायते
व्यथा कथामारभते
अवितथ प्रथयितु
यथा कथञ्चित्
समाप्तिसोपाने
जनसम्मर्दस्य उत्थाने–पतने'[1]

छन्दोमुक्त कविता को गति देने वाले सशक्त युवा कवि हर्षदेव माधव की एक कविता से हम छन्द की प्रवृत्ति को स्पष्ट कर सकते हैं–

'पुरा यत्र स्रोत आसीत्
तत्राधुना अश्रुबिन्दुना प्रतिच्छाया प्रसृता।
पुरा यत्र स्रोत आसीत्
तत्राधुना गृहविहगाः
[illegible] शीकरमायां (!) दृश्यन्ते निमन्त्रिता।
[illegible]!
त्वयापि "पुरा यत्र स्रोत" इति'[2]

---

[1] ईशा गीत–३
[2] निष्क्रान्ता सर्वे १/३

आधुनिक सस्कृत–कविता में छन्दोविधान की एक और धारा दिखायी देती है और वह है– वैदेशिक भाषाओं के छन्दों का सस्कृत–कविता में निवेश। इस धारा को प्रवर्तित करने वाले प्रतिनिधि कवि हैं– हर्षदेव माधव, जिन्होंने जापानी छन्द 'ताङ्का' तथा 'हाइकू' आदि का अपनी कविता में प्रयोग किया है। 'ताङ्का' एक प्रकार का जापानी छन्द है। इसका लक्षण निरूपित करते हुये स्वय कवि माधव कहते हैं कि इसमें पाँच, सात, पाँच, सात–सात (५–७–५–७–७) अक्षरों से युक्त पाँच पङ्क्तियाँ काव्य के कलेवर की रचना करती हैं। माधवकृत 'प्रणयच्छेद' शीर्षक से एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'विवाहोत्सवे
पाणिग्रहणकाले
आवाभ्या
हस्तेन हस्तो गृहीत
न हृदयेन हृदयम्।।'[1]

जापान देश का ही एक अत्यन्त लघु छन्द 'हाइकू' जिसमें केवल तीन लघु पङ्क्तियों में एक सम्पूर्ण विचार, एक सम्पूर्ण कल्पना सरलता से प्रस्तुत किया जाता है, को भी हर्षदेव माधव ने सस्कृत–कविता में अपनाकर नया कार्य किया है। 'कालोऽस्मि' नामक कविता सङ्ग्रह, जो जापानीय छन्दद्वय में उपनिबद्ध है, से उदाहरण प्रस्तुत है–

'समयवह्नि'
मुखस्य मास दग्ध्वा
कपाल सृजति।'[2]

इसके अतिरिक्त कविवर माधव जी ने कोरियाई कविता से 'शिजो' नामक छन्द लेकर अपनी कविता में प्रयोग किया है।

---

[1] पुरा यत्र स्रोत', कविता–६०
[2] कालोऽस्मि पृष्ठ–३६

नवोद्भावित छन्दो के नामकरण एव लक्षण –

शास्त्रीय समीक्षा मे लक्ष्य–लक्षण–ग्रन्थ–परम्परा का विद्यमान होना नितान्त आवश्यक होता है, किन्तु आधुनिक सस्कृत–कविता में प्रयुक्त छन्दो के लक्षण–निरूपण–ग्रन्थ का प्रणयन नहीं हो सका, जबकि स्वातन्त्र्योत्तर भारत में या २०वीं शती के मध्य से लेकर आज तक अनेक गीतिकाव्य सङ्ग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें प्रयुक्त नव नव छन्दों को क्या नाम दिया जाये तथा इनका स्वरूप कैसा है? इस विषय मे आचार्य रामकिशोर मिश्र – जिन्हे आधुनिक छन्द·शास्त्रीय आचार्य होने का श्रेय दिया जा सकता है– ने सराहनीय कार्य किया है। इन्होंने अपने छन्दोग्रन्थ 'छन्दस्कलावती' में आधुनिक सस्कृत–कविता में प्रयुक्त कतिपय नवीन छन्दों का नामकरण करने के साथ–साथ उनका लक्षण भी किया है। इसके अतिरिक्त रामायण एव महाभारत में प्राप्त अलक्षित – जिनका लक्षण आचार्य पिङ्गल से लेकर किसी भी छन्द शास्त्रीय आचार्यों ने नहीं किया है– छन्दों का भी नामकरण के साथ लक्षण प्रस्तुत कर इन्होंने अपने आपकों छन्द·शास्त्र जगत् में आचार्य के रूप मे प्रतिष्ठिापित किया है। कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं–

I S I S S I S I S S

'उदङ्मुख तद्रथ चकार'[1]

आचार्य मिश्र अपने छन्द·शास्त्रीय ग्रन्थ 'छन्दस्कलावती' में इस छन्द को 'निरूपण' नाम से लक्षित करते हुए कहते हैं कि जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश· जगण, तगण, रगण तथा एक गुरु वर्ण हो, वह 'निरूपण' छन्द है–

'जतौ रगू चेन्निरूपण तत्'[2]

---

[1] वाल्मीकि रामायण, २/२६/३४

[2] छन्दस्कलावती २/१

वार्णिक छन्दो के लक्षण निरूपण में आचार्य ने केदारभट्ट का अनुकरण करते हुये लक्ष्य लक्षण शैली को ही अङ्गीकार किया है। एक उदाहरण महाभारत से–

I S S S I I S S I S S

गुरु शिष्यो वरयेद् गोप्रदाने स वै गन्ता नियत स्वर्गमेव।

विधिज्ञाना सुमहान् धर्म एष विधिं ह्याद्य विधय सविशन्ति।।[1]

डॉ० मिश्र ने इसका नामकरण 'रमा' करते हुये लक्षण किया है– "रमा सा यत्र यभौ तो गुरू च"[2] अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश यगण, भगण, तगण तथा दो गुरु वर्ण हों, तो उसे 'रमा' छन्द कहा जा सकता है।

आचार्य मिश्र कवि हृदय भी हैं। उन्होने स्वय प्रणीत महाकाव्य, गीतिकाव्य आदि में नवीन छन्दों की उदभावना की है, जिनका नामकरण सहित लक्षण निरूपण अपने छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ मे किया है, यथा, 'काव्य किरणावली' के नवम किरण में 'कलावती पुत्रगीतावली' से –

S S S S I I S I I S

'ग्रामे ग्रामे नगरे नगरे,

कविकलाकारमणिमाविसरे,

मङ्गाया निर्मलपाथसि रे।

कविरचना हृदये प्रकाश्यताम्,

सूर्य इवाऽय काव्यलोक।

आचार्य ने इस छन्द को सममात्रिकपऽ्यपद्य के अन्तर्गत 'रसभद्रा'[3] नाम से अभिहित किया है। लक्षण करते हुये वे कहते हैं कि 'जिसके प्रत्येक चरण में

---

[1] महाभारत अनुशासन पर्व ७१/५५

[2] छन्दस्कलावती २/२२

[3] वही मात्रावृत्त /१४

सोलह–सोलह मात्राये, पादो की सख्या पाँच तथा प्रथम तीन पाद तुकान्त हुआ करते हैं, उसे 'रस भद्रा' छन्द कहा जा सकता है–

'भवन्ति यस्या षोडश मात्रा,
भवति पञ्पादैस्तद्यात्रा,
त्रिभि पदैर्या तुकान्तगात्रा,
भुवि पञ्चपदी बुधैर्ज्ञायताम्,
मया कथ्यते सा रसभद्रा।'

इसी प्रकार अपने ही काव्य ग्रन्थों में सम वर्णवृत्तों वाणी, विद्या, जया, श्रीयमुना, शीला, गचा, प्रतिभा, रमणी, रजनी, शशिकान्ता, योग, प्रभात, विभावती, तथा 'मति नाक विषयवर्णवृत्त, एव सममात्रिक छन्दों में नूतनधारा, रति, चन्द्र, गौरव, रीति, प्रणीति, छन्दोमान, छान्दसी सभा, वसन्तवृत्तम्, देवी, प्रेमकाम, प्रीति, सङ्गीता, रसभान्ता, सरसान्ता, सुप्रभा, पुष्पजाति, बाणजाति, भोगिनी, रसगर्भा, वनिता, खेल, नारिकेल, समृद्धगीति, अभिरामा, सङ्गीति, सुरसा, कविजाति, सौरभ, वृत्तक, पारिजात, कीर्तिकान्त, प्रफुल्लगीत, अर्द्धसममात्रिक छन्दों में आभा, शशिबाला, गिरा, गीतिदारिका, सौरन्यदा, पुच्छलिका, कविगान, सुकीर्ति, ज्ञानवती, रसवती, नूतनगीतम्, निर्मला, दिव्यकान्ता, विकास, धरणि, प्रगीतकम्, सुजाता, श्रुतकीर्ति, विषम मात्रिक छन्दों में तारा, माण्डवी, उर्मिला, सुभद्रा, अपाला, सीता, पादषट्कम् तथा प्रेमकनद, सुकान्ता, पदयात्रा नामक छन्दों का अविष्कार किया है।

यहाँ उल्लेख्य है कि पूर्ववर्ती छन्दशास्त्रीय आचार्यो का अनुकरण करते हुए डॉ० मिश्र ने भी स्वोद्भावित छन्दों के नामकरण में सौन्दर्य को ही ध्यान में रखते हुये दिखायी देते हैं। उनके छन्दों के नामकरण में स्त्रीपरक ललित नामों के साथ–साथ प्राकृतिक तथा पौराणिक नाम प्राप्त होते हैं। पौराणिक नामों को छन्दों के नाम देकर

एक नवीन कार्य किया है। लेकिन यहाँ पर भी प्रश्न उठता है कि ये नामकरण किस आधार पर किये गये होंगे ? निश्चित रूप से मिश्र जी ने भी सौन्दर्य के साथ लक्षण मे उसकी सङ्गति को ही नामकरण का आधार माना होगा।

आचार्य मिश्र ने पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित अन्य सस्कृत कवियों की कविताओं मे प्रयुक्त छन्दों का लक्षण एव नामकरण किया है, यथा– वेद कुमारी घई की कविता 'जीवनपथिक प्रति–२' से एक उदाहरण–

'पथिक ! न पथो विचलितव्यम्।
काम पथि पथि कण्टकगुल्मा एव विकीर्ण भूरिस्यु
पदे पदे तव गतिमभिरोद्धु तुङ्गशिखरिणस्तिष्ठेयु॰।
निर्जनभीषणकान्तारा अपि गह्वराणि वाऽऽगच्छेयु।
विघ्नैरपि हसता लसता भोस्त्वयाविरतमभिगन्तव्यम्।।'[1]

डॉ० मिश्र ने प्रकृत छन्द की सञ्ज्ञा 'पथिका' की। इसका लक्षण करते हुये वे कहते हैं कि जिस छन्द में पाँच पाद हों, प्रथम पाद में चौदह तथा अन्तिम चार पादों में तीस–तीस मात्रायें हों, जिनमें सोलह मात्राओ पर यति हो, प्रथम एव अन्तिम पादान्त में मैत्री हो तथा मध्यम तीनों पादान्त तुकान्त हों, उसे 'पथिका' नाम दिया जा सकता है–

'प्रथमे चतुर्दशान्तो चतुर्षु त्रिशत् षोडशे च विरति॰।
[illegible] मध्ये तुकान्ता सा पथिका।।'[2]

[illegible] की कविता 'सैन्यगीतम्' से–

'वन्दना विधीयतां [illegible] समर्प्यताम्।
स्वराष्ट्रगीतिरागिणी दिवानिश सुगीयताम्।।

---

[1] विश्व सस्कृतम्, पृष्ठ–२२ नवम्बर, १९९३, विश्वेश्वर वैदिक शोध सस्थान, होशियारपुर।
[2] सस्कृत छन्दों का उद्भव एव विकास, पृ०–२०२

स्वमातृभूमिरच्यर्यता स्वभाषित निगद्यताम्।

स्वदेशवासिनो जना स्वसस्कृतौ निधीयताम्।।[1]

प्रमाणिका मिश्रित यह छन्द डॉ० मिश्र के द्वारा 'चतुष्पदा' नाम से लक्षित किया गया, जिसका लक्षण है – 'जिस छन्द के प्रथम पाद में बाईस और अन्तिम तीन पादों मे चौबीस मात्रायें हों, प्रत्येक पाद के मध्य में ग्यारह तथा बारह मात्राओं पर यति हो तथा पादान्त में मैत्री हो, तो उसे 'चतुष्पदा' कहते हैं–

'द्वाविंशतिस्तुपूर्वं चतुर्विंशतिश्च तत प्रतिपादम्।

मध्ययतिरन्तमैत्री सा भवति चतुष्पदा गीति ।।

लोकगीत एव राग की ध्वनियों की अनुकृति पर सस्कृत–कविता में प्रयुक्त नवीन छन्दों का भी विद्वान् आचार्य के द्वारा नामकरण तथा लक्षण किया गया है। कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं–

'देख तेरे ससार की हालत, क्या हो गयी भगवान्।

कि कितना बदल गया इन्सान' इस लोकगीत की ध्वनि की अनुकृति पर रची गयी डॉ० ब्रजमोहन झा की 'विषमता–३' शीर्षक की कविता दर्शनीय है–

'शीततापसुनियन्त्रितभवने,

केऽपि शेरते विद्युत्पवने।

कर्मान्तेषु तपन्ति केऽपि धुरि,

यन्त्राणा ज्वलताम्।

कियत्कथयामाधि ज्वलताम्।।[2]

---

[1] जयतु सस्कृतम् पृ०–६, स०– २०२१, काठमाण्डु।

[2] सस्कृत–प्रतिभा पृ०–१६ अप्रैल १६५६

इसे डॉ० मिश्र ने लोकगीत की ध्वनि पर आधारित 'विषमपथ' नाम से अपने छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ 'छन्दस्कलावती' मे लक्षित किया है। उनके अनुसार 'विषमपथ' नामक मात्रिक छन्द वहाँ होतो है, जहाँ लोकध्वनि पर आधारित छन्द के प्रथम तीन पादों में सोलह–सोलह मात्रायें, चतुर्थ मे दस तथा पञ्चम पाद में पन्द्रह मात्रायें हो तथा तृतीय पाद को छोड़कर पूर्व और अन्तिम दो पादों में तुकान्त हो–

'पादत्रये प्रतिपद षोडश तुर्ये दशान्ते पञ्चदश।
त्यक्ततृतीय तुकान्त लोकध्वनिकृत विषमपथम्।।

जगदीश कृत 'प्रियदर्शनोत्सुका–२' शीर्षक की कविता का एक पद्य–

'कुङ्कुमरागविभूषितभाले,
चलदधरीकृतमुदितमराले।
प्रियसुखमनुभवमञ्जुले,
चल वामे चल चञ्चले।।'[1]

बहार राग की ध्वनि पर निबद्ध इस छन्द को डॉ० मिश्र ने 'प्रदीपगीत' नाम दिया है, जिसका लक्षण इस प्रकार करते हैं– जिस छन्द के पूर्वार्द्ध के प्रत्येक पाद मे सोलह–सोलह मात्राये, उत्तरार्द्ध के प्रत्येक पाद में तेरह–तेरह मात्रायें तथा बहार राग की ध्वनि पर तुकान्त रचना को 'प्रदीपगीत' छन्द कह सकते हैं–

'पूर्वार्द्धे प्रतिपाद षोडशोत्तरार्द्धे त्रयोदश कला'।
बहाररागनिबद्ध तुकान्त तत्प्रदीपगीतम्।।

इस प्रकार आधुनिक सस्कृत–कविता में प्रयुक्त थोड़े छन्दों का नामकरण एव लक्षण प्रस्तुत कर आचार्य रामकिशोर मिश्र ने छन्दशास्त्रीय विकास परम्परा को आगे बढाने का सफल प्रयास किया है।

---

[1] सस्कृत–प्रतिमा, पृ०–१४ अप्रैल १९५६

निष्कर्ष –

अब तक विवेचित तथा समीक्षित आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्यों में प्रयुक्त छन्द के वैविध्य की ओर दृष्टिपात करे, तो पाते हैं कि जिसका प्रारम्भ दामोदर मिश्र ने 'वाणीभूषण' मे तथा भट्ट चन्द्रशेखर ने अपने छन्दोग्रन्थ 'वृत्तमौक्तिक' में हिन्दी तथा व्रज के छन्दो का सस्कृतीकरण कर किया था, उसको अतिक्रान्त कर आज छन्दस्कार भारत के प्रत्येक अचल में गाये जाने वाले छन्दों को सस्कृत का रूप ही नहीं दिया, बल्कि नवनवोद्भूत छन्दों का भी अविष्कार किया। इतना ही नहीं वे वैदेशिक छन्दो को भी सस्कृत–छन्द को रूप देने मे नहीं हिचकिचाये हैं। यह उनकी साम्राज्यवादिता का पोषक है, जो सस्कृत छन्दोविधान के क्षेत्र में तो नवीनता के साथ शुभ सङ्केत है ही तथा सस्कृत–वाङ्मय के दिन–प्रतिदिन विकसनशीलता का प्रमाण भी है। वस्तुत आज के सस्कृत–कवि छन्दोविधान के क्षेत्र में नित्य नूतन प्रयोग कर सस्कृत–वाङ्मय के प्रचार–प्रसार मे निष्ठा के साथ अपने आपको समर्पित किये हुये हैं। यह निश्चित रूप से सस्कृत भाषा के विकास में सराहनीय कार्य है।

उपसंहार

उपसंहार

सात अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में सस्कृत–छन्दोविधान के सिद्धान्त एव प्रयोग दोनो पक्षों पर सम्यक् रूप से शोध–परक विवेचन किया गया। उपसहारत· हम कह सकते हैं कि छन्द की यात्रा प्राग्वैदिक युग से लेकर अद्यतन युग तक निर्बाध रूप से उत्तरोत्तर विकसनशील है। वस्तुत· छन्द रस एव प्राण है, जिसके बिना मानव–जीवन नीरस एव निर्जीव है। रस इसलिये कि छन्द के माध्यम से सामान्य जनों को रसोद्‌बोध सरलता व सुगमता से हो जाता है। प्राण इसलिये कि मानव ने अपनी हृदगत भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए सर्वप्रथम छन्द का ही सहारा लिया होगा। सृष्टि की प्रथम रचना ऋग्वेद के छन्दोबद्ध होने के कारण इसकी पुष्टि होती है। अत मानव ने जीवन को सरस एव सजीव बनाने के लिये अपनी हृत्तन्त्री को झङ्कृत किया, परिणामस्वरूप उसके मुख से जो उद्‌गार निकले, वे पद्य रूप मे होने के साथ–साथ भावों को आच्छादित कर अभिव्यक्ति के माध्यम बने। इसीलिये उनका नामकरण छन्द के रूप में किया गया। वैदिक काल से पूर्व छन्द की जो यात्रा प्रारम्भ हुई थी वह नितान्त नियमविहीन तथा स्वच्छन्द थी। ऋग्वेद में उसका परिपक्व और व्यवस्थित रूप सामने आया। बाद में आवश्यकता अनुभूत होने पर छन्द·शास्त्रीय आचार्यों ने ऋग्वैदिक छन्द को सामने रखते हुए छन्दोग्रन्थ का प्रणयन किया होगा। अन्य शब्दों में, छन्दों का उदय प्राग्वैदिक युग में हो चुका था। वस्तुत· उस युग में लेख–सामग्री का अभाव होने के कारण ज्ञानराशि को सरक्षित करने में स्मरण शक्ति का बहुत बडा हाथ रहा होगा। एतदर्थ उस युग मे छन्दों की उपयोगिता का अनुभव किया जाता रहा होगा, क्योंकि छन्दोबद्ध भाषा गद्य की अपेक्षा याद रखने में सुगम तथा सुखद होती है। इसमें निहित नैसर्गिक मधुरता के कारण भी छन्दों की ओर मानव–मन आकृष्ट हुआ होगा। इसके

अतिरिक्त छन्द नियमित शब्दों में अनियमित भावों के सयत वाहन हैं। अत 'आवश्यकता अविष्कार की जननी है' इस आधार पर छन्दों की आवश्यकता ने इनका अविष्कार किया।

छन्दों का सैद्धान्तिक विवेचन ऋग्वैदिक छन्द से ही प्रारम्भ होता है, क्योंकि ऋग्वेद से पूर्व का वाङ्मय लिखित रूप में उपलब्ध नहीं होता। पादगत अक्षर सख्या के रूप में लक्षित या विवेचित वैदिक छन्दों के बाद लौकिक छन्दों का स्वरूप वैदिक छन्दों की आधारभूमि पर विकसित हुआ, जिसका विकसन शोकविक्लान्त करुणार्द्रचेता महर्षि वाल्मीकि की सहसा प्रस्फुटित वाणी से प्रारम्भ होता है। यद्यपि वैदिक छन्दों की तरह रामायण एव महाभारत में भी स्वच्छन्दता की छाया दिखायी देती है, किन्तु अधिकाशत छन्दशास्त्रीय नियमों की परिधि में आते हैं। इन दोनों आर्ष महकाव्यों ने श्लोक अर्थात अनुष्टुप् छन्द को तो अमरता प्रदान की। रामायण एव महाभारत के बाद छन्द पूर्णत नियमाबद्ध हो गये। वैदिक छन्दों की पदगत अक्षर सख्या वार्णिक छन्दों के अन्तर्गत गणों में विभक्त हो गयी। लघु–गुरु के विशेष सयोजन रूप इन गणों के प्रस्तारादि गणितीय दृष्टि से समान अक्षर सख्या वाले अनेक छन्दोभेद–प्रभेद विकसित हुए। मा प्रमा प्रभृति वैदिक छन्दों के नाम लौकिक छन्द में विभिन्न अक्षर सख्या वाली उक्तादि छन्दोजातियों के बोधक के रूप में विवेचित हुए। वर्ण वृत्तों के नये नामकरण कहीं शृङ्गारिक वातावरण में उनके प्रयोग से प्रभावित शशिवदना, प्रियम्वदा आदि, कहीं शृङ्गारेतर प्रकृति–व्यापार के सूचक जलोद्धतगति आदि तथा कहीं छन्दोगत विशेष भावों के सूचक मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित आदि किये गये। उक्त दो कृतियों के पश्चात् तथा जयदेव के गीतगोविन्द से पूर्व तक सर्जनविधा में वार्णिक छन्दों की प्रधानता रही। जयदेव के पूर्व शङ्कराचार्य के स्तोत्र काव्यों में गीतिभाग में छन्द का कलेवर बदलता हुआ दिखायी देता है। वार्णिक छन्द की यात्रा को प्रतिरुद्ध किया गोवर्धनाचार्य ने, जिन्होंने वार्णिक छन्द को छोड़कर मात्रिक छन्द 'आर्या' में 'आर्यासप्तशती' की रचना कर छन्द की यात्रा का मार्ग बदलने

का सार्थक प्रयास किया, किन्तु यह भी परम्परागत मात्रिक छन्द ही था। छन्द–परिवर्तन ने अपनी स्वरतन्त्री की झङ्कारमयी ध्वनियों के अनुरूप छन्दों के विकास–क्रम में क्रान्तिकारी परिवर्तन करते हुये एक ऐसी गीत रचना प्रस्तुत की, जिसके गीत छन्द, ताल, लय तथा मात्राप्रधान हैं। जयदेव ने भी गीतिपक्ष को ही मात्रिक छन्दों में उपनिबद्ध किया। शेष भाग मे वार्णिक छन्दों का ही प्रयोग किया है। बाद मे गीतगोविन्द की अनुकृति पर ही 'गीतगिरीशम्', गीत–पीतवसनम्, गीतगौरीशम्, गीतगङ्गाधरम् आदि की रचना की गयी, जो पूर्णत गीतगोविन्द की रचना शैली के अनुरूप है।

आधुनिक सस्कृत पद्य विधा में छन्दोविधान की दो धारायें दिखायी दे रही हैं– पहली धारा परम्परागत छन्दों की है, जिनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरितकाव्य, सन्देशकाव्य आदि लिखे जा रहे हैं। इनमें छन्दों का परिवर्तित रूप ग्राह्य नहीं हुआ। दूसरी धारा आधुनिक सस्कृत–गीतिकाव्य या कविता में छन्दोविधान की है। यह छन्द के कलेवर को बदलने में पूर्णत सफल रही है। आज की सस्कृत–कविता छन्द के विविध प्रयोगों की ओर तीव्रगति से आगे बढ रही है। इसने अन्यान्य भाषाओं के छन्दों तथा लोकगीतात्मक छन्दों को अपनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि सस्कृत भाषा सामान्य जनों की भावनाओ को अभिव्यक्त करने में पूर्णत सफल है। मुझे तो आज के छन्दोविधान को देखकर ऐसा लगता है कि निश्चित रूप से सस्कृत भाषा जनभाषा रही होगी। यदि हम यह कहें कि जितने कवि उतने अलक्षित नवीन छन्द हैं, तो भी छन्द के वैविध्य का बोध नहीं हो सकता, क्योंकि एक ही कवि अपनी कवितासङ्ग्रह में विविध छन्दों का प्रयोग करता हुआ दिखायी देता है। छन्दों का यह वैविध्य निश्चित रूप से सस्कृत वाङ्मय के विकास में सकारात्मक प्रयोग है। इसका प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं पर दिखायी देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ छन्द की मात्रा गायत्री प्रभृति छन्दों से प्रारम्भ हुई थी, आज वह अपना इतना अधिक विस्तार कर चुकी है कि उसका

विवेचन शोध–प्रबन्ध के एक अध्याय के एक भाग में सम्भव नही है। नवनवोद्भावित छन्दों का विकसन बडी तीव्र गति से हो रहा है। अत एव इस विषय पर अलग से शोध–कार्य किये जाने की आवश्यकता है।

आधुनिक सस्कृत–कविता में छन्दोविधान के विविध नये–नये प्रयोग परिलक्षित हो रहे हैं, किन्तु अभी इन कविताओ में प्रयुक्त छन्दों के नामकरण तथा इनके लक्षण–निरूपण–ग्रन्थ का प्रणयन नहीं हो सका है, जिसकी नितान्त आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। इस विषय में कतिपय अलक्षित नवीन छन्दों का नामकरण एव लक्षण कर आचार्य रामकिशोर मिश्र ने लघु किन्तु सार्थक प्रयास किया है, जो भावी छन्दशास्त्रीय आचार्यों के लिए एक प्रेरक का काम करते हुये दिखायी दे रहे हैं। सस्कृत–छन्दों–लक्षण–निरूपण करने वाले एक ऐसे बृहद् ग्रन्थ की आवश्यकता है, जिसमें आधुनिक सस्कृत–कविता में प्रयुक्त नवीन छन्दों के नामकरण एव लक्षण के साथ–साथ वैदिक एव परम्परागत लौकिक छन्दों का भी समावेश हो, जिससे छन्द के विषय में एक साथ दिग्दर्शन हो सके। लक्षण–निरूपण–ग्रन्थ के प्रणयन में निरन्तरता होनी आवश्यक है, क्योंकि आज की कविता में दिन–प्रतिदिन नवीन छन्दों का अवतरण हो रहा है। आशा है भविष्य में भी सस्कृत–काव्य–कानन नित्य–नूतन छन्दपुष्पों से पुष्पित होता रहेगा।

अन्तत अपने शोध–प्रबन्ध का समापन शौनक ऋषि की उस वाणी से कर रहा हूँ, जिसमे उन्होंने छन्दोज्ञान की फलश्रुति करते हुए कहा है कि 'जो व्यक्ति छन्दों की विशेषता को उसके विभिन्न रूपों के साथ जानता है, वह स्वर्ग तथा अमृतत्व को प्राप्त करता है–

'यच्छन्दसा वेद विशेषमेत भूतानि च त्रैष्टुभजागतानि।[1]

सर्वाणि रूपाणि च भक्तितो य स्वर्गं जयत्येभिरथाऽमृतत्वम्।।

---

[1] ऋक्प्राति शाख्य – १८/३४

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

छन्दोग्रन्थ

१ छन्द शास्त्र — पिङ्गलकृत, टीका०– भट्ट हलायुध तथा मधुसूदन विद्यावाचस्पति, परिमल सस्कृत ग्रन्थमाला सख्या–६, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली प्रथम सस्करण –१९८१

२ छन्दोमञ्जरी — गङ्गादासकृत, टीका–जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, कलकत्ता

अष्टम सस्करण–१९१५ तथा टीका–परमेश्वरदीन पाण्डेय, कृष्णदत्त अकादमी, वाराणसी, प्रथम सस्करण–१९८७

३ छन्द प्रभाकर — लेखक जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' विलासपुर १९३६

४ छन्द कौस्तुभ — राधादामोदरकृत, अनुवादिका एव सम्पादिका–डॉ०(श्रीमती) कमलेश पारीक, वृन्दावन शोध सस्थान, वृन्दावन, प्रथम सस्करण–१९९३

५ वृत्तरत्नाकर — केदारभट्ट, अनुवादक एव टीका० श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास

तृतीय सस्करण–१९७२

६ वृत्तरत्नाकर — टीका० आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, सप्तम सस्करण–१९९८

७ श्रुतबोध — कालिदासकृत, टीका० कनकलाल शर्मा, चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी

द्वितीय सस्करण–वि० स०२०४०

८ सुवृत्ततिलक — क्षेमेन्द्रकृत, टीका० प० ब्रजमोहन झा,
चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी
प्रथम सस्करण— वि०स० २०२५

६ वाग्वल्लभ — दुःखभञ्जन कवि, टीका० प० श्री देवी प्रसादकवि चक्रवर्ती,
चौखम्बा सस्कृत सीरीज, बनारस, १६३३

१० छन्दोऽनुशासन — जयकीर्तिकृत, जयदामन् में प्रकाशित, बम्बई, १६४६ ई०

११ छन्दोऽनुशासन — हेमचन्द्रकृत, जयदामन् में प्रकाशित, बम्बई, १६४६ ई०

१२ रत्नमञ्जूषा — भाष्यसहित, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १६४४ ई०

१३ जयदामन् — हरिदास वेलणकर, विल्सन कालेज, बम्बई, १६४६ ई०

१४ असीम प्रतिभा — लेखक— डॉ० रामकिशोर मिश्र, बागपत, मेरठ
प्रथम सस्करण —१६६८

१५ वृत्तमञ्जरी — वसन्त त्र्यम्बक शेवडे, व्याख्याकार—डॉ० ब्रह्मनन्द त्रिपाठी,
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी, प्रथम सस्करण —१६८६

१६ ऋक्प्रातिशाख्य — शौनककृत, डॉ० वीरेन्द्र वर्मा, दिल्ली ,१६८६

१७ ऋग्वेद — दयानन्द सस्कृत सस्थान, दिल्ली

१८ छान्दोग्योपनिषद् — सम्पादक— प्रो० जे० एल० शास्त्री, दिल्ली
द्वितीय सस्करण—१६८०

१६ मात्रिक छन्दों का विकास — डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्,
प्रथम सस्करण— १६६४

२० छन्दस्कलावती — रचयिता एव प्रकाशक—डॉ० रामकिशोर मिश्र, बागपत, मेरठ
प्रथम सस्करण —१६६१

२१ वैदिकच्छन्दोमीमासा — प० युधिष्ठिर मीमासक, अमृतसर वि० स० १६७२

२२ वाणीभूषण — दामोदर मिश्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १६२५ ई०

२३ वृत्तमौक्तिक — भट्ट चन्द्रशेखर, सम्पा० विनयसागर, जोधपुर, १६६५ ई०

पुराणग्रन्थ

२४ अग्निपुराण (उत्तरभाग) — अनु० तारीणीश झा एव डॉ० घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रथम सस्करण—१६८६

२५ श्रीमद्भागवत महापुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर।

२६ गरुड पुराण — सम्पा० डॉ० रामशङ्कर भट्टाचार्य, बम्बई विस० १६६३

२७ नारद पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई वि०स० १६८०

२८ विष्णुधर्मोत्तर पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई वि० स० १६६६

सस्कृत-काव्य-ग्रन्थ

२६ वाल्मीकिरामायण — गीता प्रेस, गोरखपुर।

३० महाभारत — गीता प्रेस, गोरखपुर।

३१ कविरहस्य — हलायुध, गोपाल नारायण, बम्बई द्वितीय सस्करण – १८६६

३२ शिशुपालवध — माघकृत, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई सस्करण – १८८८

३३ रघुवश — कालिदासकृत, व्याख्याकार– श्री हरगोविन्द मिश्र, चौखम्भा सस्कृत सस्थान, प्रथम सस्करण–वि०स० २०५१

३४ कुमारसम्भव — कालिदासकृत, व्या०– श्री प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

३५ किरातार्जुनीय — भारवि, घण्टापथ व्याख्या सहित, वाराणसी १९५२

३६ जानकीहरण — कुमारदास, मित्रप्रकाशन, इलाहाबाद, ११९६७

३७ नैषधीयचरितम् — श्री हर्ष, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९५२

३८ भट्टिकाव्य — भट्टि, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९७२

३९ मन्दारमरन्दचम्पू — काव्यमाला–५२, बम्बई, १८९५ ई०

४० नेमिनिर्वाणम् — वाग्भट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८९६

४१ आर्यासप्तशती — गोवर्धनाचार्य, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी १९६५

सस्कृत-नाट्य-ग्रन्थ

४२ उत्तररामचरित — भवभूति, टीका०–आचार्य त्रिनाथ शर्मा एव डॉ० कपिलदेव गिरि चौखम्भा सस्कृत सस्थान, प्रथम सस्करण–वि०स० २०५१

४३ वेणीसहार — भट्टनारायण, सम्पा० एव व्या०– डॉ० गगासागर राय चौखम्भा सस्कृत सस्थान, द्वितीय सस्करण–वि०स० २०५४

४४ रत्नावली नाटिका — श्री हर्ष देव, व्या० डॉ० शिवराज शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ

४५ अभिज्ञानशाकुन्तल — कालिदासकृत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७७

४६ मुद्राराक्षस — विशाखदत्तकृत, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, स० १९६०

४७ मृच्छकटिक — शूद्रक, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी

संस्कृत-गीतिकाव्य

४८ गीतगोविन्द	जयदेवकृत, व्याख्याकार–केदारनाथ शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, अष्टम संस्करण – वि०सं० २०५४
४६ गीत कन्दलिका	डॉ० हरिदत्त शर्मा, गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, १६८३
५० निर्झरिणी	डॉ० नलिनी शुक्ला, शक्तियोगााश्रम, कानपुर, प्र०सं०–१६८६
५१ गीतमन्दाकिनी	इच्छाराम द्विवेदी, दिल्ली, १६६२
५२ अग्निशिखा	पुष्पा दीक्षित, ऋतम्भरा प्रकाशन, जबलपुर, १६८४
५३ मन्दाकिनी	श्रीभाष्यम् विजयसारथि, संस्कृत भारती प्रकाशन, वारंगल १६८०
५४ अनुभूति	डॉ० प्रवेश सक्सेना, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, १६६६
५५ वाग्वधूटी	अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, १६७८
५६ तदेव गगनं सैव धरा	श्री निवास रथ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, १६६५
५७ पण्डितराज जगन्नाथ ग्रन्थावली	व्या० मधुसूदन शास्त्री, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी,१६६२

५८ पिपासा	डॉ० जगन्नाथ पाठक
	गङ्गानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ
	प्रथम सस्करण, १९८७
५९ प्रतानिनी	प० बच्चू लाल अवस्थी
	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद
	प्रथम सस्करण, १९९६

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

६० काव्यप्रकाश	मम्मटाचार्य, स०एव व्याख्याकार डॉ० श्रीनिवास शास्त्री
	साहित्य भण्डार, मेरठ १९७९
६१ ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन, चौखम्बा, वाराणसी, १९६४
६२ काव्यदर्शन	दण्डी, चौखम्बा, वाराणसी, १९५८
६३ काव्यालङ्कार	भामह, बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, १९५६
६४ सरस्वतीकण्ठाभरण	भोजदेव, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४

इतिहास-ग्रन्थ

६५ सस्कृत शास्त्रो	लेखक– आचार्य बलदेव उपाध्याय
का इतिहास	शारदा सस्थान, वाराणसी १९८३
६६ ब्रज के धर्मसम्प्रदायों	लेखक– प्रभुदयाल मीतल
का इतिहास	प्रथम सस्करण १९६४, दिल्ली
६७ वैदिक साहित्य	श्री गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर,
का इतिहास	चौखम्बा सस्कृत सीरीज

६८ वैदिक साहित्य और सस्कृति — आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा सस्थान, वाराणसी—१६७३

६६ सस्कृत—वाङ्मय का बृहद् इतिहास (आधुनिक खण्ड) — उत्तर प्रदेश सस्कृत सस्थान, लखनऊ, २००० ई०

कोश-ग्रन्थ

७० अमरकोश — अमरसिह, चौखम्बा, बनारस वि०स०—१६६४

७१ मेदिनीकोश — मेदिनिकर, चौखम्बा, वाराणसी, १६६८

७२ सस्कृत—हिन्दी—कोश — वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

अन्य ग्रन्थ एव पत्रिकाए

७३ स्तोत्ररत्नावली — गीता प्रेस, गोरखपुर।

७४ श्रीमद्भगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर।

७५ सङ्गीत रत्नाकर — आनन्दाश्रम, पूना, १६४२, अड्यार सस्करण मद्रास, १६४४

७६ सगमनी — (सस्कृत त्रैमासिकी) शिशिराक, सवत् – २०२२ प्रयाग

७७ पातञ्जल महाभाष्य — काशी, वि० स० १६४६

७८ निरुक्त — यास्क, चौखम्बा, वाराणसी, १६६६

७६ नाट्यशास्त्र — आचार्य भरत, सम्पादक—मधुसूदन शास्त्री काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वि०स० २०३२

८० वृहत्संहिता वराहमिहिर, व्याख्याकार प० श्री अच्युतानन्द झा,
चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६३

८१ The Gitagovind (Song of the Dark Land)
Editor & Tr Barbara Stoler Miller
Pub Motilal Banarasidas, 1977

८२ A History of Sanskrit literature A B Keith

८३ Sanskrit Poetry (From Vidyakara's Treasury) Tr By H H Ingalls,
Sanskrit Poetry and Sanskrit Poetics
Harward University Press, Cambridge, 1968

८४ Sanskrit Prosody in its evolution A D Mukherjee , Calcutta

८५ 'The laws and Practice of Sanskrit Drama'
(A thesis A U) Surendra nath Shastri, 1961

८६ 'History of Sanskrit Literature' M Krishnamachariar
Third Edtion 1974